Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय
का प्रकाशन

लर्निंग कर्व

हिन्दी अंक 12, मई 2016

इस अंक में
परिदृश्य
कार्यक्षेत्र से
कुछ, बड़े स्तर के प्रयास

उत्पादक काम और शिक्षणशास्त्र

सम्पादन
चन्द्रिका मुरलीधर
इन्दुमति एस.
मधुमिता सुधाकर
प्रेमा रघुनाथ

सलाहकार
रामगोपाल वल्लत
एस. गिरिधर

इस अंक के विशेष सलाहकार
सुजीत सिन्हा
तथा उनकी 'काम एवं शिक्षा' टीम

हिन्दी अनुवाद
भरत त्रिपाठी

हिन्दी अंक सम्पादन
राजेश उत्साही

आवरण डिजायन
बैनयान ट्री
98458 64765

डिजायन
पेंटागन कम्युनिकेशन प्रा.लि.
+91 080 22212942/946

मुद्रक
SCPL
बेंगलूरु - 560 062
+91 80 2686 0585
+91 98450 42233
www.scpl.net

कृपया ध्यान दें *: इस अंक में प्रकाशित लेख मूलतः लर्निंग कर्व (अँग्रेजी) XXIV, मार्च, 2015 के लेखों का हिन्दी अनुवाद है। लेखों में व्यक्त विचार और दृष्टिकोण लेखकों के अपने हैं, उनसे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन या अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है।*

''लर्निंग कर्व अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का एक प्रकाशन है। इसका उद्देश्य शिक्षकों, शिक्षक–अध्यापकों, स्कूल प्रमुख, शिक्षा अधिकारियों, अभिभावकों और गैर–सरकारी संगठनों तक ऐसे प्रासंगिक और विषयगत मुद्दों में पहुँच बनाना है जो उनके रोजमर्रा के काम से सम्बन्धित हैं। लर्निंग कर्व शैक्षिक जगत के विभिन्न दृष्टिकोणों, अभिव्यक्तियों, परिप्रेक्ष्यों, नई जानकारियों और नवाचार की कहानियाँ प्रस्तुत करने के लिए एक मंच प्रदान करता है। इसका मूल विचार 'शैक्षणिक' और 'अभ्यासकर्ता' के मध्य सन्तुलन हेतु उन्मुख पत्रिका के रूप में स्थापित होना है।''

सम्पादक की ओर से

ज्ञान और कर्म एक दूसरे से अलग नहीं हैं – खुद से चीजों को बनाने व करने से सृजनात्मक सोच को बढ़ावा मिलता है। जीवन के, निष्पक्षता के, न्याय के पाठों से एक शान्तिपूर्ण और संवहनीय समाज तथा विश्व का निर्माण करने से लेकर पाठ्यपुस्तकें जो कहती हैं उसे व्यक्तिगत रूप से अनुभव करने तक – सार्थक शिक्षा के साधन के रूप में, काम करने की पद्धति अर्थात जीवन के अनुभवों से जीवन के लिए सीखने के तरीके पर, एक बार फिर सबका ध्यान गया है। सीखने की यह प्रक्रिया जीवन भर चलती है।

इस अंक का प्रारम्भिक बिन्दु महात्मा गाँधी की नई तालीम है जिसकी कल्पना उन्होंने कई सालों तक की और 1937 में इसे सबके सामने प्रस्तुत किया। बीते वर्षों में भले ही इसे भुला दिया गया हो, पर आज के भारत में, जो अपनी शिक्षा व्यवस्था को, खासतौर से, 21वीं सदी के अपने समाज के लिए प्रासंगिक बनाने की कोशिश में इतने व्यापक बदलावों से गुजर रहा है, नई तालीम ने अपनी प्रासंगिकता फिर से हासिल कर ली है। वाकई में, नई तालीम शिक्षा पर होने वाली ऐसी किसी भी चर्चा की बुनियाद बन गई है जिसकी परिणति विद्यार्थी के दिमाग, हृदय और उसके हाथ की समग्र तस्वीर तैयार करने में होती है। हो सकता है कि गाँधी जी के समय की तुलना में आज इस लक्ष्य के कुछ और आशय हों, लेकिन आज भी यह विचार उतना ही जीवन्त है। इसके अन्तर्गत बच्चे चीजों को बनाकर और करके सीखते हैं। बनाने और करने के इन दो कामों को बड़े सन्दर्भ के साथ जोड़कर ही पूरी तस्वीर की समझ हासिल होती है।

इस अंक में इसी बड़ी तस्वीर को प्रस्तुत करने की पूरी कोशिश की गई है। यहाँ ऐसे कई लेख हैं जिन्होंने देश भर के उन स्कूलों की ओर फिर से ध्यान दिलाया है जिन्होंने नई तालीम के सिद्धान्तों को लागू करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है। इस अंक के सभी लेखक सच्चे ज्ञान के उपकरण के रूप में काम के महत्त्व को स्थापित करने के लिए सक्रिय हैं, ऐसा ज्ञान जो अंकों, वरीयताओं, पाठ्यपुस्तकों और पाठ्यक्रमों आदि के बोझ से मुक्त हो, भले ही हम तयशुदा प्रक्रियाओं और आकलन की कार्यप्रणालियों से पूरी तरह से अलग नहीं हो सकते हों। उदाहरण के लिए, यहाँ एक लेख ऐसे लेखक द्वारा लिखा गया है, जिन्होंने खुद नई तालीम की तर्ज पर चलने वाले एक गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त की है। वह दर्शाता है कि किस तरह वनस्पति विज्ञान, भूगोल और मृदा भू–विज्ञान, सभी को कपास की खेती द्वारा सीखा और सिखाया जा सकता है, जैसा कि लेखक ने अपने स्कूल में किया था। इस लेख में यह भी वर्णन किया गया है कि किस तरह कपड़ा बनाने के लिए चरखे पर सूत कातते समय घिरनी का सिद्धान्त तथा घर्षण का नियम, दोनों सीखने को मिलते हैं और इस तरह विद्यार्थी तनाव को भौतिक बल की तरह देखना सीख जाता है।

एक और लेख में वर्णन किया गया है कि किस प्रकार कक्षा 9 के विद्यार्थियों ने गम्भीर और वैज्ञानिक ढंग से लेखा परीक्षण करके अपने स्कूल में बिजली की खपत को कम करने के तरीके ईजाद करने का चुनौतीपूर्ण कार्य अपने हाथ में लिया। इससे उन्हें जो सीख मिली वह महत्त्वपूर्ण तो थी ही पर सबसे खास बात यह है, कि यह सीख पूरी जिन्दगी उनके काम आने वाली थी।

एक ऐसी शिक्षिका का वृत्तान्त भी इस अंक में है, जिसमें उन्होंने नई तालीम के सिद्धान्तों पर चलने वाले एक स्कूल में, पहले एक विद्यार्थी की तरह और अब एक शिक्षिका की तरह अपने अनुभवों को साझा किया है। यह स्कूल उनके लिए दूसरे घर की तरह था, जैसा कि वह अब उनके विद्यार्थियों के लिए है, क्योंकि स्कूल के गृह पालक (हाउस पेरेंट) विद्यार्थियों में उतनी ही रुचि लेते हैं जितना कि उन्हें जन्म देने वाले माता–पिता। सामुदायिक लंच, खजाने की खोज जैसी कई गतिविधियों ने ऐसा सुरक्षित व स्नेही वातावरण निर्मित किया जहाँ बच्चे अव्यक्त सीमाओं के भीतर अपनी दुनिया की खोजबीन कर सकते हैं। इसी स्कूल में बड़े बच्चे, छोटे बच्चों के बड़े भाई–बहनों की जगह लेते हुए उन्हें राह दिखाते हैं।

एक प्रमुख लेख में नई तालीम को प्रतिपादित करने के पीछे गाँधी जी के तर्काधार की विस्तृत व्याख्या की गई है। जिस राह पर हम चल रहे हैं अगर उससे हटकर कोई अधिक संवहनीय मार्ग हमने नहीं अपनाया तो इस दुनिया को, खासतौर से भारत को लगभग आत्मघाती स्थिति का सामना करना पड़ेगा। इस लेख में इस तरह के हालात में नई तालीम की प्रासंगिकता पर विचार किया गया है।

तो इस प्रकार, आज के भारत में नई तालीम की प्रासंगिकता पर इस अंक में एक लम्बी और गहरी दृष्टि डाली गई है। यहाँ लेखकों के द्वारा किए गए वैचारिक अन्वेषण नई तालीम के विचारों तथा एक 'अच्छे समाज' की समग्र कल्पनाओं पर आधारित हैं। साथ ही राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.सी.

एफ.) 2005 तथा वर्तमान परिस्थितियों की रोशनी में, नई तालीम को भी नई नजर से देखा गया है। आज के समय में शिक्षा और काम के विचारों पर किए गए प्रयोगों की पृष्ठभूमि में ऐसा किया गया है। इन सब बातों को दिमाग में रखते हुए एक उभरते हुए समाज के रूप में हमारे लिए आगे की राह यही है कि हम ऐसी सीख लें जो हमें, हमारे पर्यावरण और हमारे संसाधनों को बचाए रखने वाले और खुद भी बचे रह सकने वाले मूल्यों पर जोर देने वाले ज्ञान का सृजन करने में मदद करें।

पत्रिका की सफलता के लिए आपकी प्रतिक्रिया बेहद महत्त्वपूर्ण है और इसे हम बहुत मान देते हैं। इसलिए आपकी प्रतिक्रिया की हमें प्रतीक्षा रहती है।

इस विशेष अंक के लिए हम सुजीत सिन्हा व उनके वर्क एण्ड एजुकेशन (काम और शिक्षा) दल को हृदय की गहराइयों से धन्यवाद देते हैं। उनके प्रोत्साहन, सहयोग और अनमोल सुझावों के बगैर हम यह अंक कभी न निकाल पाते। आप सभी का धन्यवाद!!

प्रेमा रघुनाथ
सम्पादक, लर्निंग कर्व
prema.raghunath@azimpremjifoundation.org

bl vid e

खण्ड क
परिदृश्य

नई तालीम, आज: कुछ समस्याएँ और सम्भावनाएँ 2
सुजीत सिन्हा

बुनियादी शिक्षा: डॉ. कृष्ण कुमार के कुछ विचार 9

बुनियादी शिक्षा का मूलतत्व 15
हृदय कांत दीवान

कक्षा के बाहर काम और सोच–विचार के माध्यम से सीखना 23
अर्धेन्दु शेखर चटर्जी

नई तालीम: उत्पादक कार्य से सीखना: एक चिन्तन 33
प्रदीप दासगुप्ता

खण्ड ख
कार्यक्षेत्र से

जहाँ बच्चे ज्ञान निर्मित करते हैं 39
अमित भटनागर

काम और शिक्षा : थुलीर के अनुभव 44
अनु तथा कृष्ण

शिकक्षत्व की खोज 49
बिन्दुबेन

हमारी धरती, हमारा जीवन 53
दीवान सिंह नागरकोटी

निमार्ण, परवाह करने वाले समाज का 58
मीनाक्षी उमेश

सीखना जीवन भर 67
प्रेमा रंगाचारी

दैनिक जीवन में ऊर्जा की खोजबीन बनाम अन्तर्सम्बन्धों की खोज 71
राधा गोपालन

मशरूम उत्पादन से शिक्षा और उसका अन्य विषयों से सम्बन्ध 77
शहाबुद्दीन अन्सारी

मदद करते हुए सीखना 83
सुरेश कुमार साहू, राकेश टेटा और गुलशन यादव

समेकित तथा समग्र रूप से सीखने का एक सशक्त माध्यम 86
सुषमा शर्मा

काम पर केन्द्रित शिक्षा का लक्ष्य: महाराष्ट्र के माध्यमिक स्कूलों में बुनियादी प्रौद्योगिकी परिचय कार्यक्रम 92
योगेश कुलकर्णी

खण्ड ग
कुछ, बड़े स्तर के प्रयास

संवहनीय ढंग से जीना सीखना: पर्यावरण मित्र कार्यक्रम पर आधारित विचार 98
प्रमोद शर्मा और ऐनी ग्रेगरी

अर्थियन कार्यक्रम: काम और शिक्षा के नजरिए से 103
शाहीन शाशा और श्रीकान्त श्रीधरन

ग्रीन स्कूल कार्यक्रम: कक्षा के बाहर का एक अनुभव 107
सुमिता दासगुप्ता

खण्ड क

परिदृश्य

नई तालीम, आज: कुछ समस्याएँ और सम्भावनाएँ

सुजीत सिन्हा

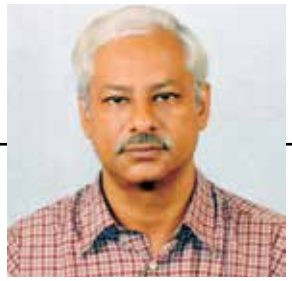

स्कूल और समाज

गाँधी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों को समझने के लिए हमें डुवी के निम्नलिखित उद्धरण को स्पष्ट रूप से ध्यान में रखना जरूरी है : *"यदि हमें यह पता हो कि हम किस तरह का समाज चाहते हैं, तो हम यह भी जान जाएँगे कि हमें कैसी शिक्षा प्रदान करना होगा।"*

आदर्श समाज की गाँधी की कल्पना को हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं : उसमें अधिकांश लोग गाँवों में रहेंगे, वे खेती में या कुटीर उद्योगों में काम करेंगे जो या तो पारिवारिक स्वामित्व वाले होंगे या जिनका स्वामित्व और प्रबन्धन सहकारिता के आधार पर होगा। सभी प्रकार के कामों का समान दर्जा होगा। उस समाज में उच्च स्तर की ग्रामीण और क्षेत्रीय आत्म–निर्भरता होगी, जिसमें बहुत ही कम वस्तुओं को लम्बी दूरियाँ तय करके लाना या ले जाना पड़ेगा। गाँव राजनैतिक रूप से स्वायत्त होंगे और प्रत्यक्ष भागीदारी वाली लोकतांत्रिक पद्धति से स्वयं अपने अधिकांश निर्णय लेने में समर्थ होंगे। बहुत हद तक वह न्यायपूर्ण और पक्षपात रहित होगा और उसमें सभी प्रकार का प्रभुत्व और भेदभाव घट जाएगा। हर व्यक्ति पर्यावरण के प्रति जागरूक (ईको–लिटरेट) होगा, उपभोग के चार–सूत्री सिद्धान्त (चार आर – रिडयूस, रियूज, रिसाइकिल, रिजेनरेट – अर्थात वस्तुओं के उपभोग को घटाना, उनको पुन: इस्तेमाल करना, उत्पादन प्रक्रिया में उनका री–सायक्लिंग करना और उन्हें फिर से उत्पन्न करना) का आचरण में पालन करेगा, और इस गाँधीवादी सूक्ति के अनुसार जीवनयापन करेगा कि 'संसार मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त है, परन्तु उसके लालच के लिए नहीं', और सम्पत्ति पर केवल ऐसी सीमाओं तथा निष्पक्षता के द्वारा ही ईर्ष्या और संघर्ष को घटाया जा सकेगा, जिसके परिणामस्वरूप शान्ति और सत्य की स्थापना होगी, जो कि दो परम गाँधीवादी आदर्श हैं।

उपरोक्त कल्पना को साकार करने के लिए प्रयुक्त गाँधी के प्रमुख उपकरणों में से एक थी नई तालीम या नई शिक्षा, जिसका केन्द्रीय शैक्षणिक औजार प्रायोगिक उत्पादक कार्य था। ऊपर वर्णित इस कल्पना के अनुसार निष्पक्षता, न्याय और प्राकृतिक संसाधनों को निरन्तर बनाए रखने की समस्यायों के समाधान के लिए जुटना, इसके पाठ्यक्रम के प्रमुख सरोकार थे।

क्या 1940 से लेकर 1970 के दशक तक, किसी भी प्रगतिशील व्यक्ति ने ऐसे 'पीछे की ओर' देखने वाले आदर्शों पर विश्वास किया होता? अधिकांश लोगों की आस्था इसके ठीक विपरीत थी। संसार के साथ भारत भी उत्साहपूर्वक औद्योगीकरण के घोड़े पर सवार हो गया। लगभग समस्त प्रगतिशील चिन्तन इस बारे में था कि इस घोड़े को किस प्रकार तेज से तेज गति से दौड़ाया जाए। प्रमुख विचार–विमर्श इस बात पर होता था कि इसे हासिल करने का कारगर उपाय मानवीय चेहरे वाला पूँजीवाद होगा या कि समाजवाद–साम्यवाद का कोई संस्करण, या फिर दोनों का कोई जादुई मिश्रण।

उद्योगवाद की बुनियादी प्रवृत्तियों को हम सरलीकृत ढंग से इस तरह व्यक्त कर सकते हैं : उस पर आधारित समाज में अधिकांश लोग शहरों और नगरों में रहेंगे, बड़े कारखानों और दफ्तरों में काम करेंगे जिन पर विशाल निगमित कम्पनियों या सरकार का स्वामित्व होगा। अपरिहार्य रूप से कार्य और पदों के दर्जों में बहुत बड़े अन्तर होंगे। हर चीज दूसरी चीजों से जुड़ी होगी : विराट पैमाने पर परिवहन का उपयोग करते हुए, वस्तुओं और सेवाओं को लम्बी दूरियों तक वितरित किया जाएगा और बेचा जाएगा। अधिकांश निर्णय राष्ट्र–राज्यों के द्वारा प्रतिनिधित्व–आधारित लोकतंत्र के माध्यम से किए जाएँगे। सतत ऊपर की ओर उन्मुख गतिशीलता, निरन्तर बढ़ती हुई भौतिक सम्पदा, लालच और ईर्ष्या – ये ही मनुष्य को प्रेरित करने वाली मुख्य शक्तियाँ होंगी। इसलिए, प्रकृति पर हावी होना और उससे जितनी सम्भव हो उतनी तेज गति

से अधिक से अधिक संसाधन निकालना, यही मानवीय ज्ञान का और राजनैतिक–सामाजिक व्यवस्थाओं का मुख्य कार्य होगा।

इस लक्ष्य को एक ऐसी मानकीकृत स्कूली शिक्षा व्यवस्था की सहायता से हासिल किया गया जिसके पाठ्यक्रम की पद्धति 'जो बहुत गोपनीय नहीं थी' हर विद्यार्थी में सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से ऊपर की ओर उठने की और असीमित भौतिक सम्पदा अर्जित करने की अभीप्सा को निरन्तर जगाने की थी, ताकि उद्योगवाद के बढ़ते कदमों को और अधिक गति दी जा सके। यह स्कूली व्यवस्था कमोबेश सारे संसार में फैल गई है और एक अर्थ में यह काफी सफल भी हुई है। अब उन लोगों ने भी जिनकी स्कूली उपलब्धियाँ साफ तौर पर काफी निम्न स्तरीय या अधूरी रही हैं, और उन्होंने भी जिनकी इस स्कूली शिक्षा तक समुचित पहुँच नहीं है, ऊपर उल्लिखित इस केन्द्रीय लक्ष्य को पूरी तरह से आत्मसात कर लिया है। पाठकों को देखना चाहिए कि दिसम्बर 2011 में गुजरात विद्यापीठ में अनिल सद्गोपाल के द्वारा नई तालीम पर दिए गए व्याख्यानों की अपनी प्रस्तावना में श्री नारायण देसाई इसे कितने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करते हैं: (www.youtube.com/watch/?v=2_rgDaARGgk)

"1980 के दशक से उत्तरोत्तर अधिक लोगों को यह ज्यादा स्पष्ट होता जा रहा है कि उद्योगवाद का यह घोड़ा जिस पर हम सवार हैं अब नियंत्रण के बाहर हो गया है, जिसके कारण (मानव) जीवन के बचे रहने पर भी खतरा मँडराने लगा है। ऐसा प्रतीत होता है कि हम इसे किसी भी मनचाही दिशा में नहीं मोड़ सकते, न ही धीमा कर सकते हैं और हम उससे उतरने में भी असमर्थ हैं। हम तेजी से एक गहरी खाई की कगार के नजदीक पहुँच रहे हैं। इस (आसन्न संकट) से बचने के लिए क्या किया जा सकता है, किसे इसका 'दोष' स्वीकार करना चाहिए और इसके समाधान की 'लागत' वहन करना चाहिए, यह समझने के लिए 1980 के दशक के बाद से लगभग सभी देश मिल–बैठकर बातचीत करते रहे हैं। जहाँ इस बदहवास ढंग से भाग रहे घोड़े को नियंत्रित करने के लिए कुछ अच्छे कदम उठाए गए हैं, वहीं बहुत से लोग मानते हैं कि वे प्रयास बहुत थोड़े हैं और शायद बहुत देर से किए गए हैं। लेकिन अभी भी बहुसंख्यक लोग इस उम्मीद के सहारे यथावत चले जा रहे हैं कि किसी तरह से वे इस संकट से प्रभावित होने से बच जाएँगे या कि यह संकट वास्तव में है ही नहीं, या कि वह उतना भीषण नहीं है जितना उसे अनेक लोग बता रहे हैं, या कि वह किसी जादू से विलीन हो जाएगा। हो सकता है कि इस दिशा में तत्परता से सक्रिय होने के लिए संसार को उसी प्रकार के किसी आघात की जरूरत है जैसा कि 7 जून 1893 को गाँधी को पीटरमेरिट्जबर्ग रेलवे स्टेशन पर मिला था जब उन्हें रेलगाड़ी से बाहर धकेल दिया गया था।"

एकबारगी जब भारत ने संसार के 'सफल' औद्योगिक देशों के समकक्ष पहुँचने की इस यात्रा पर कूच करने का, और इस तरह मूलभूत दृष्टिकोणों से, गाँधी ने जो कल्पना की थी उसके ठीक विपरीत करने का निर्णय ले लिया, तो नई तालीम की मानो मौत सुनिश्चित हो गई। इसको लेकर कुछ विश्लेषण हुए हैं कि किस तरह नई तालीम का पाठ्यक्रम उपयुक्त तरीके से नहीं रचा गया था, कि कैसे उसमें बहुत सीमित 'गतिविधियाँ' चुनी गई थीं, कि विषयों का कार्य–गतिविधियों से 'पारस्परिक सम्बन्ध बनाना' कितना कठिन था, कि स्कूल की दिनचर्या कितनी कठोरतापूर्वक बँधी हुई थी, कि 'शिक्षकों' को प्रशिक्षित करना कितना मुश्किल था (और वास्तव में बहुत थोड़े शिक्षकों को प्रशिक्षित किया गया) और सरकारी सहायक व्यवस्थाएँ कितनी गैर–मददगार थीं आदि। उपरोक्त सभी बातें महत्त्वपूर्ण हैं। लेकिन मेरा विश्वास है कि यदि ये सभी चीजें यथोचित ढंग से भी की गई होतीं (और वे गुजरात तथा देश के कुछ अन्य भागों में काफी अच्छी तरह से की भी गई थीं), तो भी एकबारगी जब हमें उद्योगवाद की लत लग गई थी, तब नई तालीम का ढह जाना अवश्यंभावी हो गया था, वह अधिक से अधिक उससे एक दशक ज्यादा टिकती जितनी कि वह वास्तव में चली।

भारत सहित सारे संसार में, उत्तरोत्तर अधिकाधिक लोगों को लगने लगा है कि 20वीं सदी के उद्योगवाद का दौर अब समाप्त होने को है। अधिकाधिक लोग अब गम्भीरतापूर्वक उसके राजनैतिक, आर्थिक, प्रौद्योगिक और सांस्कृतिक विकल्पों की तलाश करने लगे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गाँधी के अनेक विचारों, जिनमें नई तालीम भी शामिल है, के फिर से पुनर्जीवन का अवसर मिल रहा है। निश्चित ही, आज की और आने वाले कल की समस्यायों और आवश्यकताओं के अनुरूप, इन विचारों की पुर्नव्याख्या की जानी पड़ेगी, जैसी कि गाँधी ने उन्हें विरासत में मिले अनेक विचारों और अवधारणाओं की इतने प्रतिभाशाली ढंग से की थी।

नीचे के अनुच्छेदों में हम इस पुनर्जीवित हो रही भविष्य की नई तालीम की केवल कुछ ही समस्याओं की, कुछ सम्भावित रूपरेखाओं की और कुछ चुनौतियों की चर्चा करेंगे।

ग्रामीण–शहरी

हाल के बहुत से लेखन में इसकी बात की गई है कि किस तरह भारत में शहरीकरण की गति न सिर्फ पहले की तरह जारी रहेगी, बल्कि और भी तेज होगी। विभिन्न अध्ययन यह दर्शाते हैं कि किस प्रकार ग्रामीण युवा और उनके माता–पिता खेती के काम और उसकी सहायक गतिविधियों को जारी रखने के इच्छुक नहीं हैं। इसलिए, भविष्य में (30-40 साल बाद) भारत में गाँव बस सन्दर्भ–टिप्पणियाँ बनकर रह जाएँगे, ठीक वैसे ही जैसे कि संसार में औद्योगीकरण का चक्र चलने के बाद पहली दुनिया के देशों में हुआ है। परन्तु ऐसा परिदृश्य शायद भविष्य को अतीत के आधार पर बहुत ही सरलीकृत ढंग से एक सीधी रेखा में चित्रित करने जैसा है। दूसरी ओर, यदि हम मानते हैं कि 20वीं सदी के उद्योगवाद के विकल्पों की खोज की गति तेज होगी, तो फिर हो सकता है कि गाँवों को रहने और काम करने के वांछित स्थान बनाना अधिकाधिक रूप से मुख्यधारा का कार्य बन जाए।

हालाँकि शहरों के बारे में अच्छा कहने के लिए गाँधी के पास ज्यादा कुछ नहीं है, परन्तु यह देखना शिक्षाप्रद होगा कि टैगोर ने किस प्रकार शहर–गाँव के ऐसे सामंजस्यपूर्ण सह–अस्तित्व की बात की है, जो उनके अनुसार उद्योगवाद की असीमित भौतिक सम्पदा की तलाश के कारण टूट गया था। अपनी काव्यात्मक भाषा में ऐसे सह–अस्तित्व की सम्भावना का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है :

"इस पृथ्वी पर धाराएँ, झीलें और महासागर हैं। उनका अस्तित्व मात्र उनके अपने दायरों में पानी को जमा रखने भर के लिए नहीं होता। वे वाष्प को ऊपर भेजते हैं जिससे बादल निर्मित होते हैं और पानी के अधिक विस्तृत वितरण में सहायता मिलती है। शहरों के भी अपने काम हैं – सम्पदा और ज्ञान को वैभव के घनीभूत रूपों में बनाए रखना – परन्तु यह भी खुद उनकी खातिर नहीं होना चाहिए; वे एक प्रकार से (धन और ज्ञान की) सिंचाई के केन्द्र होना चाहिए; उन्हें इनका संग्रह वितरित करने के लिए करना चाहिए। उन्हें स्वयं को ही विशाल नहीं बनाना चाहिए, बल्कि समस्त प्रजा को समृद्ध बनाना चाहिए। उन्हें दीप–स्तम्भों की भाँति होना चाहिए और जिस प्रकाश का वे आधार होते हैं उसका उनकी अपनी सीमाओं के पार फैलना बेहद जरूरी है।

शहर और गाँव के बीच ऐसा पारस्परिक हितकारी सम्बन्ध तभी तक मजबूत बना रह सकता है जब तक सहयोग और आत्म–बलिदान की भावना समाज का जीवन्त आदर्श बनी रहती है। जब कोई सार्वभौमिक प्रलोभन इस आदर्श पर हावी हो जाता है, जब कोई स्वार्थी लालसा प्रबल हो जाती है, तब उनके बीच एक खाई निर्मित हो जाती है और वह निरन्तर बढ़ती जाती है।" ('सिटी एण्ड विलेज – शहर और गाँव', टैगोर की अँग्रेजी रचनाएँ, साहित्य अकादमी)

अकसर जब नई तालीम की चर्चा होती है, तो यह मान लिया जाता है कि यह कुछ ऐसी चीज है जो गाँवों पर तो लागू होती है, पर जिसका शहरों से बहुत कम लेना–देना है। लेकिन अब यह बात साफ हो गई है कि शहर संसार का आधा यथार्थ हैं और आने वाले कुछ वर्षों तक वे और भी फैलेंगे। संसार भर में ऐसे कई शहर हैं जिन्होंने संसाधनों को बनाए रखने के लिए अभिनव प्रयास आरम्भ कर दिए हैं। वे अपने कार्बन डाई आक्साइड के उत्सर्जन की मात्रा को न्यायोचित ढंग से कम करने की कोशिश कर रहे हैं। ब्राजील में क्यूरीटीबा जैसे कुछ शहर पास–पड़ोस के गाँवों को उस तरह से 'सिंचित करने' का भी प्रयास कर रहे हैं जिसका सपना टैगोर ने देखा था। इसलिए आज की नई तालीम को ग्रामीण और शहरी, दोनों क्षेत्रों के लिए उपयोगी होना होगा और उसे इस शहरी–ग्रामीण संतुलन और सामंजस्य को स्थापित करने के लिए भी प्रयास करना होगा।

कोई भी खेती करना और गाँवों में रहना नहीं चाहता

अगस्त 2014 में मैं अपने एक सहकर्मी के साथ मध्य प्रदेश के एक उत्तर–पश्चिमी जिले में गया था, जहाँ विस्थापित वनवासियों, जिनमें आदिवासी और गैर–आदिवासी दोनों प्रकार के लोग हैं, में से प्रत्येक को 2 हेक्टेयर भूमि दी गई है। नए गाँव स्थापित किए गए हैं। हर गाँव में सरकारी स्कूल खोले गए हैं। उनमें से एक मध्यवर्ती गाँव में एक गैर–सरकारी संस्था द्वारा संचालित कक्षा 12 तक का एक श्रेष्ठ स्कूल है। यह बात काफी चकित करने वाली थी कि उस गाँव में अगस्त में केवल थोड़ी–सी भूमि ही जोती गई थी, अधिकांश भूमि पर खेती नहीं हो रही थी। प्रत्येक 2

हेक्टेयर भूमि के टुकड़े पर एक–दो अच्छे दिखने वाले पेड़ लगे थे। जब मेरे साथी ने कक्षा 10 के विद्यार्थियों से उनके भविष्य के बारे में बात की, तो उन्होंने कहा कि वे कक्षा 11-12 की पढ़ाई करेंगे, फिर वे कालेज पढ़ने जाएँगे, फिर उसके बाद कुछ नहीं! उन्होंने यह भी कहा कि वे अच्छी तरह यह जानते थे कि 'नौकरियाँ' ज्यादा से ज्यादा 10 लोगों में से सिर्फ एक के लिए ही उपलब्ध थीं। दिलचस्प बात है कि मध्य प्रदेश में 11वीं–12वीं में 'कृषि' विषय की शाखा भी है और इस स्कूल के सभी विद्यार्थियों ने उसे ही चुना था क्योंकि उस विषय में पास होना सबसे आसान था। हमें पता चला, जैसी कि हमें उम्मीद थी, कि इसका वास्तविक खेती से कोई लेना–देना नहीं था या इसके पीछे यह तरकीब थी कि विद्यार्थियों को सबसे सरल सम्भावित प्रश्न याद करवा दिए जाएँ, ताकि वे किसी प्रकार कक्षा 12 पास करने का जतन कर लें। कल्पना कीजिए कि वहाँ सबके पास 2 हेक्टेयर भूमि बेकार पड़ी थी!!!

भारत सरकार के आँकड़ों के अनुसार, जिस 14 करोड़ हेक्टेयर भूमि पर खेती होती है, उसमें से केवल 5.5 करोड़ हेक्टेयर भूमि पर ही एक से अधिक फसलें ली जाती हैं। इसका मतलब है कि 8.5 करोड़ हेक्टेयर भूमि पर केवल एक ही फसल उगाई जाती है! प्रसंगवश, ऐसे इलाके अकसर भारत के सबसे गरीब और खस्ताहाल क्षेत्र हैं। आज भारत के कृषि की जलवायु वाले लगभग सभी भौगोलिक क्षेत्रों के लिए ऐसे पर्याप्त प्रतिरूप उपलब्ध हैं जो दिखाते हैं कि 'विकसित वैज्ञानिक और पर्यावरण संगत' पद्धतियों से ऐसी जमीनों का कुल जैविक–उत्पादन 2 से 3 गुना बढ़ाया जा सकता है। गौर करें कि यहाँ 'जैविक' का तात्पर्य केवल खाद्य फसलों से ही नहीं है, उसमें ईंधन, रेशे, चारा, खादें, लकड़ी, पशु, मछलियाँ तथा पेड़ों से प्राप्त होने वाला अन्य लघु उत्पादन भी शामिल हैं। यह आकलन उस तरीके से बहुत भिन्न है जिस तरह औद्योगिक कृषि में उत्पादन को नापा जाता है। पिछले पैरा में जिस भौगोलिक क्षेत्र का उल्लेख किया गया था, उसमें भी वहाँ स्कूल चलाने वाले उसी गैर–सरकारी संगठन ने यह करके दिखाया है कि उचित जल–संग्रहण और समेकित खेती की पद्धति का उपयोग करके 2 हेक्टेयर भूमि भी एक परिवार को काफी सम्पन्न बना सकती है।

इस सन्दर्भ में, यह देखना उपयोगी होगा कि सिर्फ 20–25 वर्ष पहले क्यूबा में क्या हुआ। 1989 में सोवियत संघ के ढह जाने के बाद वह वास्तव में शिखर से खाई में जा गिरा! उसके पहले उसका औद्योगिक कृषि उत्पादन संसार में सबसे उच्च स्तर का था। उसमें प्रति हेक्टेयर कैलिफोर्निया से भी ज्यादा रसायनों और मशीनों का उपयोग होता था और फिर जैसे रातों–रात ये सारे संसाधन विलुप्त हो गए। 1889 में जहाँ औसत खाद्यान्न खपत 2600 कैलोरी की थी, वह 1993 में गिरकर भुखमरी के स्तर 1600 कैलोरी पर आ गई थी। क्यूबा के नष्ट होने की आसन्न सम्भावना से यू.एस.ए. बहुत खुश हो रहा था। लेकिन 1998 तक ही खाद्यान्न की खपत वापस 2600 कैलोरी पर पहुँच गई!! हमारे मतलब की दृष्टि से इस बात पर गौर करना महत्त्वपूर्ण है कि क्यूबा को किस–किस तरह के 'नए ज्ञान' की खोज करना पड़ी, तथा पुराने ज्ञान में संशोधन करना, उसे फिर से सीखना, अभिनव तरीके निकालना, और फिर इस सबको व्यावहारिक स्तर पर लागू करना पड़ा। इस सूची में फसलों के पुराने और नए चक्रों, सहयोगी फसलों, पास–पास दो फसलें साथ उगाना (इंटरक्रापिंग), मिट्टी के लिए जैविक पोषक तत्व, जैविक खादें, पौधों की रक्षा करने के लिए तमाम तरह के गैर–रासायनिक उपायों का इस्तेमाल करना, नए प्रकार के हलों को आजमाना और गैर–ईंधन वाले यांत्रिक उपकरणों का उपयोग करना जैसे उपाय भी शामिल थे। जुताई करने के लिए बैलों का इस्तेमाल कैसे किया जाए, यह सीखने के लिए 1997 में 2344 प्रशिक्षण हुए जिनमें 64,279 लोगों ने भाग लिया, क्योंकि 1990 में वहाँ सिर्फ 50,000 बैल थे। लेकिन वर्ष 2000 तक वहाँ 400,000 बैल हो गए। वहाँ शिक्षित युवाओं का शहरों से गाँवों की ओर विपरीत स्थानान्तरण होने लगा!

सार यह है कि ग्रामीण तथा शहरी, दोनों क्षेत्रों में भविष्य की नई तालीम की चुनौतियों में से एक यह है कि आयु–वर्ग के अनुरूप, किस प्रकार संसाधनों के प्रबन्धन की विभिन्न कार्य–गतिविधियों के माध्यम से केन्द्रीय विषयों के सीखने की प्रक्रिया को निर्मित किया जाए। कुछ शहरों में शहरी खेती खासी रफ्तार से बढ़ रही है; 2004 तक हवाना शहर 40 लाख टन फलों और सब्जियों का वार्षिक उत्पादन करने लगा था। सारे संसार में ऐसे अनुभवों की विशाल शृंखला है जिससे हम सीख सकते हैं। यदि उचित ढंग से पर्यावरणी–सम्बन्धी विज्ञान विषयों को सिखाया जाए तो उसके फलस्वरूप बनने वाली समझ, संसार भर के स्कूलों में पिछली एक सदी से पढ़ाए जाने वाले भौतिक और जीवशास्त्रीय विज्ञान विषयों की पढ़ाई से कम रोमांचक और लाभकारी नहीं होगी।

दूसरा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सवाल जिसका समाधान नई तालीम को करना है, वह निष्पक्षता और न्याय का है। चुनौती यह है कि इन मुद्दों को किस तरह आयु–वर्ग के लिए उपयुक्त और संवेदनशील ढंग से बार–बार उठाया जाए। खासतौर से जब प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्धन से जुड़े 'उत्पादक कार्य' का स्वरूप तय करना हो, तब भूमि के न्यायपूर्ण पुनर्वितरण के सवाल और व्यक्तिगत परिसम्पत्तियों से सामुदायिक सम्पत्तियों की ओर तथा साझा सार्वजनिक चारागाहों की ओर किए जाने वाले परिवर्तन ऐसे मुद्दे हैं जिनको नई तालीम के पाठों में समेकित किया जाना जरूरी है। इसके बिना नई तालीम निरर्थक होगी।

नई तालीम, विकेन्द्रीकरण तथा स्थानीय स्व–शासन

गाँधी जी ने विद्यार्थियों के द्वारा उत्पादित वस्तुओं की बिक्री के माध्यम से स्कूलों के वित्तीय रूप से आत्म–निर्भर होने की बात की थी। जैसा कि पूर्वानुमान लगाया जा सकता है, लगभग सभी ने इसके विभिन्न खतरों की बात करते हुए इसका विरोध किया था। लेकिन हो सकता है कि आज के सन्दर्भ में हम इस भावना को अपना कर इसकी पुनर्व्याख्या इस रूप में कर सकते हैं कि स्कूल सिर्फ ऐसे स्थान ही नहीं होते जहाँ विद्यार्थी शिक्षित होते हैं और आगे की पढ़ाई तथा प्रशिक्षण के लिए तैयार किए जाते हैं, बल्कि जहाँ उन्हें, अपने पाठ्यक्रम के हिस्से के रूप में, विभिन्न तरीकों से स्थानीय समाज में योगदान भी देना चाहिए और एक अर्थ में जितना उन्हें समाज से मिलता है उतना ही लौटाना भी चाहिए।

ग्रामीण इलाकों में, कक्षा 8, या कक्षा 10 या कक्षा 12 तक के स्कूलों के पास सबसे बड़ी अधोसंरचना (भवन आदि बुनियादी सुविधाएँ), बड़ी संख्या में शिक्षक और सबसे महत्त्वपूर्ण, सैकड़ों युवा होते हैं, जो इन स्कूलों में अपने दिन का एक बड़ा हिस्सा और अपने जीवन का एक बहुत सृजनात्मक हिस्सा बिताते हैं। अत: समुदाय और समाज को संसाधनों के इस विशाल भण्डार से और ज्यादा क्यों नहीं प्राप्त होना चाहिए?

मान लीजिए कि विकेन्द्रीकरण, सहभागिता–आधारित लोकतंत्र और सार्थक स्थानीय स्व–शासन की एक प्रबल लहर निर्मित हो जाती है। तब उसके लिए स्थानीय क्षेत्र नियोजन की जरूरत होगी, जिसके लिए आधार–रेखा सर्वेक्षणों, स्थानीय संसाधनों के सर्वेक्षणों, स्थानीय निगरानी व्यवस्था (जिसमें समय–समय पर सर्वेक्षण और प्रतिक्रियाएँ लेना (फीडबैक) आवश्यक होंगे) उसके प्रभाव का आकलन करने वाले सर्वेक्षण, संग्रहीत जानकारी तथा आँकड़ों का विश्लेषण और ऐसे आँकड़ों का इस्तेमाल किया जा सकने वाला प्रस्तुतीकरण आदि की आवश्यकता होगी। स्कूलों के विद्यार्थी और शिक्षक मिलकर ये कार्य अपने पाठ्यक्रम के समेकित अंगों के रूप में कर सकते हैं।

ऐसे कम से कम दो कारण हैं जिनकी वजह से यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। पहला तो यह कि हम आज के भारत में चुने गए पंचायत सदस्यों में आमतौर पर ऊपर उल्लिखित क्षमताओं के होने की कल्पना नहीं कर सकते, और दूसरे, व्यवस्थित रूप से इस स्थानीय क्षेत्र नियोजन और उसके क्रियान्वयन के लिए आवश्यक सभी कार्यों को करने के लिए उन सदस्यों की संख्या कभी भी पर्याप्त नहीं होगी। अकसर इसकी बात होती है कि स्थानीय शासन अपने क्षेत्रों में गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा के बारे में क्या कर सकता है। हम इसी सवाल के चक्र को यह पूछकर पूरा कर रहे हैं कि गुणवत्ता पूर्ण स्थानीय प्रशासनिक और विकास कार्य के लिए एक स्कूल को क्या कर रहा होना चाहिए। और स्कूल तथा स्थानीय सरकार के बीच इस समन्वित सम्बन्ध को आज के सन्दर्भ में उत्कृष्ट नई तालीम की तरह परिभाषित किया जा सकता है।

आज नई तालीम में उत्पादक कार्य

आदर्श स्थिति में, नई तालीम के अन्तर्गत किए जाने वाले उत्पादक कार्य को निम्नांकित मापदण्डों में से यथासम्भव अधिक से अधिक को पूरा करना चाहिए :

यहाँ नीचे उन सम्भावित विषय–सूत्रों की सूची दी जा रही है जो आज की नई तालीम के सरोकार हो सकते हैं। यह किसी भी तरह से सम्पूर्ण सूची नहीं है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इन विषयों के अन्तर्गत आने वाली ठीक–ठीक गतिविधियाँ उनके सन्दर्भ से जुड़ी हुई, अर्थात स्थानीयता की दृष्टि से विशिष्ट होंगी :

1. प्राकृतिक संसाधनों का प्रबन्धन एवं जैव–विविधता: दीर्घकालिक दृष्टि से टिकाऊ कृषि पद्धतियाँ, पेड़, पशुपालन, मछली–पालन, वनाधारित गतिविधियाँ
2. कृषि–उत्पाद प्रसंस्करण : खाद्य, रेशा, हस्तकलाएँ
3. ऊर्जा : जैविक, सौर, चूल्हा, हवा, विद्युत उपयोग की कार्यक्षमता
4. पानी और स्वच्छता : पानी का संग्रहण, भण्डारण, परीक्षण, शुद्धिकरण, बर्बादी, री–सायक्लिंग
5. कचरा : अलग–अलग करना, री–सायक्लिंग
6. स्वास्थ्य एवं पोषण : व्यक्तिगत स्वच्छता, खाना पकाना, कुपोषण, जड़ी–बूटियाँ
7. निर्माण : मिट्टी , बाँस
8. साइकिल और पैडिल शक्ति
9. स्थानीय (सामाजिक–आर्थिक) सर्वेक्षण : सभी तरह के अध्ययन जिनमें सरकारी योजनाओं की निगरानी भी शामिल होगी

आज नई तालीम को आगे कैसे बढ़ाया जाए

हाल के वर्षों में अनेक राज्यों ने कौशलों की योग्यताओं की नई बनाई गई राष्ट्रीय रूपरेखा (नेशनल स्किल्स क्वालिफिकेशंस फ्रेमवर्क) के अन्तर्गत कक्षा 9 से व्यावसायिक शिक्षा को पुन: आरम्भ करने की उत्सुकता दिखाई है। लेकिन जैसा कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005 में जोर देकर बार–बार स्पष्ट किया गया है, नई तालीम व्यावसायिक शिक्षा नहीं है : नई तालीम एकदम पहली कक्षा से ही सभी विषयों को पढ़ाने के लिए उत्पादक कार्य को प्रमुख शैक्षणिक औजार की तरह इस्तेमाल करती है, ताकि उसके परिणामस्वरूप दिमाग, हाथ और हृदय का सामंजस्य पूर्ण विकास हो। बिहार एकमात्र ऐसा राज्य है जिसने हाल ही में लगभग 390 नई तालीम स्कूलों को पुनर्जीवित करने का निर्णय लिया है।

इस अंक के विभिन्न लेख दर्शाते हैं कि पिछले दो दशकों में देश के अलग–अलग भागों में कुछ 'वैकल्पिक' स्कूलों ने अपने स्कूलों में या अपने शैक्षिक कार्य में उत्पादक कार्य को शामिल करने की कोशिश की है। यदि हम उपरोक्त विषय–सूत्रों को देखें, तो पाएँगे कि सारे भारत में ऐसे अनेक लोग और संगठन हैं जो इन विषयों पर काम कर रहे हैं और जिन्होंने वयस्क लोगों के साथ काम करते हुए उत्कृष्ट प्रतिरूप विकसित किए हैं, लेकिन कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़कर, उन्होंने उन प्रतिरूपों को अभी तक स्कूलों के विद्यार्थियों को सिखाने का प्रयास नहीं किया है। एक सम्भावित रणनीति ऐसे 'विकास के पेशेवर लोगों' और 'वैकल्पिक स्कूल शिक्षाविदों' को साथ लाने की हो सकती है। इसके अलावा, यदि कोई राज्य नई तालीम के साथ प्रयोग करने का निर्णय लेता है, तो इनमें से अनेक उसके लिए सम्भावित संसाधन संस्थान हो सकते हैं। एक छोटे प्रयास के रूप में अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन ने स्वयं अपने 6 स्कूलों में कुछ प्रयास प्रारम्भ किए हैं।

जैसा कि इस लेख के आरम्भ में बताया गया था, यह आशंका फिर भी बनी रहती है कि यदि किसी स्कूल के आसपास का समुदाय पारम्परिक उद्योगवाद (जिसका प्रलोभन और आवेग अभी भी बहुत प्रबल है) के प्रति पूरी तरह से प्रतिबद्ध हो, तो फिर ऐसे स्थानीय स्कूल में नई तालीम को आजमाने की सार्थकता क्या है? क्या वह बच पाएगी? पर, जैसा कि मध्य प्रदेश के बड़वानी जिले के आधारशिला स्कूल के अमित कहते हैं, "ऐसे नई तालीम के प्रयोगों को उन समुदायों और क्षेत्रों में करके देखना बेहतर होगा जहाँ पहले से ही उद्योगवाद के विकल्प तलाशने और उन्हें आजमाने का जन आन्दोलन मौजूद है।"

सुजीत सिन्हा वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं। उन्होंने 20 वर्षों से भी अधिक समय तक पश्चिम बंगाल में एक ग्रामीण विकास स्वयंसेवी संस्थान स्वनिर्वार में काम किया है। यह संस्थान शिक्षा, स्वास्थ्य, दीर्घकाल तक टिकाऊ खेती, स्व–सेवी समूहों तथा आदर्श पंचायतों के निर्माण जैसे कार्यों में संलग्न था। सुजीत की प्राथमिक रुचि गाँधी और टैगोर के शिक्षा–सम्बन्धी विचारों की पुनर्व्याख्या करना और उन्हें आज के और भविष्य के लिए प्रासंगिक बनाना है। उनसे sujit.sinha@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।

बुनियादी शिक्षा: डॉ. कृष्ण कुमार के कुछ विचार

लर्निंग कर्व भाग्यशाली है कि हमें शिक्षा तथा गाँधी जी की नई तालीम की प्रासंगिकता पर डॉ. कृष्ण कुमार के विचारों को पुनर्प्रकाशित करने का मौका मिला है। जयपुर की दिगन्तर संस्था ने उदारता दिखाते हुए हमें इन उद्धरणों को पुनर्प्रकाशित करने की अनुमति दी है। यह लेख, मूलत:, मई 1998 में, 'बुनियादी शिक्षा की प्रासंगिकता' शीर्षक से 'विमर्श' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। दिगन्तर में आयोजित हुई व्याख्यान माला में यह तीसरा व्याख्यान था (यह व्याख्यान 10 जनवरी, 1998 को दिया गया था)।

आज की तारीख में, बुनियादी शिक्षा के बारे में बात करने में कई समस्याएँ हैं। सबसे बड़ी समस्या तो यही है कि इसके साथ गाँधी का नाम जुड़ा हुआ है। गाँधी जी से जुड़ी हुई कई लोकप्रिय छवियाँ आज के समाज में फैली हुई हैं; इन छवियों की फिर से पड़ताल नहीं की जाती। सिर्फ प्रतिष्ठित स्तर पर दिखने वाली छवियों को ही देखते रहना, गाँधी की महानता के गीत गाते रहना, उन्हें भगवान का दर्जा देना या देवता तुल्य मानना, इन सब बातों में एक प्रकार की जिद दिखाई देती है। दूसरी तरफ, यह स्थिति उनकी राह से हमारे अलग हट जाने से भी जुड़ी हुई है, क्योंकि उस राह को तो बहुत पहले ही छोड़ दिया गया था। यह चर्चा कभी अन्य रूप भी लेती रही है, जिनमें से एक यह भी है कि आधुनिक भारत ऐसा है क्योंकि उसने नेहरू का मार्ग अपनाया है, गाँधी जी का मार्ग बिलकुल अलग होता। या कि, नेहरू को चुनना गाँधी जी की भूल थी। जब भी गाँधी जी से जुड़े किसी विचार पर चर्चा शुरू होती है, तो फिर यही सवाल शुरू हो जाते हैं कि 50–60 साल पहले की परिस्थितियों में यह विचार जिस रूप में उभरा था हमें उस रूप की पवित्रता के बारे में लोगों को समझाना होगा। फिर यहीं से एक लम्बा–चौड़ा व्याख्यान शुरू हो जाता है। अगर आप गाँधीवादी हैं या इस तरह की चर्चाओं में आपकी रुचि है तो ही आप इस तरह के व्याख्यान को सह सकते हैं, अन्यथा नहीं। आज की परिस्थितियों में इस विचार को समझना बहुत आसान नहीं है।

मैं खुद भी बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों पर चलने वाले स्कूल से पढ़ा हूँ। आज मैं उन वर्षों के बारे में बहुत वस्तुपरक होकर तो नहीं सोच सकता क्योंकि आप जैसे–जैसे बड़े होते जाते हैं और बचपन पीछे छूटता जाता है, तो आप बचपन की बातों को बहुत वैज्ञानिक ढंग से तो नहीं देख सकते। वह सब यादों में बस जाता है। तो मैं यह तो नहीं कहूँगा कि मैं अपने अनुभव से यहाँ कुछ कह रहा हूँ। पर मेरे लिए यह बताना बहुत जरूरी है कि मैंने ऐसे स्कूल देखे हैं देश भर में ऐसे सैकड़ों, हजारों स्कूल रहे हैं, और इनमें से कई किसी न किसी रूप में अभी भी मौजूद हैं। कुछ तो सिर्फ नाममात्र के लिए चल रहे हैं, पर कुछ में, हमें आज भी कुछ विस्तृत रूप में बुनियादी शिक्षा देखने को मिल जाती है। यदि हम सब इसमें कुछ रुचि दिखाएँ, तो ऐसे संगठनों के समग्र रूप को समझने का छोटा–सा प्रयास करना सम्भव हो सकेगा। मैं आपको कुछ बताऊँ, उसके बजाय ऐसा करने से आपके मन में गाँधी जी के इस विचार के बारे में बेहतर तस्वीर बन पाएगी। मैं आज यहाँ बहुत छोटी–सी छवि बनाने आया हूँ और उसकी अन्तर्निहित सुन्दरता को आपके सामने रखना चाहता हूँ।

पिछले 50–60 सालों में, शिक्षा के दर्शन में, और शिक्षा के दर्शन को इस्तेमाल करने के तरीकों में बुनियादी शिक्षा का प्रस्ताव कई प्रकार से अपनी परछाईं देखता रहा है। ऐसा नहीं है कि बुनियादी शिक्षा के प्रस्ताव में वास्तव में ऐसी बातें कही गई हों। लेकिन शिक्षा के दर्शन में, खासतौर पर, इस पूरे दौर में इस विषय पर जिस तरह के लेख लिखे गए हैं, उनमें किसी न किसी रूप में बुनियादी शिक्षा की मौजूदगी रही है – न सिर्फ भारत में बल्कि दूसरे देशों में भी। वैसे बुनियादी शिक्षा के प्रस्ताव

में ऐसा कुछ अनोखा नहीं था जिसे गाँधी जी कहीं से तोड़कर ले आए हों। उन्होंने जो कुछ भी कहा था वह सामान्य जीवन के लिए प्रासंगिक था।

प्रारम्भ से ही बुनियादी शिक्षा के विचार के साथ तीन बड़ी बातें जुड़ी रही हैं। इन तीन विचारों से हम इतने परिचित हो चुके हैं, कि हम यह सोच सकते हैं कि, "अरे, यह सब तो हमें पहले से ही पता है, इसमें नया क्या है?" और यही बात खतरनाक है। यह कहा जा सकता है कि हमने बुनियादी शिक्षा के प्रस्ताव की प्रतिध्वनियों को इतने स्वरूपों में सुना है, कि उन्हें अलग करना या उनकी खूबियों के बारे में अलग–अलग बात कर पाना, गैर–जरूरी है और सम्भवत: व्यर्थ भी है....। इसीलिए मैंने आपको इतनी सारी चेतावनियाँ दी हैं। दर्शनशास्त्र के जगत में, कोई भी विचार पुराना नहीं पड़ता, न ही वह उसी स्थिति में बना रहता है, जहाँ शुरू में था – इन दोनों बातों को दिमाग में रखना बहुत जरूरी है। भले ही कोई 2500 वर्ष पुराना विचार हो, भले ही गौतम बुद्ध का कोई विचार हो, भले ही अरस्तु का कोई विचार हो या कोई ऐसा विचार हो जो हमारे समाज में अभी–अभी आया हो – वह विचार कभी पुराना नहीं पड़ता, भले ही एक नहीं, हजारों पीढ़ियाँ उसे आजमा चुकी हों। और भले ही उन्होंने यह राय दी हो कि हम आजमाकर देख चुके और इसमें कुछ भी सार नहीं है! इसके बाद भी, उस विचार में एक चमक बनी रहती है। दूसरी तरफ, कोई भी विचार वह नहीं रह जाता जो वह पहली बार प्रस्तावित किए जाते वक्त था, क्योंकि बीच के समय में वह विचार अन्य कई विचारों में जीता है। किसी विचार की, उसकी उत्पत्ति से आगे जाने की क्षमता का अनुभव उस विचार को निरन्तर पूरे परिदृश्य में फिर से स्थापित कर देता है।

ये तीन बिन्दु हैं – पहला, स्कूल में हाथों से काम करना सिखाया जाना चाहिए। दूसरा, स्कूल की शिक्षा बच्चे के परिवेश से जुड़ी होना चाहिए। बहुत सरल बातें हैं ये। और तीसरी बात – स्कूल में जो भी सिखाया जाए, जो भी कौशल सिखाए जाएँ, बच्चों को ज्ञान के जिन भी पहलुओं से परिचित कराया जाए – वे एक दूसरे से पृथक नहीं होना चाहिए, बल्कि एकीकृत/ समग्र होना चाहिए। वे आपस में जुड़े होना चाहिए। इन तीन बातों (काम, स्थानीय परिवेश का महत्त्व और पाठ्यक्रम को समग्र बनाने का प्रयास) को कहीं न कहीं, किसी न किसी परिस्थिति में, देश के अन्य भागों में या राज्य स्तर पर करके देखा जा चुका है। यहाँ शायद एक ही बात जोड़ी जाने लायक है, वह यह कि गाँधी जी के बुनियादी शिक्षा के मूल प्रस्ताव में तीसरा बिन्दु हस्तकौशल के सन्दर्भ में उठाया गया था। उन्होंने इस समग्र रूप की परिकल्पना किसी विचारधारा के सन्दर्भ में नहीं उठाई थी, न ही किसी मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ में उठाई थी, बल्कि उन्होंने हस्तकला/ हाथ के कौशलों के रूप में उठाई थी। चूँकि स्कूल में हाथों से काम करने के उनके पहले बिन्दु का अर्थ यह नहीं था कि, आपको स्कूल में हाथों से काम भी करना चाहिए, बल्कि हाथ से किया जाने वाला काम स्कूल का केन्द्रीय विषय होना चाहिए। इसे इतना महत्त्वपूर्ण होना चाहिए कि स्कूल की अन्य सभी तरह की पारम्परिक गतिविधियाँ, जिसमें विभिन्न प्रकार की शिक्षा और कौशल शामिल रहते हैं, सबको हाशिए पर जाना होगा, गौण होना पड़ेगा और स्कूल की शिक्षा का मुख्य ध्यान हस्तकौशलों पर होगा। जरूरी नहीं कि किसी एक ही हस्तकौशल पर हो, लेकिन कम से कम किसी एक पारम्परिक हस्तकौशल पर हो। अच्छा होगा कि वह हस्तकौशल ऐसा हो जो स्कूल के परिवेश में उपलब्ध हो। वह हस्तकौशल स्कूल का केन्द्रीय उद्यम होना चाहिए। उसके इर्द–गिर्द ज्ञान के पाठ्यक्रम के विभिन्न क्षेत्रों को आपस में बुना जा सकता है और इस बुनाई को ही हम बुनियादी शिक्षा के सन्दर्भ में समग्र शिक्षा का नाम दे सकते हैं। यह बुनावट बच्चे के व्यक्तित्व की किसी सार्वभौमिक मनोविज्ञान की अवधारणा नहीं है, न ही यह कोई राष्ट्रीय विचारधारा है, बल्कि यह बुनावट उस कौशल से निकलना चाहिए, जिसे स्कूल के केन्द्रीय उद्यम के रूप में चुना गया हो। बुनियादी शिक्षा के अन्तर्गत और भी जरूरी पहलू थे, लेकिन उन सबका यहाँ जिक्र करना जरूरी नहीं है। पर जिस एक पहलू का खासतौर से जिक्र किया जा सकता है, वह उत्पादकता है। यदि आप इतिहास पर नजर दौड़ाएँ, तो पाएँगे कि शिक्षा के अन्य पहलुओं को तो महत्त्व दिया गया लेकिन इस केन्द्रीय मुद्दे पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया। आपने स्कूलों में 'काम के अनुभव' के बारे में सुना होगा, या कुछ अन्य ऐसी बातों के बारे में सुना होगा जिन्हें 'सामाजिक रूप से उपयोगी उत्पादक कार्य' (जिसके हर शब्द को आप

सन्देह के साथ देख सकते हैं) के अन्तर्गत रखा जाता है। ये सभी चीजें बुनियादी शिक्षा के विचार को इस्तेमाल किए जाने के बाद अस्तित्व में आईं और उसकी स्मृति में इन्हें फिर पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। वे अभी भी चल रही हैं। इसलिए उन सभी पहलुओं की चर्चा करना जरूरी नहीं है क्योंकि वे सभी बुनियादी शिक्षा के मूल प्रस्ताव के आधार पर किसी न किसी रूप में बने ही हुए हैं। इसी प्रकार से मातृभाषा के महत्त्व को भी इसमें स्वीकारा और शामिल किया गया था। जब आप स्थानीय परिवेश की बात करते हैं, तो मातृभाषा उसमें तर्कसंगत रूप से आ ही जाती है और उसका अलग से जिक्र करना आवश्यक नहीं है। लेकिन फिर भी गाँधी जी ने उसे महत्त्व दिया और फिर से उसका उल्लेख किया। मूल प्रस्ताव में उसे निश्चित तौर पर महत्त्व दिया गया था। वहाँ उसका सन्दर्भ यह था कि यदि शिक्षा को आसपास के परिवेश में बोया जाना है, तो हमारे सामने उसका स्वाभाविक साधन केवल मातृभाषा ही हो सकती थी।

ये तीन बिन्दु जो बुनियादी शिक्षा के मूल प्रस्ताव का हिस्सा थे जिन्हें मैंने आपके सामने सिर्फ दर्ज करने की खातिर प्रस्तुत किया है। बीते हुए वक्त पर बार–बार ऐतिहासिक किस्म की नजर डाले बगैर, हमें सरल विश्लेषण की भावना से इस प्रस्ताव की पड़ताल करना होगी, बल्कि पड़ताल करने के बजाय उसका मूल्यांकन करना होगा, कि यदि आज शिक्षा के मुख्य सन्दर्भों में बुनियादी शिक्षा को सजा, सँवारकर, चमकाकर प्रदर्शित किया जाए तो वह कैसी दिखाई देगी? यदि उसके वृक्ष को यहाँ दिगन्तर में रोपा जाए तो उसमें से कैसी पत्तियाँ निकलेंगी? किस प्रकार के फूलों का उसमें से खिलना सम्भव होगा? उसे सुरक्षित रखने के, पालने के, उस पर फूल खिलाने और उसे फलीभूत करने के उपाय क्या होंगे? ये सारी बहसें उसमें से निकल सकती हैं।

हम चाहते हैं कि बचपन से ही बच्चा प्रमाणपत्रों की महानता के प्रति सजग हो जाए और उसे स्वीकारे, इसलिए कक्षा 1 से ही उन्हें प्रमाणपत्र मिलना शुरू हो जाते हैं। हम चाहते हैं कि बच्चे घण्टी बजने के महत्त्व को समझें – जैसे ही घण्टी बजती है तो आपको एक काम करना बन्द करके दूसरा काम शुरू करना होता है। घण्टी के बजने का मतलब होता है कि, हमसे ज्यादा ताकतवर कोई व्यक्ति हमसे कह रहा है कि तुम्हें अब यह काम नहीं करना चाहिए, चाहे वह आपको कितना ही रुचिकर क्यों न लग रहा हो। अब तुम वह करो जिसके लिए घण्टी बजाई गई है। तो घण्टी बजती है और हमें ऐसी स्थिति में ले जाती है जिसमें हम घण्टी को एक घण्टी–केन्द्रित समाज के प्रतीक के रूप में स्वीकार कर चुके होते हैं। असली घण्टी तो वह है जो हमारे लिए स्वतंत्रता की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ती। पिछले 300 वर्षों से औद्योगिक समाज की बजती हुई घण्टी वह शक्तिशाली साधन है जिसने हमें बाँध रखा है। उस घण्टी का महत्त्व बच्चों को समझाने के लिए, आधुनिक स्कूल बच्चों की 3–4 साल की उम्र से ही उनके लिए स्कूल की घण्टी बजाना शुरू कर देता है, जिसके चलते 18–20 वर्ष की आयु पर पहुँचने तक वे घण्टी के आदी हो चुके होते हैं।

बच्चों के सन्दर्भ में यह कहने के बाद, अब मैं शिक्षकों के बारे में बात करना चाहता हूँ। बुनियादी शिक्षा में निहित प्रमुख विचारों में से एक यह है कि हम किस प्रकार के कौशलों की बच्चों से अपेक्षा कर सकते हैं, वे किस तरह की जिम्मेदारी ले सकते हैं, और उनके लिए क्या उपयुक्त है और सम्भव है, और उन्हें जिम्मेदारी देने में कुछ गलत नहीं है। उन्हें उनके परिवेश में पाए जाने वाले किसी कौशल का उपयोग करते हुए अपने हाथों से कुछ भी बनाने दो। वे जो भी कौशल सीखते हैं, उसमें उन्हें महारत हासिल करने दो। उस विशेष योग्यता से मिलने वाले साधन–सम्पन्नता के बोध से प्राप्त होने वाली इस अनुभूति का आनन्द लेने दो – कि मैं यह कर सकता हूँ और यह मैंने खुद किया। पर आपको इन गुणों पर शिक्षकों के सन्दर्भ में भी विचार करना होगा। उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि वे क्या कर सकते हैं और उन्हें भी अपने संसाधनों की सम्पन्नता का बोध होना चाहिए, और यह कह सकना चाहिए कि "मैं यह कर सकता हूँ"। बुनियादी शिक्षा के आधार प्रस्ताव में भी काम को मुख्य रूप से हस्तकला के कौशल की तरह ही परिभाषित किया गया है, पर ऐसा कोई कारण नहीं है कि हम काम को ज्यादा बड़े सन्दर्भ में परिभाषित नहीं कर सकते। आखिरकार, बुनियादी शिक्षा के विचार मूल रूप से जीवन के काम से सम्बन्धित हैं, अर्थात ऐसे कामों से जो जीवन जीने में सहायता करते हैं। उन सभी कामों को नियमित रूप से और कुशलतापूर्वक किए बगैर,

जीवन को नहीं जिया जा सकता। ऐसे कामों को करने में, जिनमें जिम्मेदारी निहित होती है, शुरू से ही बच्चों को शामिल करना ही बुनियादी शिक्षा का मूल विचार है। ऐसे कामों में उन्हें शुरुआत से ही जिम्मेदारी दी जा सकती है। इसी कारण हम ऐसे कामों की परिभाषा पूरे दिल से कर सकते हैं। चाहे वह स्कूल की सफाई करना हो, शौचालय का रखरखाव करना हो। यदि पानी की टंकी हो तो उसमें पानी के भण्डारण का ध्यान रखना और यदि स्कूल में पानी न हो, तो उसकी व्यवस्था करना। ये सभी यों तो छोटे–छोटे काम हैं, परन्तु आज की शिक्षा व्यवस्था ने ऐसे कामों को अपनी पाठ्यचर्या में शामिल करना छोड़ ही दिया है और वह उस दिशा में कोई प्रयास नहीं कर रही है।

एन.सी.ई.आर.टी. का छठा सर्वेक्षण हाल ही में प्रकाशित किया गया है। तीसरे, चौथे और पाँचवें सर्वेक्षणों का निरीक्षण करके उनसे उसकी तुलना करने पर हम पिछले दस वर्षों में हुई प्रगति का आकलन कर सकते हैं। एन.सी.ई.आर.टी.में काम करने वालों को छोड़कर, कोई भी पानी, शौचालयों और ब्लैकबोर्डों की उपलब्धता की दृष्टि से जो मामूली प्रगति हुई है, उस पर गर्व महसूस नहीं करेगा। जैसे ही कोई किसी प्राथमिक स्कूल में प्रवेश करता है, ये चीजें या उनका अभाव, साफ दिखाई देता है। आज भी हम यही कहते जाते हैं कि आधे से अधिक स्कूल ऐसी कोई जगह नहीं दिखा सकते जिसका बच्चे सम्मानपूर्वक पेशाबघर की तरह उपयोग कर सकें। हमारे संविधान में एक धारा 395 है जो कहती है कि राज्य का नीति निर्देशक सिद्धान्त यह सुनिश्चित करना होगा कि बच्चे आदर और गरिमा के साथ जीवन जिएँ। मैं सोचता रहता हूँ कि किसी को ऐसे स्कूल में घूमने पर कैसा अनुभव होगा जबकि स्वयं उसके लिए पेशाबघर की तरह इस्तेमाल करने के लिए अलवर के बस–स्टैंड पर भी कोई उचित सुविधा नहीं है। पेशाबघर और शौचालय की समस्याएँ पिछले 60 वर्षों से जस की तस बनी हुई हैं। जब हम इन समस्याओं पर विचार करने लगते हैं तो हमें आश्चर्य नहीं होता कि सुश्री माधुरी सहाय, जो एक बहुत बड़ी शिक्षिका हैं, ने शौचालयों के निर्माण, और उनकी साफ–सफाई के रखरखाव को इतना महत्त्व दिया कि उसे अपने–आप में एक अलग कौशल का नाम दिया। आप निश्चित रूप से स्वयं गाँधी जी के जीवन में शौचालयों के महत्त्व के बारे में जानते ही होंगे। उनके राजनैतिक कार्यक्रम का केन्द्रीय विषयसूत्र यही था कि उन जातियों के जीवन का उत्थान कैसे किया जाए जो अपरिहार्य रूप से शौचालयों से जुड़ी हुई हैं। क्या वर्तमान हालात हमेशा चलते रहेंगे जिनमें शौचालयों से सम्बन्धित सारे काम और उनसे जुड़ी मजबूरियाँ पुरानी जाति व्यवस्था का ही हिस्सा बनी रहेंगी? या कि ऐसा काम सामान्य काम के दायरे में आना चाहिए? ऐसी गतिविधियों में आत्मनिर्भर होना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि कोई डिग्री हासिल करके अपनी जीविका कमाने में सक्षम होना। जहाँ तक शिक्षक का सम्बन्ध है, इस प्रकार की पहल करना स्कूल चलाने के लिए बेहद जरूरी होता है। इन सभी प्रयासों में, पहल की, स्वाबलम्बन की और साधनों की सूझबूझ की भूमिका बुनियादी शिक्षा की भावना में ही अन्तर्निहित है।

वर्तमान में स्कूलों में बच्चों को मध्यान्ह भोजन प्रदान करने का एक कार्यक्रम बड़े पैमाने पर चल रहा है। हमने उसे एक बड़ी जिम्मेदारी के रूप में चलाया है और यह काम कुशलता पूर्वक करने के लिए प्रशिक्षित कर्मचारियों की व्यवस्था की है। बुनियादी शिक्षा की दृष्टि से यह एक चुनौती है कि किसी शिक्षक को इस तरह से प्रशिक्षित किया जाए कि वह मध्यान्ह भोजन के लिए आवश्यक सभी सामग्री की व्यवस्था करने में और उसे नियमित रूप से प्रदान करने में स्वयं को सक्षम महसूस कर सके। उसे किन्हीं खास विक्रेताओं या खास कम्पनियों से ही इन चीजों को खरीदने के लिए बाध्य नहीं होना चाहिए। न ही उसे पूरी तरह से सरकारी अनुदानों पर, और सरकारी बन्धनों पर निर्भर रहने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए। उसे आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा के अनुसार पहचाने गए सभी संसाधनों और सामग्रियों की सुरुचिपूर्ण और सुन्दर ढंग से व्यवस्था कर सकना चाहिए।

जो पुरानी शिक्षा व्यवस्था मौजूद है उसके माहौल में, जहाँ साधनों की सम्पन्नता पर तो जोर दिया गया है, वहीं उसमें सुन्दरता और सौन्दर्य बोध को सिखाने की कभी कोई कोशिश नहीं की गई है। इस तथ्य को कई जगहों पर देखा गया है। उदाहरण के लिए, सौन्दर्य बोध का मतलब है चीजों को इस प्रकार आयोजित करना कि उसमें सहज सौन्दर्य झलकता हो। पुरानी व्यवस्था में हस्तकौशल के सौन्दर्य के बारे में एक प्रकार की

उदासीनता और खराब कौशल को सहन करने की गहरी परम्परा दिखाई देती है। दस्तकारी की कोई चीज बनाने या एक किताब लिखने के सन्दर्भ में कौशल के उपयोग की मूल भावना एक सुन्दर वस्तु निर्मित करने की होती है। यदि हम उसका दायरा फैलाना चाहते हैं, उसे इस बुनियादी शिक्षा का हिस्सा बनाना चाहते हैं, तो जिस शिक्षक को ऐसी शिक्षा वाला स्कूल चलाने की जिम्मेदारी दी जाए, उसे एक गहरे सौन्दर्यबोध को आत्मसात करने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए, ताकि फिर वह अपने सुरुचिपूर्ण ढंग से स्कूल का रखरखाव कर सके।

शिक्षा किस चीज की बुनियाद हो सकती है? इसे अपना केन्द्रीय मुद्दा बनाकर आगे बढ़ते हुए, हम विषयवस्तु के सवाल पर गौर कर सकते हैं। हम एक रास्ता खोज सकते हैं यदि हम उसे मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से देखें। मैंने मनोविज्ञान की बात संक्षेप में और शायद गैरवाजिब तरीके से पीछे की थी। पर उससे यह बात निकलती है कि शिक्षा को बच्चे के व्यक्तित्व की बुनियाद बनना होगा। बुनियादी शिक्षा का मतलब ऐसी शिक्षा होना चाहिए जो बच्चे के व्यक्तित्व की जमीन तैयार करे। उसमें अनिवार्य रूप से वे सभी पहलू और पूर्वाग्रह होंगे जो मनोविज्ञान की दृष्टि से बच्चे को देखने में निहित होते हैं। बचपन वह अवस्था होती है जब बच्चे का व्यक्तित्व वह आकार लेता है जिसके साथ बच्चा वयस्क जीवन में प्रवेश करता है। बच्चे और जीवन के बीच में एक प्रकार का टकराव और द्वैत होता है और वह बच्चे और समाज के बीच में भी होता है। एक व्यक्ति और समाज के बीच में पहले से ही एक टकराव मौजूद रहता है। इस सभी बातों को ध्यान में रखते हुए, हमें एक ऐसी बुनियाद रखना होगी जो बच्चे को समाज में रहने में मदद करे।

बुनियादी शिक्षा के मामले में, बात सरल है क्योंकि उसका पूरा क्षेत्र ही बच्चों के सामूहिक अनुभव के बारे में है। यदि हमें पेड़ों के बारे में जानने की जरूरत है तो आसपास के इलाके में लगे पेड़ों का विभिन्न मौसमों में अध्ययन करके उनकी जानकारी इकट्ठी की जा सकती है। इस प्रकार एकत्रित की गई जानकारी को बुनियादी शिक्षा के सन्दर्भ में वैध माना जा सकता है। फिर इसमें अन्य स्रोतों से प्राप्त ज्ञान को जोड़ा जा सकता है, जिसे ऐसा विशेष ज्ञान माना जा सकता है जिसका बच्चे के व्यक्तित्व और समाज से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। अत: समाज का निर्माण करने के सन्दर्भ में ही बुनियादी शिक्षा वास्तव में बुनियादी होती है। यह बात न केवल बच्चे के व्यक्तित्व के सन्दर्भ में लागू होती है, बल्कि समाज के नवीनीकरण के लिए भी लागू होती है। गाँधी के जीवन और विचारों में उपनिवेशवाद की दुनिया को नकारा गया है। उसके प्रति उनके विचारों में गहरी असहमति है। इसलिए, यदि बुनियादी शिक्षा में गलत बातों से असहमत होना नहीं सिखाया जाता, तो उसे बुनियादी नहीं कहा जा सकता। आजादी के 20 से 30 वर्ष बाद बुनियादी शिक्षा की जो नीति निकलकर आई, उसमें यह एक बड़ी खामी बनी रही। उसमें असहमति के लिए कतई कहीं कोई जगह नहीं थी। किन्ही भी ऐसे मुद्दों के लिए उसमें कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी गई थी जिनको लेकर सरकार और समाज के बीच में टकराव की सम्भावना हो सकती थी।

बुनियादी शिक्षा के सम्बन्ध में सरकार की भूमिका क्या होना चाहिए? अन्तत:, बुनियादी शिक्षा समाज की स्वायत्तता की तेज आवाज में की गई उद्घोषणा के सिवाय और कुछ नहीं है। यह समाज के साथ मित्रतापूर्ण और सम्मानजनक ढंग से सामन्जस्य बनाने के लिए सरकार को दी गई चुनौती है। राजनीति और राजनैतिक तंत्र के द्वारा लिए गए निर्णयों के साथ बुनियादी शिक्षा का सम्बन्ध अन्तर्निहित रूप से प्रतिस्पर्धात्मक है। यह सोचना तर्कसंगत है कि यदि बुनियादी शिक्षा विद्यार्थियों को उनके मौजूदा परिवेश से जरूरी होने पर असहमति व्यक्त करने के लिए तैयार नहीं कर सकती तो वह शिक्षा व्यवस्था स्वयं ही दोषपूर्ण है। यदि शिक्षा हमें आज दुनिया जैसी है उसी में जीने के लिए ही प्रशिक्षित करती है, तो इसका मतलब है कि दुनिया को बदला नहीं जा सकता, और हमें उसी तरह से जीते रहना होगा जैसा कि दुनिया का ढर्रा है। हमें उसी दुनिया में आजीविका कमाने के साधन, और जीने के लिए जरूरी गुण हासिल करना होंगे। यदि उसके लिए गुलामी करने की जरूरत होती है तो हम उसे सीखते हैं। यदि जीवन जीने के लिए प्रतिस्पर्धा आवश्यक है, तो हम स्पर्धा करना सीख लेते हैं। मौजूदा शिक्षा व्यवस्था के साथ दुनिया को बदला नहीं जा सकता। यदि बुनियादी शिक्षा को गाँधी की परम्परा के अनुरूप होना है, तो असहमति के अधिकार को धार्मिक जोश जैसी भावना के साथ स्वीकार किया जाना

जरूरी है। जीवन जैसा है, उसे वैसा ही जीने के लिए मैं अभिशप्त नहीं हूँ, बल्कि मैं उसे जैसा चाहता हूँ वैसा बना सकता हूँ। अपने जीवनकाल में, मैं अपने जीने के ढंग से जिस हद तक संसार को बदल सकता हूँ, उसे उतना बदलने में में समर्थ हूँ।

डाक्टर कृष्ण कुमार दिल्ली विश्वविद्यालय में शिक्षा के प्रोफेसर हैं। सन 2004 से 2010 तक उन्होंने एन.सी.ई.आर.टी. के निदेशक के रूप में कार्य किया। उनके नेतृत्व में ही राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005 तैयार की गई जो कि भारत में प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित सबसे महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों में से एक है। वे स्वयं भी मध्य प्रदेश के टीकमगढ़ स्थित एक नई तालीम के स्कूल के विद्यार्थी थे। उन्होंने गाँधी जी की सामाजिक रूपान्तरण की कल्पना के अंग के रूप में उनकी शिक्षा प्रणाली के बारे में कुछ अत्यन्त स्पष्ट और अन्तर्दृष्टीपूर्ण निबन्ध लिखे हैं।

बुनियादी शिक्षा का मूलतत्व

हृदय कांत दीवान

पृष्ठभूमि

शिक्षा को जीवन के लिए ऐसे ढंग से तैयारी करना माना जाता है, जिसके द्वारा बड़ा होता हुआ सीखने वाला न केवल समाज में समाहित होता है, बल्कि उसमें उस समाज को रूपान्तरित करने की अन्तर्निहित क्षमता, इच्छा और सामर्थ्य भी आती है। आज हमारी शिक्षा बच्चों को उनकी जड़ों से दूर जाने से रोकने में असमर्थ है। वे ऐसे पेशेवर कामों की आकांक्षा कर रहे हैं जिनमें किसी शारीरिक श्रम की, उद्यम करने में निहित जोखिम की तथा किसी सामाजिक जिम्मेदारी की जरूरत नहीं होती और जिसमें अपने साथियों के साथ सहभागिता पूर्वक कार्य करने की भी आवश्यकता नहीं होती। वे उत्तरोत्तर अधिक अकेले, दूसरों से कटे हुए होते हैं और उनका सोचना, अनुभवों को लेना, उनका रवैया और भावनाएँ, सब कुछ यंत्रवत होता है। हम सभी को शिक्षा के संज्ञानात्मक पहलुओं और उसकी यांत्रिक तार्किकता पर दिए जा रहे जरूरत से ज्यादा जोर का अनुभव होता है। तार्किकता मूल्यवान है, परन्तु चरम रूप से और अकेले नहीं। उसे नीति और संवेदना के साथ संशोधित किया जाना जरूरी है। स्कूल के कार्यक्रम में बच्चे में जिम्मेदारी (स्कूल के बारे में, दोस्तों के बारे में और अपने खुद के जीवन के बारे में जिम्मेदारी) का एहसास निर्मित करना भी शामिल नहीं रहता। लोग काम में आनन्द लेने और साधारण जीवन चुनने के बजाय भौतिकवादी उपभोक्तावाद और आरामतलबी की ओर जरूरत से ज्यादा झुके होने का विकल्प चुनते हैं। यह तर्क दिया जाता है कि बुनियादी तालीम के पास इन सभी समस्याओं के बारे में कहने के लिए कुछ है और वह इनमें से कुछ का समाधान करने का मार्ग भी है।

शिक्षा क्यों और बुनियादी शिक्षा का मुद्दा क्यों

इस पर विचार करते समय हमें यह याद रखना जरूरी है कि किसी भी शैक्षिक विचार को उसके राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक सन्दर्भ से अलग करना सही नहीं है। यह कहना काफी नहीं है कि शिक्षा इन सभी से प्रभावित होती है, बल्कि यह भी जोड़ना चाहिए कि वह इनके द्वारा ही निर्देशित होती है। इसके समर्थकों को इनकी जो समझ होगी, उसी से इसके प्रयोजन, इसका सहायक आधार और सभी अन्य चीजें निकलकर आती हैं। वे वह विचारधारात्मक बुनियाद या मजबूत चट्टान होते हैं, जिनके आधार पर शिक्षा की अवधारणा का निर्माण और उसका क्रियान्वयन होता है। बुनियादी शिक्षा की प्रासंगिकता और उसके वास्तविक उद्देश्य के बारे में बहुत कुछ लिखा गया है और बहुत बहसें भी हुई हैं। यह एक ऐसा विचार है जिसकी व्याख्या कई तरह से और कई सन्दर्भों में की गई है। इसको इस दृष्टि से भी जाँचा गया है कि यह नए सिद्धान्तों का एक समूह है या कि पुराने परिचित सिद्धान्तों का ही कोई संयोजन है। बुनियादी शिक्षा के निरूपण की ओर ले जाने वाली इस चर्चा में, भारतीय समाज के ऐतिहासिक सन्दर्भों की तथा उस समाज के भीतर और बाहर होने वाले परिवर्तनों और विकास के प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं की जाँच–पड़ताल करना महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए यह तर्क दिया जा सकता है कि बहुत अधिक लोगों तक शैक्षिक सुविधाओं को पहुँचाने के पीछे शिक्षा के लोकतांत्रीकरण का उदार उद्देश्य होने के बजाय उसकी जरूरत आर्थिक हितों के विस्तार के कारण पड़ी। हालाँकि, इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि शिक्षा का विस्तार इस बात को स्वीकार करने में भी निहित है कि कुछ खास लोगों का समूह ही इसका पात्र नहीं होता जो कि सीख सकते हैं, पढ़ और लिख सकते हैं और ज्ञानवान हो सकते हैं। जैसे–जैसे अधिक व्यापक समुदाय के शिक्षित होने को स्वीकार्यता मिली, वैसे ही यह विचार–विमर्श भी विकसित हुआ कि उनको कौन शिक्षित करेगा, शिक्षा की विषयवस्तु में क्या निहित होगा, उसका ढाँचा क्या होगा, शिक्षा कहाँ दी जाएगी आदि। उसके प्रयोजन और उद्देश्यों, उसके प्रशासन, नियंत्रण और निर्णय लेने की प्रक्रिया, उसकी वित्तीय आपूर्ति और उसके स्रोतों और उनकी प्रकृति, शिक्षक और उसका बच्चों तथा समुदाय से सम्बन्ध – ये सभी सवाल विचार–विमर्श और विवाद के मुद्दों का हिस्सा थे। वे इस विमर्श को उन

लोगों के दायरे से बाहर ले गए जो उसे कामकाजी आर्थिक प्रयोजनों तक ही सीमित रखने चाहते थे।

शिक्षा के प्रयोजन और उसके विस्तार के निहितार्थों के बारे में यह संघर्ष जारी है, और वह भी उस नजरिए को प्रभावित करता है जिससे बुनियादी शिक्षा को देखा जाता है। ये सवाल उस विमर्श का हिस्सा हैं जो देश के लिए और शायद उससे भी अधिक व्यापक स्तर पर, शिक्षा व्यवस्था को निर्धारित करने का प्रयास कर रहा है। भारतीय सन्दर्भ में, आजादी के पहले और उसके आसपास जिस ढंग से सरकार ने शिक्षा और उसके प्रयोजन को परिभाषित किया और उसकी पहुँच अधिक व्यापक बनाने के लिए जो तंत्र वह स्थापित करना चाहती थी, उसका स्वर वह नहीं था जो उन्हें पसन्द आता जो आजादी के संघर्ष का हिस्सा रहे थे। आजादी के बाद 65 वर्ष से भी अधिक समय बीत जाने पर भी वह तंत्र बहुत हद तक उन्हीं सिद्धान्तों और दृष्टिकोणों को प्रतिबिम्बित करता है, यह तथ्य हमारे लिए तकलीफदेह सवाल खड़े करता है।

बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त और तत्कालीन सन्दर्भ

जब हम इस बहस के मुद्दों पर गौर करते हैं, तो हम यह देख सकते हैं कि बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त का मूलतत्व आज की शिक्षा व्यवस्था को चुनौती देता है। इन मुद्दों को आज के सन्दर्भ में पुनः स्पष्ट रूप से व्यक्त किए जाने की और उनकी गहरी जाँच–पड़ताल किए जाने की जरूरत है। हो सकता है कि व्याख्या किए जाने पर, यह चुनौती और उसके निहितार्थ और प्रासंगिकता आज आधारभूत रूप से उससे भिन्न विवरण प्रस्तुत करें जैसा कि उस समय हुआ था। बुनियादी शिक्षा के प्रयोजन, निहितार्थ और प्रासंगिकता के बारे में भ्रम उस तरीके के कारण भी उत्पन्न हुआ जिस तरह उस समय उसे लागू किया गया और उसकी ऐसी व्याख्या करने दी गई जिसने उसके शक्तिशाली स्वरूप को बहुत सीमित कर दिया। बुनियादी शिक्षा के बारे में कमजोर कर दिया गया यह विमर्श निश्चित ही कुछ प्रमुख सामाजिक–राजनैतिक तथा आर्थिक निहितार्थों को नजरअंदाज कर देता है और शिक्षा के आधारभूत उद्देश्य में जो अन्तर है उस पर ध्यान केन्द्रित नहीं करता। हो सकता है कि बुनियादी शिक्षा के विमर्श की कई सुविधाजनक व्याख्याओं के उपजने के लिए विरोधियों को समाहित करने की जानबूझ कर अपनायी गई रणनीतियाँ या गलतफहमियाँ भी उतनी ही जिम्मेदार हों जितनी कि शायद व्याख्या के सन्दर्भ को आज की परिस्थितियों में बदल पाने की असमर्थता है। यहाँ यह स्वीकार किया जाना होगा कि यह लेख भी इस विचार की एक और व्याख्या ही है। बुनियादी शिक्षा के समर्थक और विरोधी दोनों को ही लग सकता है कि इसमें भी कुछ ऐसे बिन्दुओं को छोड़ दिया गया है, जो उनकी दृष्टि में इस शिक्षा के महत्त्व, प्रासंगिकता और उसके अभिप्राय को तथा इस विश्लेषण को मौलिक रूप से बदल देंगे।

इस सरोकार की विस्तृत व्याख्या के लिए बहुत अधिक विचार–विमर्श की जरूरत होगी, यहाँ हमारा प्रयोजन केवल इस विश्लेषण की एक बुनियादी तस्वीर प्रस्तुत करना है। इसलिए, हम इस शिक्षा से सम्बन्धित केवल कुछ पहलुओं पर ही गौर करेंगे और कुछ उन दिशाओं की बात करेंगे जिनके बारे में सोचना उपयोगी होगा। उदाहरण के तौर पर विचार किए जाने लायक एक बिन्दु इसमें निहित स्थानीय समुदाय के स्व–संचालन और स्व–शासन का सिद्धान्त है। समुदाय को अपना मार्ग स्वयं निर्मित करने के लिए और अपने बच्चों की शिक्षा को निर्देशित करने के उसके विचारों और कल्पना की जो जरूरत है, वह वही नहीं होती जो कि ऐसा करने के लिए केन्द्रीय या राज्य सरकार की होती है। युवाओं को उनके समुदाय के लिए सहायक बनने और उसमें समायोजित होने तथा उससे सामंजस्य बनाने के लिए और साथ ही साथ उनके सीखे गए नए विचारों से समुदाय का तालमेल बिठा सकने की सामर्थ्य प्रदान करने के लिए, हमें एक उद्यम के रूप में शिक्षा के प्रयोजन की पड़ताल करने की जरूरत है। इसमें निहित केन्द्रीय अभिप्राय ऐसे अभिकर्ता निर्मित करना है जो समुदाय का पूरी तरह से हिस्सा होते हुए उसे रूपान्तरित करने में समर्थ हों। पुनः, यहाँ समुदाय की धारणा का विस्तार करते हुए उसे राष्ट्र (राष्ट्रीय पहचान) और फिर विश्व (वैश्विक नागरिक) तक ले जाने पर उसकी व्याख्या उससे बहुत भिन्न हो जाती है जैसी कि घनिष्ठ समुदाय और लोगों के बीच प्रत्यक्ष मानवीय सम्बन्धों के सन्दर्भ में होती है। बुनियादी शिक्षा के कुछ समर्थकों का यह विलाप मार्मिक है कि आधुनिक शिक्षा केवल साक्षरता और अंकज्ञान मात्र है, इसलिए वह दूसरों के साथ समानुभूति के बोध को नष्ट करता है और शोषण को प्रोत्साहित करने वाला होता है। हमने आधुनिक शिक्षा को ऐसा करते हुए देखा है। उसने लोगों को उनके समुदाय से काट दिया है। उनकी समानुभूति में तथा समुदाय के लोगों के जीवन को रूपान्तरित करने की उनकी क्षमता में, किसी विशेष वृद्धि के बिना उनमें व्यवधान पैदा किया

है। उसने बड़े समूह निर्मित करने के लिए छोटे समुदायों में से लोगों को बाहर कर दिया है। हम यहाँ यह नहीं कह रहे हैं कि यह अच्छा है या बुरा है, बल्कि केवल इस परिवर्तन की ओर इशारा कर रहे हैं। हालाँकि, यह तर्क भी दिया जा सकता है कि ऐसा करना आधुनिक शिक्षा का इरादा नहीं था या कि वह खुद भी इसके खिलाफ है। ऐसा तो केवल उस परिवर्तन के परिणामस्वरूप हुआ है जिस तरह अर्थव्यवस्था और उससे समाज बदला है।

शिक्षा का नियंत्रण और उसे दिशा प्रदान करना

बुनियादी शिक्षा से निकलने वाले सिद्धान्तों के वर्तमान सन्दर्भ को दृष्टि में रखने के लिए और उसके अनुसार विमर्श को निर्मित करने के लिए, आइए हम आज की शिक्षा व्यवस्था के कुछ प्रमुख बिन्दुओं पर गौर करें। शिक्षा व्यवस्था की वित्तीय आपूर्ति और उसका प्रशासन सरकार द्वारा किया जाता है। हालाँकि अब अनेक निजी स्कूल हैं और उनकी संख्या निरन्तर बढ़ रही है, फिर भी उनकी संख्या सरकारी स्कूलों की संख्या से बहुत कम है। दूसरी तरफ समुदाय द्वारा प्रबन्धित स्कूलों की संख्या लगातार घटती जा रही है क्योंकि उन पर दोनों ओर से दबाव पड़ रहा है। सरकार उनका नियंत्रण अपने हाथ में ले रही है या फिर निजी प्रबन्धन के कारण, जो एक या थोड़े से व्यक्तियों के हाथों में होता है। सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था को सुधारने की जरूरत को लेकर भी बहुत मोर्चाबन्दी की गई है। इस जरूरत को लेकर भी चर्चा होती है कि ऐसे सार्वजनिक स्कूल कम से कम विद्यार्थियों के उस आयु–समूह में पहुँचने से पहले सबको उपलब्ध होना चाहिए, जिसमें उन सबको शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्कूल में होना चाहिए। अब इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जा रहा है कि कानूनी प्रतिबद्धता के अन्तर्गत 10वीं कक्षा तक सभी सीखने वालों के लिए अनिवार्य सार्वभौमिक शिक्षा उपलब्ध होना चाहिए। शिक्षा के अधिकार ने पहले ही इसे कानूनी रूप से अनिवार्य कर दिया है कि सभी बच्चों को स्कूल जाना चाहिए और उनमें कम से कम 8 वर्षों तक शिक्षा हासिल करना चाहिए। इसलिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार के अनुसार प्रत्येक बच्चे को स्कूल में दाखिल होकर ऐसी पद्धति से शिक्षित होना आवश्यक है जो किसी न किसी प्रकार से राज्य की शैक्षिक अफसरशाही द्वारा तय किए गए उद्देश्यों और तरीके के अनुरूप हो। प्रयोजनों को लेकर होने वाली चर्चाओं के ऊपर भी यह एहसास साफ तौर पर हावी रहता है कि कौन शैक्षिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करता है और उनके लिए धन की आपूर्ति करता है।

पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकें ऐसे निकायों द्वारा निर्मित की जाती हैं जो सरकार से सम्बद्ध होती हैं, चाहे वह राज्य सरकार हो या केन्द्र सरकार। इसे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के दस्तावेजों की भावना, उनकी समझ और उनके विवरणों के अनुरूप समझा जाता है। शिक्षा के सालों का बँटवारा, जोर दिए जाने वाले पहलू, उसका केन्द्रीय प्रयोजन और ऐसे अन्य सभी मुद्दे भी सरकार द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। इसका एक हालिया उदाहरण है दिल्ली विश्वविद्यालय और कुछ निजी विद्यालयों द्वारा उनके 4–वर्षीय स्नातक कार्यक्रमों को वापस लेना, क्योंकि वे राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुरूप नहीं थे जिसने 10+2+3 के स्वरूप की अनुशंसा की थी। विश्वविद्यालय और शिक्षा मण्डल (बोर्ड) अपने कार्यक्रमों का कैसा स्वरूप निर्मित कर सकते हैं, इसे तय करने की नीति निर्धारित करने की सर्वोच्च शक्ति सरकार के पास होना और राज्य सरकारों तथा उनके शिक्षा मण्डलों के यह जताने के सतत प्रयास कि उनका कार्यक्रम पाठ्यक्रम की राष्ट्रीय रूपरेखा के दस्तावेजों के अनुरूप है – ये भी इसी बात के उदाहरण हैं। स्कूलों में इस नीति का और सरकारी अधिकारियों द्वारा की गई उसकी व्याख्या का पालन करने की इच्छा और आवश्यकता सिर्फ इसलिए नहीं होती कि उनमें से कुछ को सरकार से पैसा मिलता है। इसका कारण उस स्पष्ट वैधता का उपयोग करना भी होता है जो उससे प्राप्त होती है।

परन्तु, शिक्षा के लिए होने वाला अधिकांश निवेश और खर्चा अभी भी सरकार द्वारा ही किया जाता है। यह पैसा जरूर लोगों से ही आता है, परन्तु वह करों, उपकरों और अधिभार के रूप में आता है। ऐसा कोई विशेष उत्पाद या गतिविधि नहीं होती जिस पर लगाया गया कर सीधे शिक्षा के लिए जाता हो। पैसा कहाँ और किस तरीके से खर्च किया जाएगा, यह भी सरकार द्वारा तय किया जाता है। शिक्षकों को दिया जाने वाला पारिश्रमिक और वेतन भी ऐसी चीज है जिसका समुदाय से कोई सम्बन्ध नहीं होता और उसका इस मामले में कोई दखल भी नहीं होता। शिक्षक का स्वभाव, उसके द्वारा उपयोग की जाने वाली सामग्री और विधियाँ तथा बच्चों का मूल्यांकन किस तरह होगा, ये सभी बातें सरकार के शैक्षिक ढाँचों द्वारा तय की जाती हैं।

सामुदायिक भागीदारी और उसका व्यावहारिक क्रियान्वयन

स्कूली शिक्षा की प्रक्रिया में समुदाय को भागीदार बनाने के विभिन्न प्रयास हुए हैं, जिनमें शिक्षकों की नियुक्ति करने और उनका प्रबन्धन करने जैसे काम भी शामिल रहे हैं। स्कूल प्रबन्धन समितियों का विचार, जिनमें माता–पिता सदस्यों के रूप में शामिल रहते हैं, भी सहभागिता की भावना से ही उपजा है। परन्तु इस प्रयास के परिणाम निराशाजनक रहे हैं। जो महत्त्वपूर्ण समस्या चिन्ता का कारण है वह है शैक्षिक प्रक्रिया को तय करने और उसमें योगदान देने में समुदाय की सीमित भागीदारी। समुदाय की वर्तमान भूमिका ज्यादा से ज्यादा सहायक श्रम की ही रही है। उनकी भागीदारी स्कूल के भवनों के लिए दान देने और उनके निर्माण में मदद करने, शिक्षकों की उपस्थिति को सुनिश्चित करने और उसकी निगरानी करने, या बच्चों को इकट्ठा करके स्कूल लाने, ले जाने की ही रही है। इसके अलावा उनकी कोई और भूमिका या योगदान नहीं होता। स्कूल से अपने बच्चों के लिए उनकी अपेक्षाएँ उनको सेवा क्षेत्र, सफेद कालर वाली दफ्तरी नौकरियों या सरकारी नौकरियों के लिए तैयार करने की होती हैं। उनके आसपास मौजूद अर्थव्यवस्था का हिस्सा बनने के लिए बच्चों को तैयार करने के लिए स्कूल की शिक्षा में बहुत कम गुंजाइश होती है। जहाँ एक ओर हमारा यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि किसी भी नौकरी के अवसर तक हरेक की पहुँच हो, वहीं स्थानीय समुदाय की उपेक्षा करके, स्कूली शिक्षा लगातार पास–पड़ोस के आर्थिक उद्यम के बड़े हिस्से को तुच्छ बना देती है। इसके साथ ही उनके अभीप्सित लक्ष्यों को न समझने के कारण समुदाय स्कूल के साथ और खुद अपने बच्चों के साथ कारगर संवाद करने में असमर्थ रहता है। हाल के दस्तावेजों ने इस चिन्ता को उठाने का प्रयास किया है और समुदाय की ज्यादा बड़ी भूमिका की जरूरत को दर्शाया है। परन्तु, अभी क्षितिज पर उसके दिखाई देने के कोई संकेत नहीं हैं। यह स्पष्ट है कि इसे सम्भव बनाने वाले कारकों का न होना और उसके फलस्वरूप सभी पक्षों में इसके प्रति आस्था का अभाव, एन.सी.एफ.में व्यक्त की गई समुदाय की भूमिकाओं के दायरे और उनके वास्तविक क्रियान्वयन, दोनों को कठिन बना देता है।

पाठ्यचर्या से उभरते प्रमुख सिद्धान्त

उपरोक्त समस्याओं के प्रकाश में, आइए हम पाठ्यचर्या सम्बन्धी उन प्रमुख सिद्धान्तों की फिर से पड़ताल करें जिन्हें हम बुनियादी शिक्षा के विचार से निकालते हैं। ऐसा करते समय, हमें यह याद रखना होगा कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था बुनियादी शिक्षा के विचार को हास्यास्पद दिखाने का प्रयास करती है। ये सिद्धान्त जिस रूप में उन्हें यहाँ व्यक्त किया गया है उस तरह नहीं देखे जाते, बल्कि वे उस आन्दोलन की रीढ़ की तरह थे जिसने इतने अधिक लोगों को संलग्न किया और उनको शैक्षिक और अन्य सम्बन्धित लक्ष्यों को हासिल करने के लिए विभिन्न प्रकार की प्रक्रियाओं को प्रारम्भ करने के लिए प्रेरित किया। जिस तरह से ये सिद्धान्त उभरकर आए वह एक समान नहीं था, और न ही उनमें निश्चित समानताएँ थीं। पर उनके पीछे एक आधारभूत भावना काम कर रही थी। वह भावना बाहरी लोगों के द्वारा लादे गए शासन का प्रतिरोध करने और समाज का पुनर्निर्माण करने की आकांक्षा से उपजी थी। हो सकता है कि उसे बुनियादी शिक्षा की अवधारणा में पूरी तरह सुस्पष्ट रूप से व्यक्त या प्रतिबिम्बित न किया गया हो, पर वह ऐसी शिक्षा के विचार का आधार थी। आइए, हम इन सिद्धान्तों में से कुछ पर गौर करें :

(क) यह ऐसी प्रक्रिया है जो समुदाय, उसकी धारणाओं, चिन्ताओं और अनुभवों को शामिल करने पर आधारित है। इस सिद्धान्त को किस तरह समझा जाएगा और किस हद तक समुदाय को इस प्रक्रिया में शामिल किया जाएगा या उसकी धारणाओं को बदलने का प्रयास किया जाएगा यह बहस का मुद्दा हो सकता है। शिक्षा की भूमिका को संस्कृति, परम्परा और विरासत की संरक्षक होने के साथ ही नए विचारों और तरक्की को लाने वाली प्रक्रिया, दोनों तरह से देखे जाने के कारण उपरोक्त मुद्दे पर कोई एक दृष्टि होना मुश्किल है। इसलिए, इस बारे में उस काल के अनेक भारतीय शिक्षाविदों के दृष्टिकोण अलग–अलग थे। यह बहस कि कौन अधिक शिक्षित है, निरक्षर गैर–पढ़ा–लिखा व्यक्ति या कि जिसने 'केवल' किताबें पढ़ी हैं, आज भी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है।

(ख) यह ऐसी प्रक्रिया है जो बच्चे के सन्दर्भ में स्थापित की जाती है और जो उसके अनुभवों पर आधारित होती है और उनका उपयोग करती है। यह एक और मुद्दा है जिसे 'रचनावाद (कंस्ट्रक्टिविज्म) या निर्माणवाद (कंस्ट्रक्शनिज्म) – के विचार को केन्द्र में ला दिया है'। (यहाँ जो मुद्दा उठाया जा रहा है उसके सीमित प्रयोजन को देखते हुए हम यहाँ उनकी समानताओं और अन्तरों का विश्लेषण करने की कोशिश नहीं करेंगे।)

यह एक ओर उस ज्ञान के दायरे पर ध्यान केन्द्रित करता है जिसके साथ हम काम कर रहे हैं, लेकिन साथ ही यह प्रश्न भी उठाता है कि ज्ञान क्या है और कौन–सा ज्ञान जायज है। जहाँ शिक्षा को जानने की एक प्रक्रिया के रूप में देखना सर्वमान्य है, वहीं उसमें बच्चे और समुदाय के ज्ञान के केन्द्रीय महत्त्व का मुद्दा यह प्रश्न उठाता है कि औपचारिक स्कूल व्यवस्था में किसके साथ काम करना चाहिए।

सीखने की प्रक्रिया पर केन्द्रित विश्लेषण इसे हास्यास्पद बनाकर शिक्षा को ज्ञान प्रदान करने की प्रक्रिया बनाम ज्ञान का निर्माण करने की प्रक्रिया के मुद्दे तक सीमित कर देता है। हालाँकि ऐसा कहना थोड़ा कठोर समझा जाएगा, परन्तु शिक्षा के कार्यक्रम अकसर ज्ञान की पुष्टि करने के ढाँचों को भुला ही देते हैं। वे केवल इस पर जोर देते हैं कि बच्चे स्वयं अपने उत्तरों का निर्माण करें। इसे अकसर बुनियादी शिक्षा और ज्ञान के स्थानीय ढाँचों के प्रति आदर से जोड़ा जाता है।

(ग) बच्चे की भाषा का उपयोग और उसके भाषाई ज्ञान का और अधिक उपयोग करना। इस विशेष सिद्धान्त का आधार इसके दो महत्त्वपूर्ण तत्व हैं। एक उस समय के विशेष सामाजिक–आर्थिक सन्दर्भ से निकलता है और कुछ दृष्टियों से अभी के भी और दूसरा सीखने की मानवीय तरकीबों के बारे में व्याप्त भावना से निकलता है। स्वयं के प्रति सम्मान की भावना और अपनी पहचान निर्मित करना तथा जिस समुदाय से बच्चा आता है उसकी संस्कृति, परम्पराओं और सोचने के तरीकों के प्रति सकारात्मक रवैया रखना, इन सबके लिए स्थानीय भाषा की आवश्यकता होती है। उसका इस्तेमाल अपनी स्वयं की अवधारणाओं को सामने लाने और किताबों की औपचारिक और अमूर्त धारणाओं से उनकी तुलना करने में बच्चे को समर्थ बनाता है। स्थानीय भाषा का उपयोग इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसका मतलब उसका विस्तार और विकास करते हुए उसमें नवीन अवधारणाओं को शामिल करना भी होता है। यह समुदाय को संगठित करने और उनके बीच में विचारों को साझा करने का साधन भी है, बजाय इसके कि उन अनेक लोगों को इस प्रक्रिया में भागीदार बनने से रोक दिया जाए जो स्कूल की नई भाषा को नहीं समझ पाते, और इसलिए वे उन लोगों से नए ज्ञान को हासिल कर आत्मसात नहीं कर पाते जिन्होंने उसे केवल किताबों के सम्पर्क में रहने और उन्हें पढ़ने से सीखा है। इसलिए, मातृभाषा के उपयोग के पीछे सिर्फ यह मासूम शैक्षणिक उद्देश्य भर नहीं है कि इससे बच्चे को अपने अवधारणात्मक ढाँचे निर्मित करने में मदद मिलेगी, बल्कि यह इस कहीं अधिक गहरी भावना को व्यक्त करता है कि बच्चों और उनके समुदाय की भाषा को महत्त्व और सम्मान दिया जाना चाहिए और उसमें नए विचारों और ज्ञान को शामिल किया जाना चाहिए। इस प्रकार यह समुदाय को अपनी नियति स्वयं निर्मित करने के लिए सशक्त बनाता है।

(घ) सभी बच्चों और समुदाय के सभी सदस्यों तक पहुँचना, उनके काम का सम्मान करना और उसके तत्वों को स्कूल में शामिल करना। बच्चों को क्या सीखना चाहिए, बच्चों की सीखने में मदद करना और उनके मूल्यांकन के लिए जिम्मेदारी स्वीकार करना, इन सभी में समुदाय की भागीदारी सुनिश्चित करना। स्थानीय समुदाय बच्चों को विभिन्न प्रकार के कारीगरों की भूमिका की समझ और उनका ज्ञान प्रदान कर सकता है। शैक्षिक कार्यक्रमों का समुदाय की जरूरतों और उसके अनुभवों से जुड़ना, और उनके द्वारा चुने गए विकल्पों के प्रति संवेदनशील होना जरूरी है। शिक्षा की एक राष्ट्रीय नीति और पाठ्यचर्या की राष्ट्रीय रूपरेखा (जिसका पालन करने के लिए सभी स्कूल और सभी शिक्षक बाध्य होंगे) विकसित करने के प्रयास से इस दृष्टिकोण के स्पष्ट अन्तर को देखा जा सकता है। स्कूल के स्तर पर बहुस्तरीय विकल्पों के होने और बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों के पुनर्निर्माण के लिए ऐसी विविधता की जरूरत है जो कि फिलहाल शिक्षा के स्वरूप की कल्पना का हिस्सा नहीं है। यह स्थिति व्यक्तिगत स्तर पर जुड़ाव महसूस करते हुए काम करने की भावना, काम के प्रति स्वामित्व की भावना, पहल करने की इच्छा और रचनात्मकता (सिर्फ समुदाय की ही नहीं, बल्कि, जो सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, शिक्षकों की भी) को नष्ट करती है।

(च) ऐसे समेकित अनुभवों का उपयोग करना जो नीतिबोध और सरोकारों के बोध (हृदय), अवधारणाओं, कार्य–प्रणालियों और तार्किक योग्यता (दिमाग) तथा चीजें निर्मित करने की योग्यता, परिश्रम की सामर्थ्य

और सृजनात्मकता (हाथ) को विकसित करें। बच्चों को किसी व्यवसाय में काम करने के अवसर सुलभ करवाने के लिए, स्कूल को ऐसी जगह स्थित होना चाहिए जहाँ बच्चे ऐसी गतिविधियों में भाग ले सकें। इसलिए, यह महत्त्वपूर्ण है कि स्कूल की स्थिति ऐसी हो जहाँ समुदाय उसके साथ ऐसी गतिविधियों में सहभागी हो सके। ये पहलू कमरों का आकार या खेल के मैदान का आकार आदि के समान स्थूल यांत्रिक चिन्ताओं से ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं।

(छ) बच्चों में आत्म–विश्वास और सामाजिक प्रतिबद्धता का विकास होना, समुदाय में तथा स्कूल के काम करने में अपनी भूमिका को समझना और उसके लिए जिम्मेदारी लेना सीखना।

उपरोक्त सिद्धान्तों की दृष्टि से स्थानीय समुदाय से ऐसे शिक्षक खोज निकालना भी महत्त्वपूर्ण होगा, जिन्हें प्रारम्भिक स्कूलों में, खासकर प्राथमिक कक्षाओं में, पढ़ाने के लिए विशेष रूप से तैयार किया जा सके। इसके लिए, उनके पास स्थानीय ज्ञान, योग्यता, समानुभूति और बच्चों की संस्कृति, परम्पराओं और भाषा की समझ होना किसी शैक्षणिक डिग्री के होने से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होगा।

वर्तमान सन्दर्भ में ये सिद्धान्त

जाहिर है कि शिक्षा के वर्तमान सन्दर्भ में इन सिद्धान्तों के लागू होने की कल्पना करना आसान नहीं है। वर्तमान परिदृश्य में समुदाय के लिए स्कूली शिक्षा का संचालक, साधनों की आपूर्ति करने वाला और उसका स्वामी हो सकना किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है। पिछले तीन दशकों या उससे भी कुछ अधिक समय से, समुदाय को सहभागी बनाने के लिए अलग तरह की प्रक्रियाएँ निर्मित की गई हैं। वर्तमान में शिक्षा के अधिकार ने एक स्कूल प्रबन्धन समिति (स्कूल मैनेजमैंट कमेटी – एस.एम.सी.) का होना अनिवार्य कर दिया है जिसमें स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों के माता–पिता प्रमुख सदस्यों के रूप में शामिल होते हैं। शिक्षकों की उपस्थिति की निगरानी रखने, स्कूल के भवन में योगदान देने और उसके निर्माण होने की देखरेख करने जैसे कामों में तथा स्कूल के शिक्षकों के साथ मिलकर स्कूल के विकास की योजना बनाने जैसे कार्यों सहित कुछ अन्य बातों में समुदाय को शामिल करने के प्रयास किए गए हैं। कुछ सूक्ष्म–स्तर पर और कुछ थोड़े अधिक विस्तृत स्तर पर समुदाय की संस्कृति, भाषा और ज्ञान को शामिल करने, साथ ही मातृभाषा के उपयोग और बहुभाषावाद के लिए आवाज उठाने के प्रयास भी किए गए हैं। एन.सी.एफ. 2005 ने इन सभी के साथ ही किसी व्यवसाय के कार्य का अनुभव प्रदान करने, मानवीय श्रम के प्रति आदर की भावना विकसित करने आदि पहलुओं सहित बच्चों के पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करने पर जोर दिया है। पर ऐसे सभी प्रयास आधे–अधूरे मन से किए गए हैं और उसमें केन्द्रीकृत अफसरशाही के विशाल ढाँचे को जस का तस रहने दिया गया गया है। वास्तव में, विकेन्द्रीकरण की कोरी शाब्दिक स्तुति के साथ नियंत्रण और निर्देशन ज्यादा ही बढ़ गया है और स्कूल से और भी दूर हो गया है। बच्चों और समुदाय के प्रति संवेदनशील होने के बजाय, यह व्यवस्था उन पहलुओं के झूठे या गढ़े गए साक्ष्य और आँकड़े प्रस्तुत करने के लिए काम करती है जिन्हें केन्द्रीकृत अधिकारियों के द्वारा महत्त्वपूर्ण माना जाता है। समुदाय को शामिल न किए जाने के कारण और केन्द्रीय स्तर पर निर्धारित शिक्षा कार्यक्रमों के कारण, शिक्षा की व्यवस्था अत्यधिक रूप से अलगाव पैदा करने वाली बनती जा रही है। हालाँकि हो सकता है कि आवश्यक रूप से एक ऐसी स्कूली व्यवस्था का होना सम्भव और उचित न हो जिसमें स्कूलों का प्रशासन ग्रामीण समुदाय द्वारा किया जाता हो, वहीं दूसरी ओर स्कूलों के संचालन और प्रशासन की जिम्मेदारी को चुने गए जन प्रतिनिधियों को सौंपने के प्रयास आधे–अधूरे मन से किए गए हैं और परिणामस्वरूप कारगर साबित नहीं हुए हैं। यह मूल रूप से उन धारणाओं के प्रतिकूल है जो बुनियादी शिक्षा में शामिल हैं। उदाहरण के लिए प्रशासन की जिम्मेदारी के अनिवार्य अंग के रूप में समुदाय को उसकी आर्थिक सोच, संस्कृति और कार्यपद्धति के सहित शामिल करने की सम्भावनाओं को परखा जाना चाहिए।

शिक्षा व्यवस्था के सार्वभौमिक और एकरूप होने को आवश्यक मानकर उसका संचालन किया जाता है। विविधता को स्वीकार न करके उसमें निष्पक्षता का भ्रम पैदा करने का प्रयास किया जाता है। विशालता, एकरूपता और एक ही दिशा में उन्मुख आकांक्षाओं के परिणामस्वरूप अनेक विकृतियाँ पैदा होती है, जिनमें विद्यार्थियों की छँटनी हो जाना, जमीनी स्तर पर वास्तविक सहभागिता से परहेज होना, वंचित तथा सामाजिक हाशिए की पृष्ठभूमि वाले बच्चों और सीखने की दृष्टि से पिछड़े हुए बच्चों को न्यायोचित सुविधा न मिल

पाना आदि शामिल हैं। हम उस रवैए से लड़ रहे हैं जो मानता है और यकीन करता है कि वंचित पृष्ठभूमियों से आने वाले बच्चे सीखने के लिए बुनियादी रूप से ही उपयुक्त नहीं होते। उनके लिए किया जाने वाला कोई भी अतिरिक्त प्रयास बेकार ही जाने वाला है। यह दृष्टिकोण सीखने की जिम्मेदारी बच्चों और समुदाय पर डाल देता है। वह कहता है कि यदि सीखने की चाह नहीं होगी तो कोई भी शिक्षित नहीं होगा, चाहे शैक्षिक कार्यक्रम की गुणवत्ता कैसी भी हो। 100–150 साल पहले की तरह आज भी, हमारे यहाँ माँग अँग्रेजी और अँग्रेजी माध्यम के स्कूलों की है। इसे यह कहकर खारिज कर देना अनुचित और नासमझी भरा होगा कि यह विकृत दिमाग वाले लोगों द्वारा पैदा की गई एक काल्पनिक माँग है। नौकरियाँ दिए जाने की निरन्तर केन्द्रीकृत होती हुई व्यवस्था, केन्द्रीकृत आकलन और स्पर्धात्मक प्रदर्शन के माहौल के बीच, बुनियादी तालीम की भावना शिक्षा के स्कूली कार्यक्रम का हिस्सा नहीं बन सकती।

बुनियादी शिक्षा के बारे में भ्रान्तियाँ

बच्चों के सीखने की आपस में तुलना करने वाली, फिर क्षेत्रवार ढंग से उनकी तुलना करने वाली और भविष्य की बेहतर शिक्षा और बेहतर अवसरों की ओर ले जाने वाले मार्ग के रूप में ही प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित करने वाली व्यवस्था से, बुनियादी शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्तों और प्रयोजनों का तालमेल नहीं बिठाया जा सकता। बुनियादी शिक्षा के अनुसार, शिक्षा का प्रयोजन किसी छन्ने जैसा नहीं हो सकता। स्कूली शिक्षा को एक कारगर छाँटने वाली मशीन की तरह देखने के परिणामस्वरूप बुनियादी शिक्षा के बारे में अनेक भ्रान्तियाँ पैदा हुई हैं। ये इसके उन सिद्धान्तों और मूलभूत उद्देश्यों के बारे में लोगों को भ्रमित करती हैं जिनको काम तथा शिक्षा और समुदाय की सहभागिता द्वारा निरूपित किया जाता है। उदाहरण के लिए, बुनियादी शिक्षा का आशय भ्रामक रूप से निम्नलिखित में से कुछ भी मान लिया जा सकता है :

(क) यह ग्रामीण बच्चों और गरीब बच्चों के लिए होती है। इन बच्चों को इस प्रकार की शिक्षा की जरूरत होती है क्योंकि उनके लिए अपने हाथों से काम करना सीखना जरूरी होता है।

(ख) बच्चे की मातृभाषा के उपयोग का मतलब केवल उस भाषा का इस्तेमाल करना होता हो जो बच्चे के निकटतम परिवार, विशेष रूप से उसकी प्राथमिक देखभाल करने वाले व्यक्ति, द्वारा बोली जाती है।

(ग) इसमें चरखा चलाना और उसके जैसे पाठ्यचर्या में शामिल अन्य व्यवसायों के बारे में सीखना अवश्य शामिल होगा और यह निश्चित ही नए विचारों और नई दिशाओं को आत्मसात करने में बाधक होगी। स्कूल के लिए चुने गए व्यवसाय या काम अवश्य ही उन्हीं विचारों पर आधारित होंगे जो तब प्रचलित थे जब 70 साल पहले भारत में बुनियादी शिक्षा का विचार विकसित किया जा रहा था।

(घ) स्कूल का वित्तीय आधार स्वयं स्कूल के उत्पादन से होने वाली आय ही होना चाहिए।

(च) स्कूल में किए जाने वाले सभी कार्य परस्पर एक–दूसरे से और विभिन्न व्यवसायों के माध्यम से काम करने के द्वारा सिखाई जाने वाली अवधारणाओं से जुड़े होना चाहिए।

(छ) बुनियादी शिक्षा का मतलब बच्चों को व्यवसायों के लिए तैयार करना होता है और यह व्यावसायिक शिक्षा की भूमिका जैसी होती है।

(ज) बुनियादी शिक्षा केवल प्रारम्भिक स्तर तक ही होती है और इसके सिद्धान्त माध्यमिक और उच्चतर–माध्यमिक शिक्षा के लिए उपयोगी नहीं हो सकते। उच्च शिक्षा के लिए इसके कोई निहित प्रयोजन नहीं हैं।

इनमें से कोई भी धारणा सही नहीं है और इनमें से कुछ तो वास्तव में बुनियादी शिक्षा की मूल भावना के ही प्रतिकूल हैं। परन्तु बहुत से लोगों के लिए इनके प्रमुख धारणाओं के रूप में उभरने के पीछे के कारणों की वजह यह तथ्य था कि बुनियादी शिक्षा के विचार आजादी की लड़ाई के दौरान विदेशी शासन का प्रतिरोध निर्मित करने और उसकी सहायता करने के साधन के रूप में निकलकर आए थे। साथ ही उनमें आर्थिक और अन्य प्रकार के ऐसे तत्व निहित थे जो प्रतिरोध के किसी स्वरूप को निरूपित करते थे। बुनियादी शिक्षा के विचार और पाठ्यचर्या एक विशेष प्रकार के राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय पहचान की धारणा के इर्द–गिर्द विकसित हुए थे। अन्य बातों के अलावा, उनमें वह भावना भी व्याप्त है। वह एक ऐसी शैक्षिक प्रक्रिया है जिसमें सहभागिता के माध्यम

से नियंत्रण बहुत हद तक 'समुदाय' का होता है और खुद सरकार की भूमिका न्यूनतम होती है। पर इन सभी सिद्धान्तों के साथ काफी हद तक समझौता करना पड़ा और उन्हें हल्का करना पड़ा जब विस्तार करती हुई स्कूली शिक्षा की व्यवस्था में ऐसे स्थानों पर भी स्कूल खोले जाने की जरूरत पड़ी जहाँ समुदाय उसके लिए तैयार नहीं था। एक ओर सिद्धान्त थे और दूसरी ओर जमीनी हकीकत थी, यह देखते हुए कोई अचरज की बात नहीं है कि बुनियादी शिक्षा का विचार बहुत विकृत कर दिया गया।

ऊँच–नीच का पदानुक्रम, दूरी और केन्द्रीकरण

केन्द्रीकृत व्यवस्था की अन्तर्निहित प्रकृति ऐसी है जिसमें स्कूल तथा शिक्षक की कार्यप्रणाली और भरोसे को बाहर से आने वाले निरीक्षक, जो एक बाह्य परीक्षा का संचालन भी करता है, की टिप्पणियों और विचारों के अधीन रहना होता है। इस व्यवस्था का तालमेल उस शिक्षा की भावना से नहीं बैठता जिसमें बड़ा हिस्सा स्थानीय कल्पना और प्रशासन का होता है। आजादी के पहले के परिदृश्य में उभरने वाली उस तरह की शिक्षा व्यवस्थाओं में स्कूलों में स्वयं को प्रेरित करने और अपने उद्देश्यों को निर्मित करने पर जोर दिया गया था। उनकी ऊर्जा और उद्यम का स्रोत व्यक्तिगत और सामूहिक चिन्तन और कल्पनाएँ थीं जिसमें जिम्मेदारी लेने और चुने गए विकल्पों को क्रियान्वित करने के अवसर थे। उसके रास्ते में आने वाली चुनौतियों का सामना किया जाना था। उन्हें बाधाओं के बजाय ऐसी घटनाओं की तरह लिया जाना था जो स्वयं के लिए पेश की गई चुनौतियाँ थीं। उसमें सृजन की अनुभूति थी, नई चीजें सीखने और उन्हें आपस में साझा करने का रोमांच था। उनको लगता था कि वे कुछ सार्थक और महत्त्वपूर्ण कर रहे थे और साथ ही वे अपने प्रयासों के परिणामों को प्रत्यक्ष रूप से देख सकते थे। ऐसा नहीं कि वे उत्कृष्ट पद्धतियों और सर्वोत्तम रणनीतियों का उपयोग करने में समर्थ थे, बल्कि वे जिनका उपयोग करते थे वे उनके और उनके विद्यार्थियों के लिए सबसे अच्छी थीं, क्योंकि वे उनमें यकीन करते थे। और उससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात थी कि वे ही उनके मालिक थे क्योंकि उन्हें लगता था कि उनको उन्होंने स्वयं रचा था।

केन्द्रीकृत सत्ता के कारण होने वाली अधिकाधिक औपचारिक नियमबद्धता, बौद्धिकता, विशेषज्ञवाद, दम्भ और स्थानीय बातों के प्रति अनादर की भावना के परिणामस्वरूप इनमें से कई विचारों और सिद्धान्तों का स्थूलीकरण कर दिया गया है। शिक्षा के बारे में, सीखने की प्रक्रिया के बारे में और समाज के बारे में बढ़ते हुए ज्ञान ने उन लोगों को बहुत पीछे छोड़ दिया है जो वास्तव में शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, और उनको भी जो इसके प्रमुख सहभागी हैं। शिक्षा का विराट केन्द्रीकृत ढाँचा उनमें से किसी भी समूह का आदर करने में और उन्हें उनकी भूमिका, जिम्मेदारी और उसे निभाने के प्रति सचेत करने में असमर्थ रहा है। बुनियादी शिक्षा के शैक्षिक सिद्धान्तों के मूल तत्व के लिए इस व्यवस्था की आधारभूत रूप से पुन: संरचना किया जाना आवश्यक होगा। यह एक बहस का मुद्दा है कि हम स्थानीय नियंत्रण चाहते हैं या नहीं या यह चिन्ता करना कि स्थानीय नियंत्रण से विकृतियाँ पैदा होंगी और यह आधुनिकीकरण के कार्यक्रम के विरुद्ध होगा। उस स्थिति को मानने पर और यदि हम शिक्षा पर राज्य के नियंत्रण में विश्वास करते हैं, हो सकता है कि बुनियादी शिक्षा आगे बढ़ने का सर्वोत्तम मार्ग न हो।

हृदय कांत दीवान वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। वे एकलव्य के संस्थापक समूह के सदस्य और विद्या भवन सोसाइटी, उदयपुर के शैक्षिक सलाहकार भी रहे हैं। वे पिछले 40 वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न तरीकों से और उसके विभिन्न पहलुओं पर काम करते रहे हैं। विशेष रूप से, वे शिक्षा में अभिनव परिवर्तनों और राज्य के शैक्षिक ढाँचों में संशोधन के प्रयासों से जुड़े रहे हैं। उनसे hardy.dewan@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

कक्षा के बाहर काम और सोच-विचार के माध्यम से सीखना

अर्धेन्दु शेखर चटर्जी

स्थानीय परिवेश और आजीविकाओं/ जीवन पर आधारित शिक्षा

(यह पी.सी.बी.ई. – प्लेस एण्ड कम्युनिटी बेस्ड एजुकेशन, अर्थात स्थान/स्थिति तथा समुदाय आधारित शिक्षा – के नाम से भी जानी जाती है। यह ऐसी शिक्षा होती है जो विद्यार्थियों को उनके स्थानीय प्राकृतिक और सांस्कृतिक परिवेश के साथ जोड़ती है। पी.सी.बी.ई. जीवन के स्थानीय तौर–तरीकों तथा रोजगार पैदा करने के साधनों पर आधारित होती है, उन्हें प्रतिबिम्बित करती है, उनकी ओर उन्मुख रहती है और उनके लिए प्रासंगिक होती है।)

सीखने और सिखाने की दृष्टि से पी.सी.बी.ई. मुख्य रूप से, एक ओर तो किसी स्थान के सूक्ष्म–जलविभाजक एवं जैविक क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाली जमीन और जल संसाधनों, जैव–विविधता (बॉक्स 1), तथा पारिस्थितिक तंत्र (बॉक्स 2) पर ध्यान केन्द्रित करती है; और दूसरी ओर उस क्षेत्र के सांस्कृतिक इतिहास या इन जैव–भौतिक संसाधनों के प्रबन्धन के लिए स्थानीय समुदायों तथा समूहों द्वारा उपयोग किए जाने वाले उपकरणों और तकनीकों पर जोर देती है। पी.सी.बी.ई.एक सर्वांगीण तथा बहु–विषयी प्रक्रिया है और ज्ञान, कौशलों, तकनीकों व संसाधनों आदि को एक–दूसरे के साथ बाँटने को सुगम बनाने के लिए उपयोग किए जाने वाले विभिन्न प्रबन्धन ढाँचों और सामाजिक व्यवस्थाओं पर ध्यान देती है।

पी.सी.बी.ई. शिक्षा की विभिन्न पद्धतियों के अन्तर्गत विकसित हुए सिद्धान्तों का मिश्रण या संयोजन होता है। इन पद्धतियों में प्रमुख हैं : 'पर्यावरण शिक्षा', 'पारिस्थितिकीय साक्षरता', समुदाय–आधारित शिक्षा, सामाजिक रूप से उपयोगी उत्पादक कार्य आधारित शिक्षा, समस्या निवारण व रचनात्मक सोच पर आधारित शिक्षा तथा सहभागिता–आधारित सीखने के काम और नियोजन, संवहनीय विकास के लिए शिक्षा इत्यादि। इसे अन्य पद्धतियों से अलग करने वाली विशेषताएँ हैं: इसका स्थान विशेष पर आधारित होना, तथा ऐसी गतिविधियों या परियोजनाओं पर आधारित होना जिनके माध्यम से विद्यार्थी उनके द्वारा छानबीन किए जाने वाले सवालों की गहराई और विस्तार को स्वयं तय करते हैं, और इस दृष्टि से यह अन्वेषण करते हुए सीखने की एक खुली पद्धति होती है।

बॉक्स 1 : जैव–विविधता

जीवन स्वरूपों की विभिन्न प्रजातियों और उप–प्रजातियों, परिवारों या श्रेणियों की विविधता के साथ ही वे जिन पारिस्थितिक तंत्रों और परिवेशों में रहते हैं और विभिन्न भूमिकाएँ निभाते हैं, उन सबकी विविधता को ही जैव–विविधता कहते हैं।

इन सभी को ऐसे किसी खास क्षेत्र के सन्दर्भ में देखा जाता है जिसे अकसर वहाँ की मिट्टी, स्थलाकृति और साथ ही जलवायु (विशेष रूप से वर्षा के परिमाण और उसके वितरण का दायरा तथा तापक्रम जो अकसर पुन: उस स्थान की ऊँचाई और उसके अक्षांश तथा देशान्तर – अर्थात उसकी भौगोलिक स्थिति – पर निर्भर करते हैं) के द्वारा परिभाषित किया जाता है।

बॉक्स 2 : पारिस्थितिक तंत्र

पारिस्थितिक तंत्र किसी दी गई सीमा रेखा के दायरे में आने वाला स्थान होता है। हम उसके भीतर आने वाले सभी जीव स्वरूपों की आबादियों और समूहों का 'उत्पादकों', 'उपभोक्ताओं' या 'विघटन करने वालों' के रूप में अध्ययन करते हैं तथा जिस परिवेश या स्थान में वे रहते हैं उसके निर्जीव घटकों के साथ उनके पारस्परिक सम्बन्धों का निरीक्षण करते हैं। इस अध्ययन में उनके जीवन चक्रों, पदार्थों के चक्रीय परिवहन, एक रूप से दूसरे में रूपान्तरणों को और साथ ही उस पूरे तंत्र के भीतर तथा उससे बाहर होने वाले ऊर्जा के प्रवाह पर विशेष ध्यान दिया जाता है। धान के खेत, दलदली जमीनें, घर या स्कूल के बगीचे या सिंचाई पर निर्भर सूखे इलाके, काटने और जलाने वाली खेती की पद्धति वाले क्षेत्र, ऊँचाई पर स्थित खेत, ये सभी मानव–निर्मित या कृषि–आधारित पारिस्थितिक तंत्रों के कुछ उदाहरण हैं। दूसरी ओर, जंगल, नदियाँ और धाराएँ, घास या झाड़ियों वाले मैदान, ये सभी प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों के कुछ उदाहरण हैं।

अपने हाथों से पौधे लगाना सीखते बच्चे

दूसरी शिक्षा पद्धतियों से पी.सी.बी.ई. की भिन्नता का कारण मुख्य रूप से उसकी वे मान्यताएँ हैं जो उसके दृष्टिकोण से यह बताती हैं कि लोग कैसे कोई बात सीखते हैं। चित्र **क** चार चरणों की एक संक्षिप्त रूपरेखा और उनसे सम्बन्धित गतिविधियों एवं प्रक्रियाओं के चार समूहों को दर्शाता है। पूछताछ और जाँच–पड़ताल पर आधारित सीखने की इस पद्धति का विस्तृत विवरण इस प्रकार है :

चरण 1

इसका प्रारम्भ बिन्दु सीखने वालों के बीच इस बारे में एक चर्चा होती है कि वे पहले से ही किसी व्यापक विषय या उसके किसी संकीर्ण उप–विषय के बारे में क्या जानते हैं (उदाहरण के लिए मिट्टी की उर्वरा शक्ति एक व्यापक विषय है, जबकि कम्पोस्ट या हरी खाद संकीर्ण उप–विषय हैं, इसी प्रकार केंचुआ खाद या उसका घोल बनाना भी उप–विषय है)।

कई बार कक्षा के बाहर निकलकर किसी जंगल, पवित्र वृक्षों के झुरमुट, तालाब, झील या नदी, किसी खेत, या खाद्य प्रसंस्करण इकाई को देखने जाने का आयोजन करने की जरूरत होती है, ताकि उससे सीखने वालों के मन में प्रश्न उत्पन्न हों। इसके अलावा ऐसे स्थान जानकारी के सम्भावित स्रोत भी होते हैं। वे क्या जानना या मालूम करना चाहेंगे (क्या, कहाँ, किससे, आदि?), उसकी सूची बनाई जाती है।

चरण 2

सीखने वाले अकसर छोटे–छोटे उप–समूह बना लेते हैं और जानकारी इकट्ठी करने के लिए बाहर के भ्रमण पर निकलते हैं। वे अपने खुद के अवलोकनों को दर्ज करते हैं। साथ ही अध्ययन के विषय से प्रभावित लोगों या भागीदारों से तथा स्थानीय विशेषज्ञों और स्रोत व्यक्तियों से अनौपचारिक, अर्ध–संरचित बातचीत के दौर आयोजित किए जाते हैं। इसके बाद, दूसरे स्तर की सम्बन्धित जानकारी अखबारों, किताबों, नक्शों आदि से हासिल की जाती है।

चरण 3

इकट्ठी की गई जानकारियों को प्रस्तुत किया जाता है और उन पर चर्चा की जाती है। उनको सारणियों में वर्गीकृत किया जाता है। औसत मानों तथा विचलनों की गणना की जाती है, उनकी समानताओं और अन्तरों की सूची बनाई जाती है, अकसर सम्बन्धित मानचित्रों का उपयोग करते हुए जानकारियों के अन्तर्सम्बन्धों की छानबीन की जाती है। कारणों तथा परिणामों के रेखाचित्र बनाए जाते हैं। सवालों के समाधानों के संयोजन बनाए जाते हैं या उनकी प्राथमिकताएँ निर्धारित की जाती हैं ताकि उपयुक्त हल पता किए जा सकें। साथ ही संसाधनों के उपयोग सम्बन्धी टकरावों की पहचान की जाती है। यह विश्लेषण तथा संश्लेषण सीखने वालों को आगे की परिकल्पना (भविष्य में क्या होने की सम्भावना है, इसका सिद्धान्त प्रतिपादित करना) तक ले जाता है। शिक्षक या सहायक खुले उत्तरों वाले सवाल पूछकर सीखने वालों को प्रोत्साहित करते हैं।

हम कैसे सीखते हैं?

चित्र क

हम किस बात के बारे में निश्चित रूप से जानते हैं, या किस बात के बारे में हम अनिश्चित हैं। हम क्या जानना चाहते हैं?

क्या, कौन, कहाँ आदि की खोज
बाहर जाना, निरीक्षण करना, जानकारियाँ (प्राथमिक) एवं आँकड़े (द्वितीयक) इकट्ठे करना। प्राप्त जानकारियों की रिपोर्ट तैयार करना

अच्छा है, अब हमें समस्यायों का पता है।

अपनी रिपोर्टों को प्रस्तुत करना और दूसरों की रिपोर्टों पर गौर करना। इसका विश्लेषण करना कि क्या वे विश्वसनीय, तथा उपयोगी हैं। क्यों तथा कब जैसे सवालों को समझाना।

अब हम समझ गए हैं, किन्तु यह सुनिश्चित करना है कि क्या यह वास्तव में काम करता है?

परीक्षण करना, प्रयोग की रचना करना, बदलने वाली चीजों को परिभाषित करना, प्रमाणों और जानकारियों को दर्ज करना। इस निष्कर्ष पर पहुँचना कि वह कैसे काम करता है।

अब हम समझ गए हैं और हमें विश्वास हो गया है।

दूसरे समूहों या समुदायों के सामने प्रस्तुत करना।

नए प्रश्न

भ्रमण पर निकले बच्चे

चरण 4

किसी मान्यता को सिद्ध करने या खारिज करने के लिए विश्वसनीय प्रमाण जुटाने के उद्देश्य से किसी प्रयोग की रचना की जाती है या क्षेत्र भ्रमण का आयोजन किया जाता है। (उदाहरण के लिए मिट्टी की निचली परत को सीधे सींचने से सिंचाई के लिए कम पानी की जरूरत पड़ती है, या कि देशी गोबर–पत्ती की खाद की तुलना में केंचुआ–खाद से पौधों को कहीं बेहतर पोषण प्राप्त होता है, या कि बोने के पहले धान के बीजों को गौ मूत्र के 15% घोल में भिगोकर रखने से उनके अंकुरण का अनुपात खासा बढ़ जाता है आदि।)

चरण 5

नुक्कड़ नाटकों, गीतों, चार्टों तथा पोस्टरों का किसी सार्वजनिक स्थान पर प्रदर्शन, बातचीत आदि जैसे संप्रेषण माध्यमों का इस्तेमाल करके किए गए प्रयोग या भ्रमण से प्राप्त जानकारियों को दूसरे विद्यार्थियों, किसानों या समुदाय के अन्य सदस्यों के समक्ष प्रस्तुत करना।

ऐसी चर्चाओं के परिणाम के रूप में, प्रबन्धन के तौर–तरीकों को सुधारने के लिए, विभिन्न लोगों के हितों में टकरावों का समाधान करने के लिए या योग्य व्यक्तियों एवं स्थानीय अधिकारियों की मदद हासिल करने के लिए कोई दीर्घकालिक क्रियान्वयन योजना निकलकर आ सकती है।

इस प्रकार, सीखने और सिखाने की एक प्रक्रिया के रूप में, स्थान तथा समुदाय आधारित शिक्षा की बुनियादी विशेषता विद्यार्थियों और सीखने वालों को प्रकृति और संस्कृति से जोड़ना है। वास्तविक जीवन की (खासतौर पर स्थानीय जलवायु और मौसम के स्वरूपों तथा पारिस्थितिक तंत्र और जैव–विविधता से सम्बन्धित) समस्याओं या टकरावों की छानबीन करने और उनकी जानकारियों को दर्ज करने के लिए, वे अलग–अलग और समूहों में काम करते हैं। मुख्य रूप से सहभागिता–आधारित विश्लेषण, प्रयोगों एवं सक्रिय शोध परियोजनाओं के माध्यम से, उनके रचनात्मक तथा दीर्घ काल तक चल सकने वाले समाधान विकसित करने का प्रयास करते हैं। उनके प्रयासों के परिणामों को पूर्व–निर्धारित मानकों तथा सूचकों के सापेक्ष जाँचा जाता है और उनका मूल्यांकन किया जाता है।

चित्र **ख** में विभिन्न विषयों या विषयसूत्रों के पारस्परिक अन्तर्सम्बन्धों की खोजबीन करने की प्रक्रिया के दिमागी मानचित्र को दर्शाया गया है।

चित्र ख

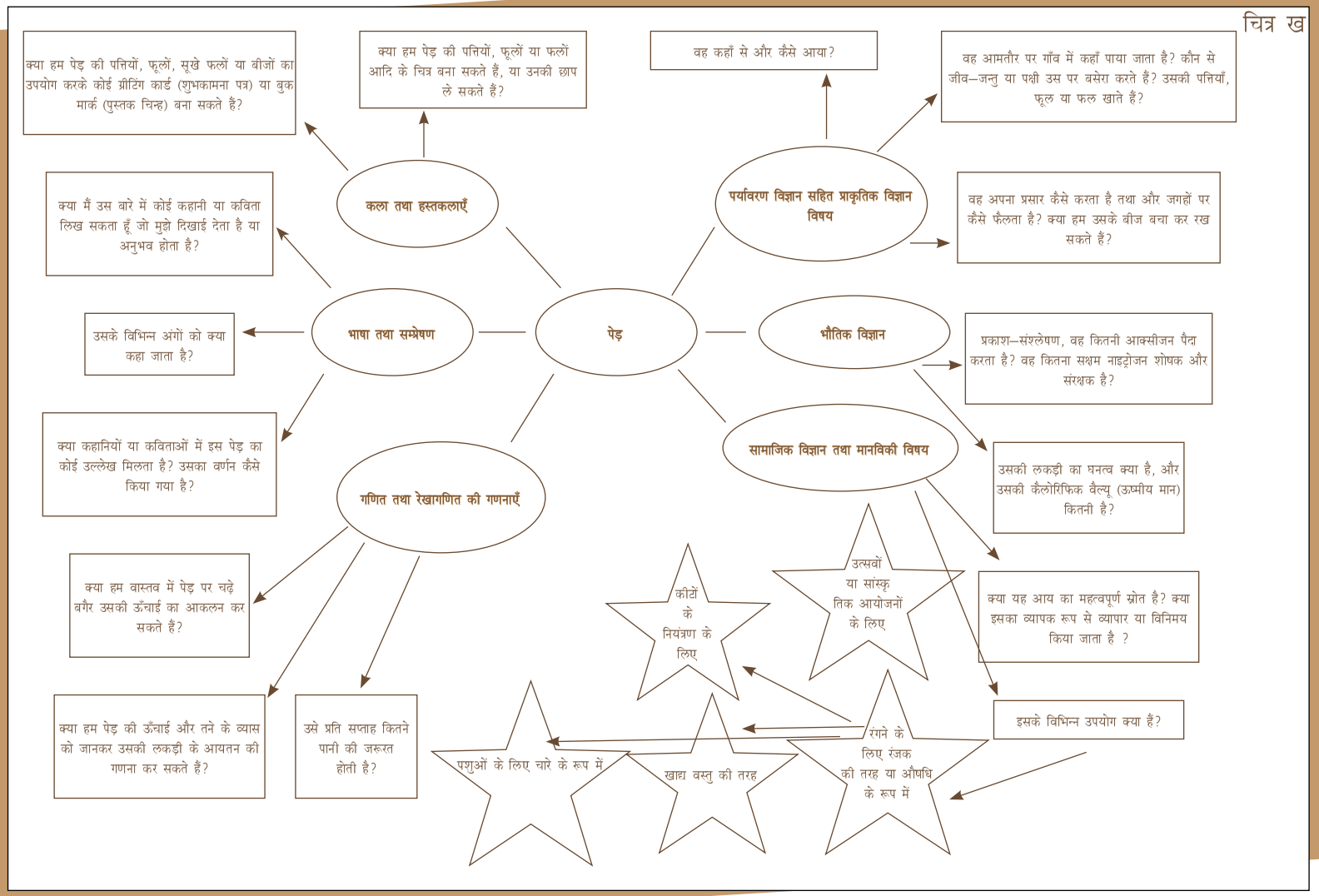
पेड़
कला तथा हस्तकलाएँ
क्या हम पेड़ की पत्तियों, फूलों, सूखे फलों या बीजों का उपयोग करके कोई ग्रीटिंग कार्ड (शुभकामना पत्र) या बुक मार्क (पुस्तक चिन्ह) बना सकते हैं?
क्या हम पेड़ की पत्तियों, फूलों या फलों आदि के चित्र बना सकते हैं, या उनकी छाप ले सकते हैं?
क्या मैं उस बारे में कोई कहानी या कविता लिख सकता हूँ जो मुझे दिखाई देता है या अनुभव होता है?
भाषा तथा सम्प्रेषण
उसके विभिन्न अंगों को क्या कहा जाता है?
क्या कहानियों या कविताओं में इस पेड़ का कोई उल्लेख मिलता है? उसका वर्णन कैसे किया गया है?
गणित तथा रेखागणित की गणनाएँ
क्या हम वास्तव में पेड़ पर चढ़े बगैर उसकी ऊँचाई का आकलन कर सकते हैं?
क्या हम पेड़ की ऊँचाई और तने के व्यास को जानकर उसकी लकड़ी के आयतन की गणना कर सकते हैं?
उसे प्रति सप्ताह कितने पानी की जरूरत होती है?
पर्यावरण विज्ञान सहित प्राकृतिक विज्ञान विषय
वह कहाँ से और कैसे आया?
वह आमतौर पर गाँव में कहाँ पाया जाता है? कौन से जीव–जन्तु या पक्षी उस पर बसेरा करते हैं? उसकी पत्तियाँ, फूल या फल खाते हैं?
वह अपना प्रसार कैसे करता है तथा और जगहों पर कैसे फैलता है? क्या हम उसके बीज बचा कर रख सकते हैं?
भौतिक विज्ञान
प्रकाश–संश्लेषण, वह कितनी आक्सीजन पैदा करता है? वह कितना सक्षम नाइट्रोजन शोषक और संरक्षक है?
सामाजिक विज्ञान तथा मानविकी विषय
उसकी लकड़ी का घनत्व क्या है, और उसकी कैलोरिफिक वैल्यू (ऊष्मीय मान) कितनी है?
क्या यह आय का महत्वपूर्ण स्रोत है? क्या इसका व्यापक रूप से व्यापार या विनिमय किया जाता है ?
इसके विभिन्न उपयोग क्या हैं?
उत्सवों या सांस्कृतिक आयोजनों के लिए
कीटों के नियंत्रण के लिए
रंगने के लिए रंजक की तरह या औषधि के रूप में
खाद्य वस्तु की तरह
पशुओं के लिए चारे के रूप में

पी.सी.बी.ई.के उद्देश्य

- सीखने वालों में उस जगह के परिवेश का हिस्सा होने और उसकी फिक्र करने का एहसास पैदा करना तथा सभी जीवधारियों के प्रति आदर की भावना विकसित करना। भले ही वे हमें प्रत्यक्ष रूप से कोई लाभ न पहुँचाएँ, तब भी उनके अस्तित्व के अधिकार को स्वीकार करना।
- सृजनात्मक तथा अभिनव तरीकों से सोचने को प्रोत्साहित करना और उसमें सहायता करना। साथ ही सीखने वालों में आनन्द, आत्मविश्वास, सहभागिता की भावना, ध्यान देने और सक्रियता की प्रवृत्तियों को पोषित करना।
- सीखने वालों में ऐसी क्षमताएँ और कौशलों को विकसित करना जिनके द्वारा वे जिस क्षेत्र में रहते है उसके विकास सम्बन्धी मुद्दों और समस्याओं की पहचान कर सकें। साथ ही स्कूल को स्थानीय समुदायों के प्रति अधिक प्रासंगिक बनाकर बेहतर सामाजिक सम्बन्धों को निर्मित कर सकें तथा लोगों में भाईचारे की भावना को विकसित कर सकें।

ये कुछ ऐसी गतिविधियों या परियोजनाओं के केन्द्रीय विषयों के उदाहरण हैं जिनके माध्यम से पी.सी.बी.ई. को विकसित किया जा सकता है : स्कूलों के बगीचे, विद्यार्थियों के घरों के बगीचे, जलाऊ लकड़ी और चराई के लिए समुदाय द्वारा प्रबन्धित जंगल, पशु पालन, किसी जल निकाय या पहाड़ी की सुरक्षा करना, खाना बनाना सीखने की कक्षाएँ इत्यादि।

उदाहरण के लिए बगीचे पर आधारित सीखना बगीचे की संरचना के बारे में सोचने (पौधों का चुनाव, उनके लिए जगह का निर्धारण, क्यारियों, पोखरों, जालियों आदि का स्वरूप) और उसे विकसित करने को प्रोत्साहन देता है। यह सीखने वालों को उसके रखरखाव की जरूरतों और जिम्मेदारियों को मिलकर निभाने (कामों को बारी–बारी से करने की चक्रीय योजना, छुट्टियों के लिए योजना, आदि) के बारे में सोचने में भी मदद करता है। जब चीजें उगने लगती हैं, तब बच्चों का ध्यान उनके उपयोगों या पोषण की दृष्टि से उनके महत्त्व, उनके बाजार मूल्य, भण्डारण तथा उन्हें लम्बे समय तक सुरक्षित रखने के तरीकों पर केन्द्रित हो जाता है।

इस मुद्दे पर और अधिक विचारों को प्रेरित करने के लिए एक चार्ट (बॉक्स 3) को दर्शाया गया है।

बॉक्स 3

जीवन और जीविकाओं से जुड़े कुछ प्रश्न

सन्दर्भ – सम्बन्धित प्रश्न

स्थानीय खेती एवं पशुपालन के तौर–तरीके, फलों के पेड़ तथा अन्य बहु–उपयोगी पेड़ :

- परिमाण, गुणवत्ता, स्थायित्व तथा उपज की परिवर्तनशीलता आदि में सुधार कैसे लाया जा सकता है?
- तीनों के स्तर पर जैव–विविधता की हानि होने या उसके नष्ट होने की गति को कैसे कम किया जा सकता है?
- बाहरी संसाधनों (खासतौर पर ऐसे संसाधनों जिनका नवीनीकरण न किया जा सके) और ऊर्जा के स्रोतों पर हमारी निर्भरता को कम करने के लिए खेती से उपजे कौन से अपशिष्ट पदार्थों (कचरे) का बेहतर उपयोग किया जा सकता है?

प्राकृतिक जैव–विविधता :

- क्या हम संसाधनों को फिर से उत्पन्न कर सकते हैं या उनके गिरे हुए स्तर को फिर से गुणवत्ता प्रदान कर सकते हैं? कैसे?
- क्या हम खाद्य वस्तुओं, पशु–आहार, चारा, आदि के भण्डारण और परिवहन के तरीकों में सुधार ला सकते हैं?
- क्या हम आपदाओं और जलवायु परिवर्तनों की रोकथाम कर सकते हैं या उनसे होने वाली क्षति को कम कर सकते हैं या अपने को उनके अनुकूल ढाल सकते हैं?

ऐसे संसाधनों का प्रबन्धन जिनकी खेती नहीं की जा सकती :

- हम जंगलों, दलदली क्षेत्रों, चारागाहों आदि को दीर्घ काल तक बनाए रख सकने के लिए उनका प्रबन्धन (एक ओर उनके द्वारा हमें प्रदान की जा रही चीजों तथा पारिस्थितिक सेवाओं और सांस्कृतिक मूल्य का दूसरी ओर वन्य जीव–जन्तुओं के लिए आवास के रूप में उनके मूल्य से सन्तुलन बिठाना) किस प्रकार कर सकते हैं?
- प्राकृतिक रूप से उगने वाले कौन–से पौधे खेतों, जंगलों, सड़क के किनारों, नदी के किनारों, आदि से एकत्रित किए जाते हैं? लम्बे समय तक उनकी उपलब्धता और उपयोग को (स्थानीय संस्कृति पर विशेष ध्यान देते हुए) कैसे सुनिश्चित किया जा सकता है?
- क्या कृषि या जंगलों के उत्पादों पर आधारित हस्तकलाओं के द्वारा, या खेती और जंगलों पर निर्भर ऐसे कीटों अथवा सूक्ष्म जन्तुओं जैसे कि मधुमक्खियों, रेशम के कीड़ों, लाख, मशरूम आदि को पालने या उगाने के द्वारा और अधिक रोजगार के अवसर पैदा किए जा सकते हैं?

खाना बनाने, घरों को गर्म करने और रोशनी करने, खाद्य प्रसंस्करण आदि के लिए ऊर्जा तथा पानी :

- क्या जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने और जीविकाओं से सम्बन्धित गतिविधियों में इस्तेमाल किए जाने वाले उपकरणों और मशीनों की उत्पादक क्षमता को बढ़ाने के लिए, ऊर्जा के ऐसे स्रोत विकसित किए जा सकते हैं जिनका नवीनीकरण किया जा सके, जो कम प्रदूषण फैलाते हों?

आगे पढ़ने के लिए सामग्री तथा सन्दर्भ स्रोत :

1. DRCSC, कोलकाता के द्वारा 2010–2012 के दौरान पेड़ों, कीटों, पानी, औषधीय पौधों, पक्षियों, धान, अपशिष्ट (व्यर्थ कचरा), सब्जियों, स्थानीय बाजार, मछलियों आदि के बारे में ऐसी रचनात्मक पाठ योजनाएँ प्रकाशित की गईं थीं। इन पाठ योजनाओं में पश्चिम बंगाल के 6 अलग–अलग जिलों के औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों प्रकार के स्कूलों के माध्यमिक स्कूल स्तर के विद्यार्थियों के साथ चार वर्षों तक चलाई गई एक परियोजना (ENRE) के प्रयोगों तथा उनसे प्राप्त जानकारियों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया था। (विस्तृत जानकारी के लिए देखें www.drcsc.org)

2. डबलडे, न्यूयॉर्क द्वारा 1972 में प्रकाशित की गई किताब 'द फॉक्सफायर' जिसमें 1960 की दशक के बीच के सालों में एक पर्वतीय क्षेत्र के बच्चों के द्वारा लिखे गए लेखों का सार–संक्षेप प्रस्तुत किया गया है। ये लेख पहले एक स्थानीय पत्रिका द्वारा प्रकाशित किए गए थे। ये लेख, इस अपेक्षाकृत दूरदराज के इलाके में रोजमर्रा के जीवन के बारे में, बच्चों की उनके माता–पिताओं और पड़ोसियों के साथ की गई बातचीत पर आधारित हैं। विभिन्न शहरों से विभिन्न भाषाओं में इस किताब के कई खण्ड प्रकाशित किए गए हैं। विस्तृत जानकारी के लिए पाठक उनकी वैबसाइट को भी देख सकते हैं! (www.foxfive.org)। इस किताब के तीन खण्डों को छपे हुए तथा पीडीएफ दोनों रूपों में Amazon.com से मँगाया जा सकता है।

3. चिल्ड्रन्स फूड फॉरेस्ट (बच्चों के खाने की चीजों का जंगल) – प्रकृति के बीच में बाहर लगने वाली कक्षा के कार्यक्रम का विवरण देने वाली यह किताब 1996 में फ्री बुक्स, ऑस्ट्रेलिया द्वारा प्रकाशित की गई थी। इसकी लेखिका कैरोलिन नूटाल ने इसे 1990 की दशक के शुरुआती सालों में बच्चों के साथ काम करने के लम्बे अनुभव के आधार पर लिखा था। (मेरी पत्नी, साटोको, और मेरी तरह वे भी एक 'पर्माकल्चर' प्रशिक्षक हैं)।

4. द ग्रीन स्प्राउट जर्नी : एक्सप्लोरिंग होम बेस्ड इकोलोजिकल एक्टिविटीज विद चिल्ड्रन (हरित अंकुरों की यात्रा : घर पर बच्चों के साथ की जाने वाली पर्यावरण सम्बन्धी गतिविधियाँ) जिसे अर्थकेयर बुक्स, कोलकाता के द्वारा 2009 में प्रकाशित किया गया। साटोको चटर्जी ने (हमारे अपने बच्चों के पालन के अनुभव का विवरण देने वाली) इस किताब को युवा माता–पिताओं को ध्यान में रखते हुए लिखा था, पर यह शिक्षकों के लिए भी उतनी ही रोचक है। (यह www.earthcarebooks.com से प्राप्त की जा सकती है।)

5. ग्रोलैब : एक्टिविटीज फॉर ग्रोइंग माइंड्स (विकसित होते हुए दिमागों के लिए गतिविधियाँ) – डेबॉरा बर्न्स द्वारा सम्पादित इस किताब को 1999 में नेशनल गार्डनिंग एसोसिएशन, वर्मोंट, यू.एस.ए. द्वारा प्रकाशित किया गया था। यह एक सचित्र गतिविधि पुस्तिका है जिसमें क्रमिक रूप से कार्यों का विवरण दिया गया है और इसमें बगीचे पर आधारित सीखने के बारे में विस्तृत पाठ्यसामग्री प्रस्तुत की गई है। इसे www.gardeningwithkids.org से खरीदा जा सकता है। इस विषय से सम्बन्धित और किताबों तथा दस्तावेजों की जानकारी के लिए इस वैबसाइट को देखें : www.assoc.garden.org

6. जू इन द गार्डन (यह 'लॉस्ट एण्ड फाउण्ड वाइल्डलाइफ क्लासिक्स' शृंखला की पुस्तकों का हिस्सा है) – इस किताब को 'परमानेंट ब्लैक', दिल्ली द्वारा 2005 में प्रकाशित किया गया था। यह मूल रूप से 1920 के दशक के आखिरी सालों में दो अलग–अलग प्रकाशित खण्डों के रूप में ई. एच. ऐटिक द्वारा लिखी गई किताब का पुनर्मुद्रित संस्करण है। यह शिक्षण की पद्धति के बारे में नहीं है, परन्तु यह हमारे आसपास के प्राकृतिक संसार का अच्छा वर्णन करती है। यह ओरिएण्ट लॉंगमैन प्रा. लि. से प्रकाशित है।

अर्धेन्दु शेखर चटर्जी भारत के कई क्षेत्रों में रह चुके हैं। उन्होंने लम्बे समय तक चल सकने वाली संवहनीय खाद्य एवं आजीविका सुरक्षा के सन्दर्भ में बच्चों और बड़ों, दोनों के साथ काम किया है। कलकत्ता विष्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि हासिल करने के बाद, उन्होंने जापान में ग्रामीण नेतृत्व पर एशियन रूरल इंस्टीट्यूट से एक डिप्लोमा पाठ्यक्रम को पूरा किया। उसके बाद भारत तथा दक्षिण एशिया में कई स्थानीय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ काम किया है। वर्तमान में वे चन्दन नगर, हुगली में निवास करते हैं। उनसे ardhendu.sc@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

नई तालीमः उत्पादक कार्य से सीखनाः एक चिन्तन

प्रदीप दासगुप्ता

महात्मा गाँधी द्वारा प्रस्तावित बुनियादी शिक्षा (नई तालीम) को आमतौर पर एक ऐसी शिक्षा पद्धति माना जाता है जो उत्पादक कार्य पर आधारित होती है। पर हम सभी को यह बात स्पष्ट होना चाहिए कि जहाँ उत्पादक कार्य इसका आधार है, वहीं काम के द्वारा सीखना इसकी अनोखी विशेषता है।

अब तक नई तालीम के बारे में बहुत–सी बातों की चर्चा हो चुकी है। शिक्षा के बारे में गाँधी जी के विचारों को स्पष्ट रूप से जानने के लिए हमें 'हरिजन' या 'यंग इण्डिया' में प्रकाशित उनके लेखों का अध्ययन करना जरूरी है। यहाँ हमारे वर्तमान सन्दर्भ के लिए उनके लेखन से ली गई केवल कुछ पंक्ति को देखने की जरूरत है:

'..लेकिन हर हस्तकला को सिर्फ यांत्रिक रूप से नहीं सिखाया जाना है जैसा कि आज किया जाता है, बल्कि उसे वैज्ञानिक तरीके से सिखाना होगा, अर्थात हर बच्चे को हर प्रक्रिया के बारे में क्यों और किसलिए भी जानना चाहिए।' (हरिजन, 31. 07. 1937)

वे ऐतिहासिक घटनाएँ सभी को अच्छी तरह ज्ञात हैं जिनके परिणामस्वरूप बुनियादी शिक्षा को शिक्षा की राष्ट्रीय नीति की तरह अपनाया गया। उसके क्रियान्वयन वाले हिस्से में, उत्पादक कार्य के द्वारा शिक्षा को सीखने को बाकी प्रक्रिया में इस तरह से समेकित किया गया था कि सीखने की अन्य शिक्षण पद्धतियों से उसका अन्तर समझ पाना कठिन है। इसलिए यह जरूरी है कि इससे सरोकार रखने वाले लोगों को इस प्रकार की शैक्षिक संस्थाओं की कुछ जानकारी हो।

सरकारी स्कूलों के साथ ही कई गाँधीवादी आश्रमों में नई तालीम शिक्षा व्यवस्था का अनुसरण किया जाता था। आश्रम ऐसे आवासीय परिसर होते हैं जहाँ सभी काम करने वाले एक सामुदायिक जीवन शैली अपनाते हुए साथ रहते हैं और अपनी–अपनी योग्यताओं के अनुसार सारा काम मिलकर करते हैं। उनकी साझा रसोई (किचिन) होती है, अर्थात उनका खाना इकठ्ठा बनता है।

मुझे ऐसे एक आश्रम स्कूल में पढ़ने का सुअवसर मिला था। उसकी स्थापना मेरे पिता श्री चित्त भूषण दासगुप्ता द्वारा माझीहिरा नामक एक दूरदराज के गाँव में की गई थी, जो अब पश्चिम बंगाल के पुरुलिया जिले में हैं। मेरे पिता उन पहले लोगों में से थे जिन्हें पटना के बेसिक ट्रेनिंग कालेज में प्रशिक्षित किया गया था। उत्पादक कार्य और सेवा किस तरह से विद्यार्थियों की शिक्षा का अभिन्न अंग थे, यह समझने के लिए संक्षेप में आश्रम के जीवन का वर्णन करना लाभकारी होगा।

आयु समूहों के अनुसार स्कूल के तीन भाग थे : 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए पूर्व–बुनियादी (या प्री–बेसिक), निचला बुनियादी (या जूनियर बेसिक) जो 5 से 10 वर्ष की आयु वाले बच्चों के लिए था और उच्च बुनियादी (या सीनियर बेसिक) जो 11 से 13/14 साल के 6वीं से 8वीं कक्षा के बच्चों के लिए था। उच्च बुनियादी के बाद एक उत्तर बुनियादी (या पोस्ट–बेसिक) खण्ड भी था।

आश्रम की आम दिनचर्या किसी भी अन्य अनुशासित स्कूल के समान ही थी। मौलिक अन्तर आश्रम के द्वारा अपनाई गई जीवनशैली में था। कक्षा 6 से कक्षा 8 तक (उच्च बुनियादी) के विद्यार्थियों को 6 समूहों में बाँट दिया गया था। चक्रीय पद्धति से सप्ताह के 6 दिनों में से प्रत्येक दिन एक समूह को एक कार्य करने को सौंपा जाता था। रविवारों को विशेष साफ–सफाई और धुलाई जैसे कामों के लिए सुरक्षित रखा जाता था।

सौंपे गए काम ये होते थे :

- प्रार्थना के लिए व्यवस्था करना

- रसोइए की सहायता करना और भोजन के दौरान परसने का कार्य
- रोगियों की परिचर्या करना (रोगी सेवा)
- मेहमानों की परिचर्या करना (अतिथि सेवा)
- दाँत साफ करने के लिए दाँतून लाना और वितरित करना
- शौचालयों की सफाई करना (सबसे महत्त्वपूर्ण)

उत्पादक कार्य में ये काम शामिल थे : कपड़ा उत्पादन के सभी चरण अर्थात कपास की खेती करना, फसल काटना, रुई से बिनौला अलग करना (जिनिंग), प्रसंस्करण (प्रोसेसिंग), टेपिंग, धुनकना (कार्डिंग), घनी पूनियाँ बनाना (स्क्रंचिंग), सूत कातना (स्पिनिंग), कपड़ा बुनना, पहिनने के कपड़े सिलना; बढ़ई का काम, सब्जियाँ उगाना और फूलों की बागवानी आदि कार्य सभी के लिए थे। कागज बनाना, साबुन बनाना, 'घानी' के द्वारा खाने के तेल का उत्पादन जैसे कार्य उत्तर बुनियादी (कक्षा 8 से ऊपर) के विद्यार्थियों के द्वारा किए जाते थे।

बढ़ईगीरी जैसी सभी हस्तकलाओं से और भारी औजारों से खोदने जैसे कठिन परिश्रम और माँसपेशियों की ताकत लगने वाले कार्यों से कक्षा 5 तक के विद्यार्थियों को छूट दी जाती थी। अन्य उत्पादक कार्यों की तरह धान की खेती भी ऋतु आने पर की जाती थी।

कलात्मक गतिविधियाँ जैसे कि चित्रकारी, संगीत, नृत्य और नाट्यकला, आश्रम के जीवन का अभिन्न हिस्सा थीं। यहाँ यह गौर करना चाहिए कि ये केवल गतिविधियाँ नहीं थीं, बल्कि इन सभी कलाओं में बच्चे का भाग लेना उसे मनौवैज्ञानिक रूप से अधिक परिपक्व बनाता था।

इन सभी गतिविधियों का मिला–जुला प्रभाव बच्चे के व्यक्तित्व पर पड़ता था। 'शिक्षा के साथ किए जाने वाले कार्य' के उत्पादन उच्च गुणवत्ता वाले होते थे और उनमें निर्माण करने वाले को मिले संतोष की भावना भी निहित होती थी।

यहाँ इस बात पर भी ध्यान देने की जरूरत है कि जो उत्पादक कार्य शिक्षा हमने उन वर्षों में प्राप्त की उसमें ऐसे स्थानीय कारीगरों से सीखना भी शामिल था जिन्होंने पीढ़ियों से उस तरह के काम का अभ्यास किया था और इसलिए वे उसमें अत्यन्त कुशल होते थे। परन्तु, ऐसा सीखना केवल यांत्रिक विधि सीखना मात्र नहीं होता था, जैसा कि उसे समाज में समझा जाता है, बल्कि उसे वैज्ञानिक ढंग से सीखा जाता था अर्थात जिसमें बच्चे को हर प्रक्रिया के क्यों और किसलिए वाले पहलुओं को जानना चाहिए। हालाँकि यह आंशिक रूप से ही किया जाता था, पर तब बच्चों के मन में बीज तो बो ही दिए जाते थे और वे बाद में फलते–फूलते थे। जैसा कि मेरे साथ हुआ जब मैंने बाद में सामान्य रूप से उच्च शिक्षा और विशेष रूप से भौतिकशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की।

यहाँ उत्पादक कार्यों में से एक, कपड़े के उत्पादन, का संक्षिप्त विवरण उपयोगी होगा।

चरण 1 : कपास की खेती

प्रक्रिया : कपास की खेती की प्रक्रिया में बैलों से जमीन की जुताई करना, समतलीकरण, बीज बोना, सिंचाई करना, खर–पतवार निकालना और फसल काटना आदि कार्य शामिल रहते थे। इस प्रक्रिया ने हमें बैलों की अलग–अलग जोड़ियों की खींचने की क्षमताओं की समझ प्रदान की, जिनका उपयोग करके हल को सीधी रेखा में आगे ले जाना पड़ता था। इसका मतलब होता था कि दोनों बैलों को न केवल आकार में, बल्कि उम्र में भी लगभग बराबर होना जरूरी होता था (जानवरों की ऊर्जा और शक्ति की उनके आकार और उम्र पर निर्भरता के बारे में पशुओं की जीवशास्त्रीय समझ विकसित करना)। बाद में हमने भौतिकशास्त्र में सीखा कि यदि एक ही वस्तु पर दो समान्तर, पर असमान बल कार्य करते हैं, तो वह सीधी रेखा में गति नहीं करती। हल को जमीन से एक खास कोण बनाने के हिसाब से बनाया जाता था, कोण के उससे अधिक होने पर बैलों के लिए उसे खींचना मुश्किल हो जाता था। कोण के कम होने पर जुताई उतनी गहरी नहीं होती थी जितनी खेती के लिए जरूरी थी। इन दोनों में भी पहली बात अधिक महत्त्वपूर्ण थी, क्योंकि आवश्यक होने पर जुताई दोबारा की जा सकती थी। इस कार्य ने हमें यह समझ भी दी कि भिन्न–भिन्न पौधों की जड़ें किस प्रकार की होती हैं। जमीन के समतलीकरण और कतारों को बराबर फासले पर बनाने के काम में, मापन की शिक्षा। हर पौधे को स्वस्थ ढंग से बढ़ने और साथ ही कटाई के समय उनके बीच लोगों के चल फिर सकने के लिए, पर्याप्त जगह होने की जरूरत (इस प्रकार मनुष्य के शरीर की भी समझ) की शिक्षा शामिल थी। जिन खेतों में हम काम करते थे वे अपेक्षाकृत छोटे थे अत: खर–पतवार निकालने का काम हाथ से किया जाता था। खर–पतवार निकालने से हमने सीखा कि किस तरह कुछ पौधों में जीवित रहने की क्षमता अन्य पौधों से अधिक

होती है। ज्यादातर उपयोगी पौधों में यह क्षमता उन पौधों से कम होती थी जिनका तब तक हम कोई उपयोग नहीं ढूँढ़ पाए थे। इस तरह काम के इस हिस्से के द्वारा हमने भौतिकी, रेखागणित, वनस्पतिशास्त्र और खोजों के इतिहास के बारे में सीखा।

चरण 2 : कपास का प्रसंस्करण

इसमें शामिल कार्य थे : कपास के गोलों को उनके छिलके से अलग करना, फिर उनमें से बीजों या बिनौलों को निकालना (जिनिंग), साफ करना और उनसे पूनियाँ (कताई के लिए बेलनाकार लम्बी मोटी बत्तियाँ) बनाना।

कपास के शोधन के लिए उसकी फूली हुई गाँठों को हाथ से तोड़ना पड़ता था। इस काम का एक जरूरी हिस्सा यह आकलन करना होता था कि कौन–से फूले हुए गोले तोड़ने के लिए परिपक्व हो चुके थे। कपास के खेत की कतारों के बीच में समय–समय पर घूमकर देखना जरूरी था क्योंकि सभी गाँठें एक साथ नहीं तोड़ी जा सकती थीं। कच्चे या गीले फलों में समुचित रूप से विकसित रेशे नहीं होते थे और देर से तोड़ने पर रेशे को नुकसान पहुँचता था। इससे हमें पौधों के जीवन के बारे में बुनियादी समझ प्राप्त हुई।

जिनिंग कपास के रेशों को कपास के बीजों (बिनौलों) से अलग करने की प्रक्रिया होती है। छोटे पैमाने पर, जब फसल उन्हें अलग करने के इस काम के लिए पर्याप्त सूखी होती थी तो इसे हाथ से किया जाता था। इसमें रेशों को तोड़े बिना हल्के से अलग करने के लिए, हाथों से डाला जाने वाला दबाव और गति एकदम सही होना जरूरी था। हाथों से चलाई जाने वाली जिनिंग मशीन में दो समानान्तर सिलेंडर थे जिन पर लम्बाई की दिशा में समान दूरी पर नालियाँ बनी हुई थीं। एक हत्थे को घुमाने के द्वारा कपास के गोलों को उन दोनों सिलेंडरों के बीच से गुजारा जाता था। सिलेंडरों के बीच का फासला बहुत महत्त्वपूर्ण होता था। यदि फासला ज्यादा होता था तो वह बीजों को उन्हें अलग करने वाले पुर्जे के नीचे आने देता था और वे कुचल जाते थे, जबकि कम अन्तर होने पर रेशे टूट जाते थे, जिससे कातने के लिए कपास बेकार हो जाती थी। आगे के प्रसंस्करण के लिए भी इसी प्रकार के कौशलों और ज्ञान की जरूरत होती थी।

इस पूरी प्रक्रिया से हमने कपास के रेशे की प्रकृति, उसकी लम्बाई, उसको तोड़ दे सकने वाले तनाव और इसलिए दबाव के आवश्यक हल्केपन के बारे में सीखा। इस प्रकार सूत में बदलने से पहले रेशों के साथ कैसे काम करना चाहिए, यह जाना। बाद के एक चरण में हमने पदार्थों की मजबूती के बारे में पढ़ा। ऐसा सीखने का प्रभाव प्रयोगशाला में की गई एक बार की जाँच से बेहतर होता है।

कपास का गोला

चरण 3 : सूत कातना

पेटी वाला या बॉक्स चरखा जो अपने–आप में प्रौद्योगिकी का अद्‌भुत नमूना था

पेटी वाला चरखा एक बुद्धिमत्तापूर्ण मशीनी उपकरण था जिसे स्वतंत्रता के संघर्ष के दौरान स्वयं महात्मा गाँधी के मार्गदर्शन में कताई को लोकप्रिय बनाने, उसकी कार्यक्षमता को बढ़ाने और सूत की गुणवत्ता सुधारने के लिए ईजाद किया गया था।

आजादी की लड़ाई में "चरखे" की भूमिका सभी को अच्छी तरह ज्ञात है।

मूल चरखे में एक बड़ा चक्का होता था जो तकुए को घुमाता था। चक्के का बड़ा आकार छोटे से तकुए को पर्याप्त चक्कर लगवाने के लिए जरूरी होता था, ताकि रेशों को सूत में बदला जा सके।

परन्तु, चक्के के बड़े आकार के कारण उसे कहीं लाना, ले जाना कठिन होता था। उसकी जगह ऐसा उपकरण होना जरूरी थी जो कम जगह घेरे, जिसे उसके पुर्जे जोड़कर बनाना, और जिससे काम करना आसान हो। पेटी वाले चरखे को खादी कार्यकर्ता अपने साथ एक गाँव से दूसरे गाँव ले जा सकते थे और इस तरह वे खादी के आन्दोलन को लोकप्रिय बना सके।

बॉक्स चरखा खुद ही घिर्रियों की व्यवस्था, घर्षण, तनाव और घूर्णन गति की पूरी धारणा के बारे में बुनियादी जानकारी प्रदान करता है, जो भौतिकी और यांत्रिकी सीखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए बहुत आधारभूत ज्ञान होता है। सिर्फ चित्र को ही देख कर कोई भी इसकी अधिकांश विशेषताओं को समझ सकता है, शेष तब स्पष्ट हो जाता है जब कोई वास्तव में इसके साथ काम करना आरम्भ करता है।

चरण 4 : बुनाई एवं चरण 5 : कपड़े सिलना (इन्हें भी इसी प्रकार समझा जा सकता है)

उत्पादक कार्य और साथ ही अन्य प्रकार के कार्यों ने विद्यार्थियों में (खासतौर पर मुझमें) जिन कौशलों और गुणों को विकसित किया, उन्हें इस प्रकार से सूचीबद्ध किया जा सकता है :

- कार्य प्रणाली की समझ
- किसी बात के कारण और उसके प्रभाव के बीच सम्बन्ध
- चीजों के परस्पर अनुपात, माप, और तालमेल का बोध
- लागत का प्रभावी उपयोग
- पर्यावरण और प्रकृति का संरक्षण
- पूछने और जानने की भावना
- करुणा, भाईचारा, दल में मिलजुल कर काम करना आदि जैसे मानवीय गुण

आमतौर पर माना जाता है कि नई तालीम व्यवस्था केवल निम्न स्तर के हाथ से किए जाने वाले कामों के लिए ही उपयुक्त है, परन्तु बौद्धिक कार्यों के लिए नहीं, और यह भी कि नई तालीम से निकले विद्यार्थी आधुनिक उच्च शिक्षा ग्रहण करने में समर्थ नहीं होते। मेरा व्यक्तिगत अनुभव इससे विपरीत रहा है। उच्च शिक्षा के प्रारम्भिक चरणों को छोड़कर, जब पढ़ाई के माध्यम के रूप में अँग्रेजी भाषा का पर्याप्त ज्ञान न होने के कारण और स्थान परिवर्तन के फलस्वरूप हुए सांस्कृतिक भेदों के कारण मुझे कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, बाद में मुझे सीखने या पढ़ाने (जिनके बारे में कुछ जानकारी आगे दी गई है) में कोई कठिनाई नहीं हुई। बल्कि, ऊपर उल्लेख किए गए गुणों के कारण दूसरे लोग मुझे एक अलग प्रकार के व्यक्ति के रूप में देखते थे। ऐसा ही अनुभव अनेक अन्य लोगों का भी रहा है जिन्होंने नई तालीम प्रणाली से शिक्षा प्राप्त की थी।

ऊपर किए गए कुछ दावों की पुष्टि मेरे व्यक्तिगत अनुभवों से की जा सकती है। अँग्रेजी का पर्याप्त ज्ञान न होने के कारण, विद्यार्थी के रूप में मुझे सैद्धान्तिक पहलू को समझने कुछ कठिनाइयाँ हुईं। परन्तु, प्रायोगिक भौतिकी में, मैं अपनी कक्षा के अधिकांश विद्यार्थियों से बेहतर माना जाता था क्योंकि मुझमें यह समझने का कौशल था कि कोई मशीन और उसके पुर्जे किस तरह काम करते हैं। हालाँकि उन दिनों कभी भी हमें बिजली उपलब्ध नहीं होती थी, फिर भी मैं विद्युतीय उपकरणों और साथ ही कुछ उन्नत किस्म के विद्युत–चुम्बकीय, प्रकाश–सम्बन्धी उपकरणों की कार्य–प्रक्रिया और उनके काम करने के सिद्धान्त को समझने में समर्थ होता था। एम.एससी. के विद्यार्थी की तरह, जीमान प्रभाव (शक्तिशाली विद्युत–चुम्बकों, उच्च गुणवत्ता वाले काँच की समानान्तर प्रकाशीय प्लेटों और एक विशेष प्रिज्म का उपयोग करने वाले, परमाणु भौतिकी के एक प्रयोग) के लिए बने एक उपकरण में मुझे एक चुनौती का सामना करना पड़ा। मेरे लिए उसमें किए जाने वाले आवश्यक सुधार कार्य को समझना कठिन नहीं था। एकबारगी जब मुझे अपने शिक्षक से निर्देश प्राप्त हो गया तो मैंने स्वयं ही उसे कर भी लिया।

भौतिकशास्त्र के शिक्षक के रूप में मैं एक विभाग में अन्य लोगों के साथ काम करता था। मेरी नई तालीम की पृष्ठभूमि मुझे हर स्थिति को अधिकांश अन्य लोगों से ज्यादा अच्छी तरह समझने में मदद करती थी। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि आश्रम का जीवन आपको समूह में मिलकर काम करने की पृष्ठभूमि प्रदान करता है, क्योंकि वैसे जीवन में दल के सभी सदस्यों का आपस में सामंजस्य होना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। जिस कालेज में मैं पढ़ाता था उसमें तीनों धाराओं – कला, विज्ञान तथा वाणिज्य – में 11वीं से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक की कक्षाएँ थीं जिनमें लगभग चार हजार विद्यार्थी थे। दो सौ से अधिक शिक्षक और अन्य स्टाफ के सदस्य थे। वे सब एक चार मंजिला इमारत में काम करते थे जिसमें केवल 15 कक्षाएँ लेने के कमरे थे। उसकी व्यवस्था की खामियों को समझने के बाद, मैं पूरे कालेज की समय–सारिणी में कुछ परिवर्तनों का सुझाव दे सका, जिनको बहुत सराहा गया और लागू किया गया।

शिक्षक की तरह अपने सहकर्मियों की अपेक्षा मैं अपने विद्यार्थियों से कहीं बेहतर संवाद स्थापित कर पाता था, जिसका कारण कार्यप्रणाली की वह समझ थी जो मैंने नई तालीम के विद्यार्थी की तरह विकसित की थी। समूह

में मिलकर काम करने की भावना के कारण, मैं अपनी प्रयोगशाला के सहायकों से भी नई जानकारियाँ हासिल कर पाता था। इसके कारण मुझे प्रतिकूल स्थितियों में भी आगे बढ़ने में मदद मिलती थी।

मुझे स्वीकार करना होगा कि ऐसे कारीगरों से सीखने की अपनी सीमाएँ होती थीं जिन्हें प्राकृतिक विज्ञान विषयों के नियमों का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता था। वे उत्पादन के हर चरण के पीछे के कारण तो समझा सकते थे, पर वे ऐसे व्यापक नियम नहीं बता पाते थे जो विशुद्ध विज्ञान सीखने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। दूसरी ओर, औपचारिक स्कूली शिक्षा की व्यवस्था में स्थिति विपरीत होती थी और आज भी है। नियम और सिद्धान्त तो बहुत अच्छी तरह पढ़ाए जाते हैं, परन्तु विद्यार्थी वास्तविक जीवन में उनके उपयोग के बारे में नहीं जानते। (हमें अकसर सुनने में आता है कि आजकल के स्नातक 'काम पर रखे जाने लायक' नहीं होते)।

हमारे सामने चुनौती इस ज्ञान को हमारे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से जोड़ने की और उनको व्यावहारिक रूप से उपयोग में लाने की है। सबसे पहली और सबसे महत्त्वपूर्ण बात उन क्षेत्रों की पहचान करना है जिन पर कार्यवाही को केन्द्रित करना चाहिए। चूँकि शिक्षक ही वे लोग हैं जो अवधारणाओं को व्यावहारिक उपयोग में बदलेंगे, इसलिए शिक्षकों की तैयारी को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जा रही है।

विषयवस्तु के मामले में एन.सी.ई.आर.टी.ने, आधुनिक संसार की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकें तैयार करने में प्रशंसनीय काम किया है। अब जरूरत ऐसी कार्यपुस्तिकाएँ (मॉड्यूल्स) तैयार करने की है जो ज्ञान को छोटी और आसानी से समझी जा सकने वाली इकाइयों में परिवर्तित कर देंगी। उसका सम्बन्ध रोजमर्रा के सामान्य कामों से, विशेष रूप से उत्पादक कार्यों से जोड़ेंगी और उनका उपयोग करने वाले जमीनी स्तर के शिक्षक तैयार करेंगी। यह प्रस्तावित किया गया है कि शिक्षकों की तैयारी के दौरान एक प्रारम्भिक चरण में उनका नई तालीम से परिचय कराया जाए। इसके बाद इस पद्धति के बारे में विचार–विमर्श का एक उन्मुखीकरण कार्यक्रम हो और फिर इसके ज्ञान को व्यवहार में उपयोग करने के लिए उनकी सहायता की जाए। यहाँ सभी लोगों का इस ओर ध्यान दिलाना जरूरी है कि इस पद्धति में आश्रम के रूप में जीवन जीना आवश्यक होता है, जिसमें वैज्ञानिक शिक्षा को सामाजिक और आर्थिक रूप से सार्थक बनाने के लिए, उत्पादक कार्य के साथ–साथ सहभागिता और समूह में मिलजुल कर काम करना जीवन का आवश्यक अंग होता है।

इसके लिए काम तो पहले ही आरम्भ हो चुका है। हमें जरूरत उसे एक आन्दोलन में बदलने की है।

प्रदीप दासगुप्ता सेंटर फॉर बेसिक साइन्सेज, मुम्बई विष्वविद्यालय तथा डिपार्टमेंट ऑफ एटोमिक इनर्जी में इंट्रोडक्टरी लेबोरेटरी कोर्स के अतिथि शिक्षक हैं। वे होमी भाभा सेण्टर फॉर साइंस एजुकेशन (टी.आई.एफ.आर.) के जूनियर साइंस एण्ड ऐस्ट्रोनोमी ओलंपियाड के स्रोत व्यक्ति, नई तालीम समिति, सेवाग्राम, वर्धा के मंत्री तथा माझीहीरा नेशनल बेसिक एजुकेशनल इंस्टीट्यूशन, पुरुलिया जिला, पश्चिम बंगाल के प्रेसीडेंट भी हैं। पहले उन्होंने 36 वर्षों तक +2 स्तर के भौतिकशास्त्र के शिक्षक के रूप में सिद्धार्थ कालेज ऑफ आर्ट्स, साइंस एण्ड कामर्स, मुम्बई (जो भारत रत्न डा. बी. आर. अम्बेडकर द्वारा स्थापित किया गया था) में काम किया है। उनसे pkd.1955@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

खण्ड **ख**

कार्यक्षेत्र से

जहाँ बच्चे ज्ञान निर्मित करते हैं

अमित भटनागर

शिक्षा के मुक्तिदाई होने के लिए यह जरूरी है कि सीखनेवाले उसमें सक्रिय भागीदार हों न कि उसके निष्क्रिय लक्ष्य, जैसा कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में होता है। — *पाउलो फ्रेयर*

काम करना सीखने से अविभाज्य रूप से जुड़ा रहता है। यदि हमारी शिक्षा व्यवस्था वाकई में सीखने (न कि सिर्फ उद्योगों के लिए कामगार शक्ति निर्मित करने) से कुछ सम्बन्ध होने का दिखावा करती है, तो उसे अपने पाठ्यक्रम में कार्य को समाहित करना होगा। यह उसकी अनिवार्य शर्त है।

यहाँ यह बहुत साफ समझ लेना चाहिए कि शिक्षा में काम का व्यावसायिक प्रशिक्षण से कोई लेना–देना नहीं है। वह तो केवल किसी कौशल को हासिल करना होता है जो व्यवसायों में लगे हुए अधिकांश लोग काम करते हुए सीखते हैं।

हम यहाँ कुपोषण के अध्ययन के एक उदाहरण को पाठकों के साथ साझा कर रहे हैं, जो केन्द्रीय विषय से फैलता हुआ जैव–विविधता, पोषण पर बाजार का प्रभाव आदि जैसे पहलुओं तक पहुँच गया। यह अध्ययन माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के द्वारा किया गया था और उसने नेशनल चिल्ड्रन साइंस काँग्रेस की राज्य स्तरीय स्पर्धा में प्रथम पुरस्कार जीता था।

एक समय हम दो कारणों से अपने स्कूल के साथ एक

चिकित्सक को जोड़ने के लिए बहुत व्यग्र थे। एक तो, आधारशिला लर्निंग सेंटर की हमारी धारणा ऐसी जगह की थी जहाँ हम अपने आसपास के गाँवों में हो रही गतिविधियों से जुड़ सकें। साथ ही जो गतिविधियाँ हमें आवश्यक लगती थीं या जिन्हें बच्चे करना चाहते थे उनमें शामिल हो सकें। दूसरे, हम अपनी शैक्षिक गतिविधियों को अन्य सम्बन्धित विषयों से भी जोड़ना चाहते थे। बच्चों में व्याप्त कुपोषण ऐसा ही एक महत्त्वपूर्ण विषय था।

हमारे स्कूल में आने वाले बच्चों के अनौपचारिक सर्वेक्षणों के बाद, हमें पता चला कि अनेक बच्चे प्रारम्भिक बचपन में कुपोषण से या लम्बी बीमारी से पीड़ित रहे थे। हम अपने अनुभव से यह भी जानते थे कि गर्भावस्था के दौरान माताओं को लगभग कभी भी अतिरिक्त खुराक नहीं मिलती थी। वास्तव में तो वे खुद भी ज्यादा नहीं खाना चाहती थीं क्योंकि उन्हें डर लगता था कि शरीर ज्यादा बड़ा हो जाने पर उन्हें प्रसव में दिक्कतें आएँगी। सरकारी आँकड़े हमें बताते हैं कि आधे से ज्यादा बच्चे कुपोषण से पीड़ित रहते हैं। हमें समझ में आया कि बच्चों और माताओं में कुपोषण का सीधा प्रभाव बच्चों की अकादमिक तथा अन्य क्षमताओं पर पड़ता है, इसलिए वह बहुत महत्त्वपूर्ण है।

अन्ततः हमें एक आयुर्वेदिक चिकित्सक मिले जो वास्तव में कुछ दिलचस्प चीजें बनाना जानते थे, जैसे कि आयुर्वेदिक टूथ–पेस्ट, बाम आदि जो उन्होंने बच्चों को सिखाया। हमने आसपास के गाँवों में बच्चों के स्वास्थ्य की जाँच करने के लिए एक कार्यक्रम बनाया। कक्षा के कुछ सत्रों में बच्चों ने न केवल लम्बाई और वजन के आधार पर, बल्कि त्वचा, बालों, नाखूनों, आँखों, सूजन आदि को देखकर कुपोषण को पहचानना सीखा।

अब सवाल यह था कि इसके बारे में क्या किया जाए? दो सुझाव सामने आए : एक था कि कुछ पूरक आहार बनाकर कुपोषित बच्चों को दिया जाए। बहुत सम्भव है कि वह सत्तू (जो मध्यान्ह भोजन के एवज में स्कूलों में प्रदान किया जाता है) के उदाहरण से प्रभावित था।

दूसरा सुझाव था बच्चों को अस्पताल जाने के लिए प्रेरित किया जाए। उस समय एक योजना चल रही थी जिसमें अत्यधिक कुपोषित बच्चों को अस्पताल में भर्ती कर लिया जाता था और उसके परिचारक को न्यूनतम मजदूरी दी जाती थी।

पूरक आहार का लोगों ने स्वागत किया। कुछ परिवारों ने उसे खरीदा तो जरूर पर उन्हें वह महँगा भी लगा क्योंकि घर के सभी बच्चे उसे खाते थे। अस्पताल लगभग कोई भी नहीं गया।

उस चिकित्सक ने स्वयं पहल करते हुए सर्वेक्षण की खबर समाचार–पत्रों में दे दी। चूँकि कुपोषण से होने वाली मौतें बहुत गम्भीर मामला होती हैं, इसलिए प्रशासन ने उस खबर पर प्रतिक्रिया करते हुए पास के एक गाँव में एक स्वास्थ्य शिविर आयोजित करने के लिए जिला स्तर के चिकित्सकों का एक बड़ा दल भेजा।

अगले वर्ष एक विज्ञान परियोजना पर काम करने के दौरान, कुछ बच्चों को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि कुपोषण इतना व्यापक था। उन्हें यह ख्याल था कि उनका इलाका आधुनिक खेती करने वाला क्षेत्र था। लोग उन्नत संकर बीज, रासायनिक खाद और कीटनाशकों का उपयोग करते थे। वे ट्रेक्टर की ट्रालियों को भरकर कपास और सोयाबीन बेचने के लिए ले जाते थे। बच्चों को ऐसा भी लगता था कि उस क्षेत्र में लोग संपन्न थे। गाँवों में अनेक मोटर साइकिलें, ट्यूबवैल, मोटर पम्प थे। बहुत से लोग किसी न किसी नौकरी में लगे थे। तो फिर ऐसी दिखाई देने वाली समृद्धि के बीच में कुपोषण कैसे हो रहा था?

अतः वे यह जाँच–पड़ताल करने के लिए निकले कि लोग क्या खा रहे थे। उनसे यह भी कहा गया कि वे गाँव के बुजुर्गों से भी बातचीत करें और यह पता लगाएँ कि जब वे बच्चे थे तो वे क्या खाते थे।

बच्चों ने बीस से भी अधिक बुजुर्ग पुरुषों और महिलाओं से बात की और सब बच्चों ने अपनी जानकारी साझा करते हुए खाने की 130 चीजों की सूची बनाई। उनमें कुछ तो अत्यन्त स्वादिष्ट खाद्य वस्तुएँ थीं – जिनमें विभिन्न प्रकार के मशरूम, पत्तियाँ, फूल, कन्द, पौधों के बीज और जंगल से प्राप्त होने वाले दुर्लभ फल, तीन या चार प्रकार का शहद और कई तरह की गोंद, अनोखे माँस और मछलियाँ, केंकड़े आदि शामिल थे। उनमें से लगभग 70 प्रतिशत चीजें जंगल या नदी से मिलती थीं। खेतों में उगाई जाने वाली खाने की फसलों में भी भरपूर विविधता थी। बच्चों ने 11 से भी ज्यादा प्रकार की ज्वार (सोरघम) के बीजों को तथा कम से कम 5 या 6 प्रकार के अन्य अनाजों के बीजों को इकट्ठा किया और उनकी सूची बनाई। और हाँ! हम दूध के उत्पादों को तो भूल ही गए। जिनके पास दुधारू जानवर थे उनके यहाँ भरपूर मात्रा में दूध, दही और घी रहता था। पर जिनके पास जानवर नहीं थे, उन्हें भी कम से कम मही (छाछ) मुफ्त में मिल जाता था।

बुनियादी रूप से हमने सीखा कि खेतों में पहले उपलब्ध जैव–विविधता के खो जाने से और जंगलों के पूरी तरह नष्ट हो जाने से विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों के अभाव का बहुत गहरा सम्बन्ध था।

अब बच्चों ने जंगलों की क्षति और खेती की जैव–विविधता के लुप्त हो जाने के कारणों की जाँच–पड़ताल की।

एक बार फिर उनको पता चला कि किस तरह जंगलों का विनाश तब हुआ जब ठेकेदार अपने ट्रक लेकर आने लगे। लोग 25 पैसे प्रतिदिन की मजदूरी पर उनके लिए पेड़ काटने लगे। बच्चों ने 'ऐसे एक समय' के बारे में भी सुना जब लोगों को कभी भी बाजार जाने की जरूरत नहीं पड़ती थी। वे केवल नमक खरीदने और मिट्टी का तेल (पहले वे अरंडी का तेल जलाते थे, जो वे खुद निकालते थे)लेने के लिए बाजार जाते थे। और यह बात वे बड़े गर्व से बताते थे। धीरे–धीरे लोगों को चीजें खरीदना सिखाया गया। उदाहरण के लिए बीड़ियों के द्वारा जो साप्ताहिक बाजार में पहले मुफ्त बाँटी जाती थीं। यूरिया के द्वारा जो स्थानीय व्यापारियों द्वारा खेतों में सचमुच में मुफ्त बिखेर दिया जाता था या काली चाय के द्वारा जो लोगों को मुफ्त पिलाई जाती थी।

इसके परिणामस्वरूप लोग बाजार और कर्ज की व्यवस्था पर इतने अधिक निर्भर हो गए हैं कि अब उन्हें मजबूर होकर नकद रकम प्राप्त करने के लिए खेती करना पड़ता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कई खाद्य फसलों को अधिक लाभकारी प्रतीत होने वाली नकद फसलों ने खेतों से बेदखल कर दिया है। जो सबसे अच्छी जमीन पहले मक्का और बाजरा के लिए सुरक्षित रखी जाती थीं, अब उन पर कपास और सोयाबीन का कब्जा हो गया है। खाद्यान्न की फसलों को कम गुणवत्ता वाली जमीनों पर स्थानान्तरित कर दिया गया। तिलहन की फसलें तो लगभग गायब–सी हो गई हैं। खेतों में अब फसलों की कोई विविधता नहीं दिखाई देती।

खोजबीन की इस पूरी प्रक्रिया ने बच्चों को नई अन्तर्दृष्टियाँ प्रदान कीं और कुछ सीखी गई बातें उनके दिमागों में जम गईं। इस अध्ययन को नेशनल चिल्ड्रन्स साइंस काँग्रेस में भाग लेने के लिए चुना गया। नेशनल साइंस काँग्रेस के मुख्य अतिथि प्रोफेसर ए. पी. जे. कलाम थे। मंच से वे पर्यावरण और किसानों, दोनों के दृष्टिकोण से जैव–डीजल के फायदे समझा रहे थे। हमारे प्रोजेक्ट की जाँच करते समय, निर्णायक ने विद्यार्थियों से पूछा कि वे अपने नकद फसल–विरोधी दृष्टिकोण को कैसे उचित ठहराएँगे, जबकि प्रोफेसर कलाम ने उसके पहले ही कहा था कि "जैव–डीजल वाली फसल उगाना किसानों के लिए ज्यादा मुनाफा देने वाला है।" बिलकुल हिचकिचाए बिना और पलक झपकाए बिना एक भागीदार विद्यार्थी, सुरेश ने उत्तर दिया कि राष्ट्रपति को खेती के बारे में जानकारी नहीं है, यदि किसान जैव–डीजल के लिए फसलें उगाने लगें तो वे भूखों मर जाएँगे और खाने के लिए पूरी तरह से बाजार पर निर्भर हो जाएँगे! निर्णायकों ने कभी ऐसा सोचा भी न था कि वे प्रोफेसर कलाम जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति के बारे में आलोचनात्मक दृष्टि से देख सकेंगे।

किसी चीज को जानने का आत्मविश्वास बहुत बड़ी बात होता है। हम और भी अधिक उत्साहित हुए जब हमें पता चला कि फूड एण्ड ऐग्रीकल्चर ऑर्गेनाइजेशन (विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन) तथा डा.वन्दना शिवा द्वारा किए गए अध्ययन भी खाद्य असुरक्षा को जैव–विविधता से जोड़ने वाले ऐसे ही निष्कर्ष पर पहुँचे थे। किन्तु अभी भी कुपोषण से लड़ने वाला सरकारी कार्यक्रम केवल मध्यान्ह भोजन और पूरक आहार तक ही सीमित बना हुआ है।

फिर बच्चों द्वारा किए गए इस स्वास्थ्य/स्थानीय इतिहास के शोध से प्राप्त हुई जानकारियाँ एक छोटी पुस्तिका के रूप में प्रकाशित की गईं – जिसका शीर्षक था 'खिचड़ी–बिस्कुट की बहस के आगे'। क्योंकि उस समय कुछ संसद सदस्य संसद में मध्यान्ह भोजन योजना के अन्तर्गत पकाए हुए भोजन के बजाय एक फ्राँसीसी बिस्कुट दिए जाने के पक्ष में माहौल बनाने का प्रयास कर रहे थे, क्योंकि उसमें सभी पोषक तत्व निहित होने का दावा किया गया था।

लेकिन बच्चों ने क्या सीखा?

बच्चों ने कुपोषण और उसके कारणों तथा स्थानीय इतिहास के बारे मे जो कुछ सीखा, उसके अलावा उन्हें कुछ सूक्ष्म ज्ञान और संदेश भी प्राप्त हुए। उन्हें मिली सीखों में से एक यह थी कि ज्ञान केवल किताबों और शिक्षित व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि 'निरक्षर' आदिवासियों के पास भी ज्ञान था। यह उनके, खास करके आदिवासी बच्चों के, आत्मविश्वास को बहुत बढ़ावा देने वाली बात है, क्योंकि सामान्य स्कूली शिक्षा में वे अन्ततः अपरिहार्य रूप से अपने समाज और संस्कृति के बारे में एक हीन–भावना की ग्रंथि के शिकार हो जाते हैं।

उसके अलावा, उन्होंने जानकारियों और आँकड़ों की तालिकाएँ बनाना तथा उनसे निष्कर्ष निकालना सीखा। इसमें उन्हें बहुत–सा बुनियादी गणित भी करना पड़ा – प्रतिशत निकालना, औसत निकालना, जोड़ना, भाग देना आदि। साथ ही, निश्चित रूप से, उन्हें दूसरों की बातें ध्यान से सुनने, लिखने, अपने लिखे हुए को सम्पादित करने का भी बहुत अभ्यास हुआ। स्थानीय भाषा में कही गई बातों का हिन्दी में अनुवाद करना भी एक बड़ा काम था। अपनी जानकारियों को प्रस्तुत करने के कौशल

(मुख्य रूप से चार्ट बनाना, रिपोर्टों को लिखना और चार्टों को श्रोताओं को समझाना) भी विकसित हुए।

हो सकता है कि आप सोच रहे हों कि बच्चों के इस काम के वर्णन का 'काम और शिक्षा' के मुद्दे से क्या सम्बन्ध है। लेकिन ऐसा लगता है कि यही काम और शिक्षा है! हमने यह सीखा कि बच्चों द्वारा किया गया ऐसा कार्य काम और शिक्षा के अन्तर्गत ही आता है। यह उसी की मिसाल है, खासतौर पर जब हमें यह बताया गया कि हमारे विद्यार्थियों द्वारा अकाल के विषय पर किए गए एक प्रोजेक्ट का उल्लेख एन.सी.एफ. समूह के द्वारा निकाले गए 'वर्क एण्ड एजुकेशन पेपर (काम तथा शिक्षा, शोधपत्र)' में किया गया।

इसलिए अब जब हमसे काम और शिक्षा के बारे में पूछा जाता है तो हमने ऐसे प्रोजेक्टों का विवरण देना सीख लिया है!!

निष्कर्ष

बहुत–सा सीखना तब घटित होता है जब बच्चे मुक्त गतिशील तरीके से चीजों या मुद्दों की खोजबीन करते हैं, और सामान्य जीवन के प्रवाह में भी सीखना घटित होने का यही तरीका है। समय बीतने के साथ बहुत थोड़ी बातें समझ के रूप में बची रह जाती हैं, अधिकांश तो दिमाग की पिछली गलियों में छिप जाती हैं। सीखने की इस नैसर्गिक व्यवस्था में हमसे कभी भी यह मापने के लिए नहीं कहा जाता कि हमने क्या और कितना सीखा। लेकिन स्कूलों के पाठ्यक्रमों के साथ यही समस्या है कि वे हमेशा सीखने के परिणामों का मात्रात्मक आकलन करना और उसके आधार पर बच्चों के बारे में निर्णय लेना चाहते हैं। इसीलिए मुझे भी यह लिखना जरूरी था कि उन्होंने गणित, हिन्दी, तालिकाएँ बनाना आदि सीखा।

यह नि:सन्दिग्ध रूप से सीखने का एक बहुत अच्छा और मन लगने वाला तरीका है, लेकिन दुख की बात है कि हमारे अधिकांश स्कूलों का ढाँचा इसे अपनाने और क्रियान्वित करने के लिए नहीं बना है, जिसका प्रमुख कारण हमारी परीक्षा–आधारित मूल्यांकन व्यवस्था है। एक अन्य बाधा समय को देखने का हमारा दृष्टिकोण है। हम निरन्तर बच्चों के समय 'बर्बाद करने' के बारे में चिन्तित रहते हैं और इसलिए उनको किसी न किसी निरर्थक गतिविधि में लगाए रखने का प्रयास करते रहते हैं। इसके साथ ही, हमें एक सूची में दिए गए सभी विषय–प्रसंगों (टॉपिक्स) को एक निर्धारित समय–सीमा में समाप्त करना होता है। सीखने की बात गौण होती है।

यदि हम सचमुच में सीखने के एक तरीके के रूप में काम को शामिल करना चाहते हैं, तो उसके लिए शिक्षा व्यवस्था और स्कूल के ढाँचे तथा शिक्षकों की सोच में मूलभूत परिवर्तन करने की जरूरत होगी। ऐसा किया जा सकता है, यह आधारशिला लर्निंग सेण्टर तथा कई अन्य नवाचारी सीखने के केन्द्रों ने करके दिखाया है।

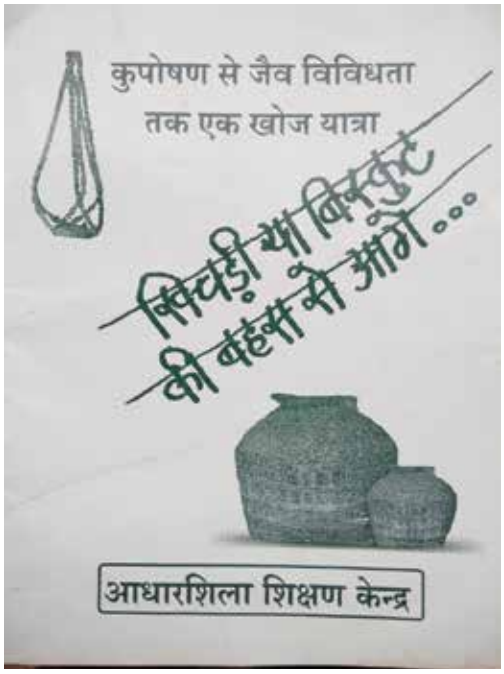

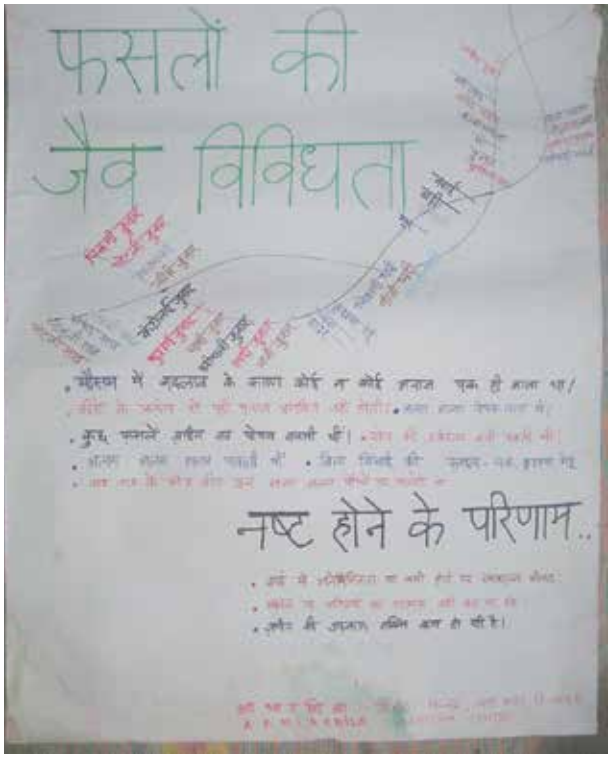

अमित भटनागर एक सामाजिक कार्यकर्ता हैं जो बाद में शिक्षाविद बन गए। उन्होंने मध्य प्रदेश के आदिवासियों के बीच काम करने के लिए स्थापत्य कला की अपनी पढ़ाई छोड़ दी। वहाँ वे अन्य साथियों के साथ एक जन–संगठन खड़ा करने में सफल हुए। सांस्कृतिक कार्यों में रुचि होने के कारण, उन्होंने सामाजिक विषयों पर आधारित कई गीत और नाटक लिखे हैं। शिक्षा तंत्र की सीमाओं और बन्दिशों से परेशान और हताश होने के बाद उनकी पत्नी और उन्होंने बड़वानी जिले में आदिवासी मुक्ति संगठन के साथ आधारशिला लर्निंग सेण्टर प्रारम्भ किया। उनसे adharshila.learningcentre@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

काम और शिक्षा : थुलीर के अनुभव

अनु तथा कृष्ण

सेल्वन (परिवर्तित नाम) झिझकता हुआ हमारे पास आया और बोला कि "मैं सीखना चाहता हूँ। क्या आप कृपा करके मेरी मदद कर सकते हैं?" सोलह वर्ष के उस संकोची युवक ने रुक–रुक कर हमें अपनी कहानी सुनाई। "मैं कक्षा 10 की अपनी बोर्ड परीक्षाओं में चार विषयों में फेल हो गया हूँ, और मैंने स्कूल जाना बन्द कर दिया है"। वह स्पष्ट रूप से स्वयं को अकादमिक दुनिया के एक असफल उदाहरण की तरह देखता था।

सेल्वन तो उन हजारों बच्चों में से सिर्फ एक है जो हमारी शिक्षा व्यवस्था में असफल लोगों की तरह पीछे छूट जाते हैं। हमारे देश में औपचारिक शिक्षा कार्यक्रम अकादमिक कौशलों को पढ़ाने और सीखने की ओर अत्यधिक रूप से झुके हुए हैं। इसका आधार हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि अकादमिक कौशल ही सशक्तीकरण की ओर बढ़ने का मार्ग हैं। अकसर पारम्परिक व्यावसायिक कौशलों की तुलना में अकादमिक अहर्ताओं की श्रेष्ठता पर शिक्षकों और व्यवस्था के द्वारा जरूरत से ज्यादा जोर दिया जाता है। व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं की बुरी तरह उपेक्षा की जाती है और उन्हें बहुत कम संरक्षण दिया जाता है।

अकादमिक और व्यावसायिक क्षेत्रों के बीच की इस खाई को पहली बार 25 साल पहले हमने तब अनुभव किया, जब ग्रामीण क्षेत्र में काम करने वाले वास्तुकारों के रूप में, ग्रामीण कारीगरों को राजमिस्त्री का कौशल सिखाना शुरू किया। हम पर्यावरण के लिए हितकारी ऐसी निर्माण प्रौद्योगिकी विधाओं पर ध्यान दे रहे थे जो स्थानीय सामग्री, जैसे मिट्टी का गारा, का उपयोग करती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के राजमिस्त्री आमतौर पर मिट्टी के गारे और स्थानीय सामग्री से निर्माण करने के इच्छुक नहीं थे, इसलिए हमें मजबूरन 'अकुशल मजदूर' कहलाने वाले लोगों, अर्थात ऐसे युवाओं के साथ काम करना पड़ा जो वास्तव में स्थानीय सामग्री से निर्माण करने वाले पारम्परिक प्रचलनों के अच्छे जानकार थे। आरम्भ में हमने उन्हें मकान बनाने में लगने वाले विभिन्न अवयवों के सुधरे हुए रूपों का उत्पादन करना और राजमिस्त्रियों के व्यावहारिक कौशल सिखाना शुरू किया। हमारा प्रशिक्षण उनके लिए खुद के और उनके पड़ोसियों के मकान बनाने के लिए तथा बेहतर मजदूरी कमाने के लिए उपयोगी साबित हुआ। लेकिन हुक्म चलाने वाले ठेकेदारों और स्थापित राजमिस्त्रियों के सामने वे अभी भी अपने नए कौशलों का इस्तेमाल करने में झिझकते थे और कभी भी जोर देकर अपनी बात नहीं कहते थे। उनकी इस झिझक को मिटाने के लिए, हमने उन्हें उपयोगी तकनीकें (जैसे कि निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री के परिमाणों का अनुमान लगाना ,उनका हिसाब लगाना, तकनीकी ढंग से नक्शा बनाना और मकानों के नक्शों को पढ़ना) सिखाने का निर्णय लिया। हमने उनके पढ़ने, लिखने और अंकगणित के कौशलों को भी थोड़ा बढ़ाने की कोशिश की, बस इतना कि वे, दूसरे पारम्परिक ठेकेदारों या राजमिस्त्रियों पर निर्भर हुए बिना स्वयं अपने बल पर छोटे ठेके ले सकें और उन्हें पूरा कर सकें तथा इस तरह बेहतर जीविका कमा सकें।

हम कुछ हद तक ऐसा करने में सफल भी हुए, लेकिन कारीगरों में निरक्षर और अशिक्षित होने की आम भावना इतनी प्रबल थी कि उससे उबर पाना उनके लिए कठिन था। उनमें आत्मविश्वास का अभाव भी था। यह तथ्य कि वे स्कूलों को बीच में 'छोड़ देने वाले' और इसलिए 'असफल लोग' हैं, उनके गले में लटका एक ऐसा भारी बोझ था जिससे

छुटकारा पाना कठिन था। ये लोग 18 से 32 वर्ष की आयु वाले वयस्क व्यक्ति थे। हमें महसूस हुआ कि यदि ऐसे लोगों की 'अशिक्षित' होने की आत्मछवि में हमें कोई प्रभावकारी परिवर्तन लाना था, तो हमें थोड़ी कम उम्र वाले लोगों के साथ, ज्यादा लम्बी अवधियों तक काम करने की जरूरत थी। हम जिन प्रशिक्षार्थियों के साथ काम करते थे उन्हें हमने कम उम्र से ही लेना शुरू किया और साथ ही प्रशिक्षण सत्रों की अवधि और उनके विषयों का दायरा भी बढ़ाया। हम आमतौर पर इसमें सफल हुए कि वे कौशलों को सीखने के लिए प्रेरित हुए। वे परियोजनाओं की जिम्मेदारी लेने की अपनी योग्यता में विश्वास करने लगे और उन कामों को सफलतापूर्वक पूरा करने लगे। उत्तरोत्तर उच्च गुणवत्ता वाले निर्माण कार्य सम्पन्न करने लगे। उनकी आमदनी के स्तर भी ऊपर उठे और उनमें दूर के स्थानों तक यात्रा करने और वहाँ अन्य समुदायों के लोगों के लिए निर्माण कार्य करने के लिए ज्यादा आत्मविश्वास आ गया। फिर भी जब बात उनकी आत्मछवि की होती थी, तो औपचारिक शिक्षा का अभाव एक ऐसी खामी थी जिसे भूल पाना उनके लिए मुश्किल था। समाज भी ऐसे लोगों को सामाजिक और आर्थिक, दोनों रूपों में उचित सम्मान नहीं देता, चाहे वे कितने भी प्रतिभाशाली या हुनरमन्द हों।

फिर 10 साल पहले हम एक आदिवासी गाँव, सित्तिलिंगी, में जाकर बस गए। वहाँ बच्चों तथा बड़ों के लिए एक मुक्त शिक्षा केन्द्र, थुलीर, आरम्भ किया जहाँ वे सीखें और सीखने के आनन्द को जान सकें। वह एक ऐसे अनौपचारिक केन्द्र के रूप में स्थापित किया गया था जहाँ स्कूल जाने वाले बच्चे स्कूल के समय के बाद और सप्ताहान्तों के दौरान आ सकते थे। हमारे सत्रों में कहानियाँ सुनाने, पढ़ने, बुनियादी भाषा और गणित सीखने से लेकर विज्ञान की गतिविधियों और विभिन्न कलाओं और हस्तकलाओं तक सभी कुछ होता था। उस केन्द्र में कोई नामांकन, उपस्थिति दर्ज करने या शुल्क जैसी कोई भी बाधा नहीं थी, इसलिए विद्यार्थी पूरी तरह स्वेच्छा से ही आते थे। हमारा मानना है कि सीखना सर्वोत्तम ढंग से तभी होता है जब उसके पीछे स्वयं की प्रेरणा हो।

दो सालों के भीतर कुछ विद्यार्थियों ने, जो 14 साल या उससे अधिक उम्र के थे और जो स्कूल छोड़ चुके थे, पूरे समय केन्द्र का उपयोग करना शुरू कर दिया। उन्होंने हमसे उन्हें सीखने में मदद करने का अनुरोध किया। सेल्वन भी उनमें से एक था। इन विद्यार्थियों ने कहा कि थुलीर में होना उन्हें अच्छा लगता था और स्कूल उनके बस की बात नहीं थी (कक्षा 8 के बाद वहाँ के विद्यार्थियों को बहुत दूर के गैर–आदिवासी स्कूल में जाना पड़ता था)। उनके बुनियादी अकादमिक कौशल बहुत ही निम्न स्तर के या पूरी तरह नदारद थे। उनका आत्मविश्वास भी बहुत हीन स्तर का था क्योंकि वे शिक्षा व्यवस्था द्वारा 'असफल' करार दिए जा चुके थे। इसलिए उन्हें केवल प्रारम्भिक पढ़ने और लिखने के कौशल सिखाना शुरू करना हमें बहुत सार्थक नहीं लगा। हमने तय किया कि उनके लिए 'हाथों से करने वाले' काम शुरू किए जाएँ, क्योंकि हमने सोचा कि इससे उन्हें ऐसी गतिविधि में संलग्न होने का अवसर मिलेगा जिसमें अपनी काबिलियत के बारे में उन्हें ज्यादा भरोसा था। साथ ही उस गतिविधि के माध्यम से ही लिखने और बुनियादी गणित के कौशलों से परिचय करवाया जाए। यह ऐसा काम था जो हम पहले अपने मकान बनाने वाले कारीगरों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में कर चुके थे।

हमने बिजली के तारों को घर में लगाना सिखाने से शुरुआत की, क्योंकि पहले बैच के बहुत से विद्यार्थियों की उसमें रुचि थी। तब इसे 'बढ़िया' काम की तरह देखा जाता था क्योंकि आपको धूप में काम नहीं करना पड़ता था और न ही अपने हाथ गन्दे करना पड़ते थे। संयोग से इसका अवसर

अपने–आप उपलब्ध हो गया, जब चेन्नई से एक कुशल बिजली का कारीगर एक पड़ोसी के घर कुछ काम करने के लिए आया। मधुमक्खी–पालन अगली गतिविधि थी क्योंकि एक एन.जी.ओ. के कुछ मित्रों ने विशेष रूप से आदिवासी लोगों को यह सिखाने की पेशकश की। धीरे–धीरे, हमने नल और पाइपों को लगाना (प्लम्बिंग), राजमिस्त्री का काम, बाँस का फर्नीचर बनाना, साइकिल और मोटरसाइकिल सुधारना, सौर पीवी (फोटोवोल्टेइक) प्रकाश व्यवस्था करना, पुर्जों को जोड़कर एल.ई.डी. बल्ब बनाना, कम्प्यूटर के कौशल, जैविक खेती आदि काम भी जोड़े। हमारी कोशिश जहाँ तक सम्भव हो, हमारे परिसर में और उसके आसपास के वास्तविक जीवन के प्रोजेक्ट लेने की रहती थी, ताकि प्रोजेक्टों के परिणाम ऐसी काम आने वाली गतिविधियाँ और सेवाएँ हों जो समुदाय द्वारा इस्तेमाल की जाएँ। हमें लगता था कि इससे काम अर्थपूर्ण बनेगा और उसे करने वालों को संतोष और गर्व का अनुभव होगा। इसके अलावा, वे यह भी देख सकेंगे कि उनके प्रयास वास्तविक जीवन में कितने कारगर साबित होते हैं, और इस तरह उन्हें स्वयं का आकलन करने और सुधार करने के लिए लोगों की प्रतिक्रियाएँ भी मिलेंगी। उन्होंने प्रत्येक परियोजना के बारे में अलग–अलग लिखना, उसके लिए रिकार्डों को दर्ज करके रखना और उससे सम्बन्धित गणनाएँ करना सीखा। उदाहरण के लिए, यदि वे जैविक पद्धति से धान की खेती कर रहे होते थे, तो वे खेत के क्षेत्रफल को नापना सीखते, खेती में लगने वाली सामग्री और मजदूरी के रिकार्ड रखते, पौधों के बढ़ने का हाथ से और कम्प्यूटर से, दोनों प्रकार से लेखाचित्र (ग्राफ) बनाते, हिसाब–किताब का लेखा रखते आदि। यदि वे एक दीवार बना रहे होते, तो वे उसका नक्शा बनाना, उसमें लगने वाले ब्लाकों की संख्या का अनुमान लगाना, खर्च का हिसाब लगाना इत्यादि सीखते।

विभिन्न प्रकार के हाथ से किए जाने वाले कामों की परियोजनाएँ जानबूझ कर आरम्भ करने के पीछे कुछ मुख्य कारण थे – सबसे पहले तो किसी दिए गए परिसर या समुदाय में एक ही प्रकार की गतिविधि को कई बार करने की सीमा होती है। दूसरे, हमें लगा कि प्रत्येक विद्यार्थी को एक या दो प्रकार के कार्यों से अधिक का अनुभव प्राप्त करना महत्त्वपूर्ण था, ताकि वे सचेत रूप से यह जान सकें कि किस प्रकार का काम करने में वे स्वाभाविक रूप से अच्छे हैं या उसे आगे करते रहने में उनकी रुचि है। इस तरीके से अलग–अलग विद्यार्थी अपनी इच्छानुसार अलग–अलग प्रकार के व्यवसाय चुन सकते थे और साथ ही उन्हें आसपास के क्षेत्र में काम के अवसर भी मिल सकते थे। यदि हम उन सभी को एक ही व्यवसाय, जैसे कि मान लो राजमिस्त्री, के लिए प्रशिक्षित करते, तो उन सबको स्थानीय क्षेत्र में काम मिलना कठिन होता। हमें ऐसा भी महसूस हुआ कि 14 से 18 साल की उम्र के होने के कारण, वे अपना व्यवसाय चुनने के लिए पर्याप्त परिपक्व नहीं थे तथा उन्हें अपनी रुचियों को खोजने और विकसित करने के लिए कुछ और समय तथा अवसर की जरूरत थी।

यह महत्त्वपूर्ण था कि उन्हें विविध प्रकार की चीजें सीखने की स्थितियों का अनुभव हो (जैसे कि हस्तकलाएँ, संगीत, खेलकूद, भाषाएँ, दूसरी संस्कृतियों के लोगों के साथ मिलना–जुड़ना और काम करना आदि) जिनसे वे स्कूल में वंचित रहे थे। एकबारगी उनके अपना व्यवसाय चुन लेने के बाद, वास्तविक जीवन की परियोजनाओं में, उसके पेशेवर लोगों और विशेषज्ञों के मातहत प्रशिक्षार्थी के रूप में लम्बी अवधि (कम से कम कुछ सालों) तक काम करने से उसमें विशेष कुशलता हासिल करना उनके लिए सम्भव हो सकता था। इस दृष्टि से छोटी अवधियों वाले व्यावसायिक प्रशिक्षण वाले पाठ्यक्रम बहुत कम कारगर और उपयोगी होते हैं।

सेल्वन, जो एक ऐसे संकोची लड़के की तरह हमारे पास आया था जिसे अकादमिक कौशलों की अपनी कमियों के बारे में बहुत एहसास था, बहुत कम बोलता था और आँख से आँख मिलाने से बचता था, पर व्यावहारिक रूप से सीखने के इस नए माहौल में उसका व्यक्तित्व खिल उठा। जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि उसमें उत्कृष्ट गुण थे। उसका स्वभाव मृदु और उदार था। वह अपने हाथों से काम करने में वह बेहद कुशल था तथा कोई भी चुनौती स्वीकार करने और अपनी ओर से अधिकतम प्रयास करने के लिए तैयार रहता था। वह दूसरों के साथ धैर्यपूर्वक कार्य करता था। वह बहुत नाजुक किस्म के सुधार कार्य, जैसे कि बिगड़े मोबाइल फोनों को ठीक करना, भी उतनी ही सहजता से करता था जितना कि कठिन शारीरिक मेहनत लगने वाले कार्य, जैसे कि छतों को

सुधारना और बाँस का फर्नीचर बनाना। उसने इलेक्ट्रॉनिक्स के कामों में विशेष निपुणता दर्शाई, यहाँ तक कि वह ऐसे उपकरणों को भी पूरा खोलकर, सुधारकर फिर से बना दे सकता था जिन्हें उसने पहले कभी देखा भी नहीं होता था।

हमारे पास हर साल ऐसे 6 से 15 विद्यार्थियों तक के समूह आने लगे। वे हमारे पास 'असफल' और 'स्कूल छोड़ देने वाले' लोगों की तरह आते थे जिनमें बहुत ही कम आत्मविश्वास और बहुत ही ज्यादा भय होता था। लेकिन हमने पाया कि वे व्यावहारिक कौशलों को बहुत जल्दी सीखते थे और उनमें बहुत अच्छा करते थे। उनका आत्मविश्वास बढ़ गया और उसने उनके जीवन के सभी क्षेत्रों को, यहाँ तक कि अकादमिक क्षेत्र को भी, प्रभावित किया। जल्दी ही उनके माता–पिता उन पर कक्षा 10 की परीक्षा पास करने के लिए दबाव डालने लगे। विद्यार्थियों को भी गाँव में अपने हमउम्र लोगों के सामने अपने को अकादमिक रूप से साबित करने की जरूरत महसूस होने लगी। धीरे–धीरे हमारी सहायता से, एक–एक करके उनमें से अधिकांश ने, हमारे कार्यक्रम में भाग लेने के लिए थुलीर आने के साथ–साथ, निजी विद्यार्थियों की तरह यह परीक्षा देने और पास करने में भी सफलता हासिल कर ली। यह दिलचस्प परिणाम था कि जिन अकादमिक परीक्षाओं का सामना वे पहले नहीं कर पाते थे, उनसे पार पाने का आत्मविश्वास थुलीर का कामकाजी कार्यक्रम उनको देता हुआ प्रतीत होता था। अनेक विद्यार्थियों ने उसके बाद हमारी घाटी से बाहर के स्कूलों में कक्षा 11 में दाखिला लेकर आगे पढ़ाई जारी रखने का निर्णय लिया। कुछ ने तो यह फैसला 19 और 20 साल की उम्र में भी लिया! यहाँ तक कि कुछ तो बाद में डिग्री हासिल करने के लिए कालेजों में भी गए।

हमारे विद्यार्थियों में से कुछ को अपने परिवार के खेतों में काम करने के लिए वापिस जाना पड़ा। कुछ विद्यार्थियों को, जिनके परिवार गम्भीर आर्थिक कठिनाइयों का सामना कर रहे थे, अकुशल मजदूरों की तरह काम करने के लिए बाहर जाना पड़ा। उनमें से कुछ राजमिस्त्री और बढ़ई की तरह काम करने लगे। हमारे चार विद्यार्थी, जिनमें सेल्वन भी शामिल है, शिक्षकों की तरह संस्था में वापिस आ गए और छोटे बच्चों को पढ़ाने लगे तथा प्रशासनिक और परिसर के रखरखाव की जिम्मेदारियाँ भी सम्भालने लगे।

बीते वर्षों में, गाँव में बहुत से परिवर्तन हुए हैं। पहले गाँव के लोग ऐसे किसान थे जो अपनी अधिकांश खाद्य सामग्री (ज्यादातर बारिश पर आधारित बाजरा, मुर्गियाँ और बकरियाँ) खुद पैदा करते थे, पर अब वे सार्वजनिक वितरण व्यवस्था (पब्लिक डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम – पी.डी.एस. – अर्थात राशन की दुकानों) से मिलने वाला चावल खाने लगे हैं और ज्यादा सिंचाई माँगने वाली नकद फसलें उगाने लगे हैं। निजी स्कूलों तथा कालेजों, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच हो जाने के कारण और मोटरसाइकिलों, ट्रैक्टरों आदि के लिए ऋण सुलभ हो जाने के कारण उनकी नकद रकम की जरूरतें भी बढ़ गई थीं। समुदाय में यह धारणा प्रबल हो गई है कि डिग्रियाँ होने से बेहतर नौकरियाँ (आमतौर पर सरकारी नौकरियाँ) मिल जाती हैं। निजी अँग्रेजी माध्यम के स्कूलों और दूर के (70 किलोमीटर दूर तक के) निजी कालेजों, जो आने–जाने के लिए घरों तक बसों की पेशकश करते हैं, के द्वारा जोरशोर से अपना प्रचार भी किया जाता है। इसलिए अब बहुत थोड़े लोग हैं जो कोई व्यवसाय या कौशल सीखना चाहते हैं।

ऐसा लगता है कि वर्तमान स्कूली शिक्षा व्यवस्था जिस सर्वोपरि सन्देश को बच्चों और उनके माता–पिता के मन में बिठा देती है, वह यही है कि केवल सफेदपोश दफ्तरी नौकरियाँ ही पाने लायक उपलब्धि हैं, और ऐसे व्यवसाय, जिनमें हाथों से काम करना पड़ता है, केवल उनके लिए हैं जो इस शिक्षा व्यवस्था में असफल हो गए हैं। इसका यह परिणाम हुआ है कि जो संस्थाएँ व्यावसायिक कौशलों की शिक्षा देती हैं, जैसे कि विभिन्न आई.टी.आई. संस्थाएँ (या हमारी संस्था), उनके पास आने वाले लोग बहुत थोड़े होते हैं। इसके साथ ही, चारों ओर सैकड़ों कालेज खुल गए हैं जो अनेक प्रकार की डिग्रियाँ प्रदान करने की पेशकश करते हैं, जिससे कि ऐसे सभी माता–पिता जिनके पास पैसा है अपने बच्चे को कोई डिग्री पाने के लिए किसी कालेज में भेज सकते हैं। पर दुखद सच्चाई यह है कि स्कूल पास करने वाले अधिकांश विद्यार्थियों में, गम्भीरता पूर्वक कोई अकादमिक डिग्री हासिल करने या यहाँ तक कि आई.टी.आई. का कोर्स करने के लिए भी, आवश्यक अकादमिक कौशल नहीं होते।

अब सेल्वन का आत्मविश्वास बढ़ गया है और वह इस क्षेत्र के सबसे अधिक माँग वाले कुशल तकनीकी कारीगरों में से एक है। लेकिन अपने को अकादमिक रूप से सफल साबित करने का दबाव अभी भी उसको महसूस होता है। वह 20

साल की उम्र में, शहर में मध्यम वेतन पर इलेक्ट्रोनिक्स का कारीगर बनने का प्रस्ताव ठुकराते हुए, वापिस हाई स्कूल गया, और अब वह कालेज में है। अकादमिक पढ़ाई अभी भी उसके लिए एक बड़ी बाधा है जिससे वह जूझ रहा है, पर उससे पार पाने के लिए और अपना प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए वह दृढ़–संकल्प है। उसे लगता है कि उसका आत्म–गौरव और दूसरों की नजरों में उसका सम्मान उसके उस महत्त्वपूर्ण कागज के टुकड़े को हासिल करने पर निर्भर करता है।

इस स्थिति को देखते हुए स्कूलों में हाथों से काम करना सिखाने की क्या गुंजाइश बचती है? अधिकांश ग्रामीण, आदिवासी और पहली पीढ़ी के सीखने वाले बच्चे इसमें बहुत अच्छा करते हैं, और इसलिए यह ऐसे बच्चों को अकादमिक विषयों का सामना करने का भी ज्यादा आत्मविश्वास देता है। हो सकता है कि शहरी बच्चों को हाथ से काम करने में थोड़ी अड़चन हो और इसलिए उन्हें वह सीखने में अधिक प्रयास करना पड़े। पर यह उनकी आँखें खोलने वाला होगा। न केवल यह उनमें हाथों से काम करने के कौशलों के प्रति, जो किसी भी समाज के बचे रहने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं, एक स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित करेगा, बल्कि ऐसे कौशल–संपन्न लोगों के प्रति उनके आदरभाव को भी बढ़ाएगा। हमारे समाज में हाथों से किए जाने वाले श्रम (आज के सन्दर्भ में जिसमें सभी प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन और उन सेवा–उद्योगों की नौकरियाँ भी शामिल होंगी जिनके लिए मशीनों और औजारों के साथ काम करने की योग्यता की जरूरत होती है)। यह हमारी अर्थव्यवस्था और समाज में महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान योगदान देने वाले लोगों के रूप में, इस क्षेत्र में काम करने वाले लोगों की सहायता भी करेगा, क्योंकि तब वे अपने को ऐसे पिछड़ गए लोगों की तरह नहीं महसूस करेंगे जो 'बेहतर' सफेदपोश नौकरियाँ हासिल नहीं कर सके।

आज, स्कूल उनके आसपास के समुदाय से कटे हुए द्वीपों की तरह काम करते हैं। वयस्क लोगों के काम के बारे में जानने के लिए बच्चे सहज ही उत्सुक होते हैं। जब भी उन्हें ऐसे कामों में भाग लेने का अवसर दिया जाता है, तब वे अपने को महत्त्वपूर्ण अनुभव करते हैं। एक स्कूल विविध प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग तो करता ही है और उनके माध्यम से वह अपने आसपास के समुदाय के सम्पर्क में भी आता है। ऐसे सम्पर्क सीखने के अवसर बन सकते हैं, जिनमें बच्चे वयस्कों के काम के साथ और आसपास के समुदाय के साथ सक्रिय रूप से जुड़ सकते हैं। अतीत में गाँधी जी और विनोबा जैसे कई विचारकों ने काम और अकादमिक शिक्षा का एकीकरण करने का सुझाव दिया था। ऐसी कई दिलचस्प शैक्षिक परियोजनाएँ रही हैं, जैसे कि पाबल स्थित विज्ञान आश्रम, जिनमें ऐसा करने की कोशिश हुई है। ऐसे अनेक प्रयास हुए हैं। पश्चिम में भी, जिनमें 'काम' को स्कूल में लाने की कोशिश की गई है, जैसे कि यूके में 'स्टूडियो स्कूलों' में। फिनलैंड में व्यावसायिक विषयों को मुख्यधारा के स्कूलों का हिस्सा बनाने की कोशिश की गई है। शायद अब समय आ गया है जब हमें अपने देश में इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।

आज हमारे स्कूलों में शिक्षा केवल दिमागी कौशलों को विकसित करने पर केन्द्रित है। ग्रामीण, आदिवासी और पहली पीढ़ी के सीखने वालों के लिए यह व्यवस्था अनुकूल नहीं होती। शिक्षा को 'मस्तिष्क, हृदय और हाथों' तीनों पर ध्यान देना चाहिए, अर्थात उसमें अकादमिक कौशलों, कला, शिल्पकलाओं, खेलकूद और समुदाय में काम करने को बराबर महत्त्व दिया जाना जरूरी है।

ऐसी दुनिया की कल्पना करें जहाँ व्यावहारिक, हाथों से किया जाने वाला काम स्कूली शिक्षा का अविभाज्य अंग होता। कैसा होता यदि स्कूल या समुदाय की जरूरतों से प्रेरित वास्तविक जीवन की परियोजनाओं को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाता? व्यावहारिक कार्य तब सामाजिक बराबरी निर्मित करने वाला कारक बन सकता था। हमारी शिक्षा व्यवस्था तब अधिक सन्तुलित और समाज के सभी स्तरों के प्रति न्यायपूर्ण होती। ऐसी दुनिया में, हमारे देश के सेल्वनों को हीनता का एहसास नहीं होता; वे दो भिन्न संसारों में जी सकने के लिए संघर्ष न करते, बल्कि सबके साथ बराबरी के भाव सहित अपने चुने हुए क्षेत्र में फलते–फूलते!

अनु तथा कृष्ण, दोनों वास्तुकारों की तरह प्रशिक्षित हैं और पिछले 25 वर्षों से वैकल्पिक निर्माण तकनीकों, ग्रामीण युवाओं के कौशलों और वैकल्पिक शिक्षा का अन्वेषण करते हुए ग्रामीण समुदायों के साथ काम कर रहे हैं। उनसे thulir@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

शिक्षात्व की खोज

बिन्दुबेन

मैं स्कूल से लौटकर लेटी हुई थी जब किसी ने दरवाजे पर दस्तक दी। पाँचवीं कक्षा का विद्यार्थी विजय और छठी कक्षा का विद्यार्थी राकेश दरवाजे पर खड़े थे। वे अन्दर आए और उन्होंने माँग की,

'बेन, हमें भाखरी खाना है।'

'नहीं, अभी नहीं, मैं बहुत थकी हुई हूँ', मैंने कहा।

'लेकिन बेन, हम आपकी मदद कर देंगे, बना दो न।' वे मुझे किचन में ले आए।

मैं जानती हूँ कि मुझे भाखरी बनाना बहुत अच्छा लगता है और उन्हें खाना! ऐसा कई बार हुआ है। मैंने सोचा, क्या बच्चों को मुझसे जबरदस्ती यह करवाने का हक है? वह कौन–सी बात है जिसने मुझे भाखरी बनाने के लिए मजबूर किया जबकि मैं बहुत थकी हुई थी? शायद इसकी वजह मेरी शिक्षा के समय मुझे मिला प्रशिक्षण है, शायद इसका कारण वह नई तालीम है जो मेरे अतीत का हिस्सा थी।

मेरी प्रारम्भिक शिक्षा और शिक्षकीय शिक्षा लोकभारती में हुई थी, जो नई तालीम का अनुकरण करने वाली एक पथ प्रदर्शक संस्था थी। मैंने अपनी माध्यमिक शिक्षा ग्राम दक्षिणामूर्ति, अम्बाला से पूरी की थी, जो नई तालीम का एक प्रसिद्ध उत्तर–बुनियादी स्कूल है और अब एक धरोहर बन चुका है। जब मैं विद्यार्थी थी तो मैंने अपनी पढ़ाई में मदद के लिए न तो कभी अलग से कोई ट्यूशन ली और न ही कोई अतिरिक्त किताबें लीं, जैसे गाइड वगैरह। यदि हमें पढ़ाई में कोई दिक्कत आती भी थी तो हम हमेशा अपने शिक्षक के घर चले जाते थे जो नई तालीम की सोच के मुताबिक स्कूल परिसर में ही स्थित होता था। शिक्षक के पास जाने पर वे कभी भी हमें हमारी दिक्कतों को दूर करने से मना नहीं करते थे। 'सजा' का शब्द तो उनके शब्दकोष में था ही नहीं। छात्रालय जीवन नई तालीम के ऐसे पहलुओं में से एक है जहाँ किसी किस्म का समझौता नहीं किया जाता। वहाँ हमने लोकतंत्र के बारे में सीखा जो हमारे समाज के लिए नई बात थी, क्योंकि इससे पहले तक तो हमसे जुड़े निर्णय हमेशा किसी और के द्वारा लिए जाते थे। छात्रालय में सहभागिता को बढ़ावा दिया जाता था।

नई तालीम इन बातों पर आधारित है :

1. आवासीय शिक्षा
2. उत्पादक कार्य करना व श्रम की गरिमा को समझना
3. मातृभाषा में शिक्षा
4. सहशिक्षा

आवासीय शिक्षा :

नई तालीम का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है उसकी रोजाना की दिनचर्या, जो दो भागों में बँटी होती है। पहला भाग तीन घण्टों का हो सकता है (सुबह 7 बजे से 10 बजे तक) और दूसरा भाग दोपहर 2 बजे से 5 बजे तक। सैद्धान्तिक शिक्षा के ये छह घण्टों के साथ विद्यार्थी कई और कार्य भी करते हैं जैसे छात्रालय में काम करना, खेलना, प्रार्थना और कई अन्य गतिविधियाँ जो रोज होने वाली शिक्षा को आत्मसात करने में मदद करती हैं।

लोकभारती में त्यौहार का समय, जिनके दौरान आमतौर पर छुट्टियाँ होती हैं, बहुत आनन्ददायी होता था क्योंकि हम सभी त्यौहारों को मिलकर मनाते थे। उत्तरायण के समय हम सब संस्था द्वारा दिए गए गन्ने खूब चाव से खाते थे। रक्षाबन्धन पर भी खूब मजा किया करते थे। वहाँ पर उत्सव वाकई में पावन दिन होते थे और उस समय लोक संगीत तथा नृत्य का आयोजन किया जाता था। यह सब करना इसीलिए सम्भव हो पाता था क्योंकि वह एक आवासीय स्कूल था।

स्कूल परिसर में हमारे 'माता–पिता' भी होते थे। छात्रालय में गुजारे समय के दौरान अरुणाबेन और रघुभाई मेरे माता–पिता थे। वे हमारी शिक्षा और कल्याण में लगभग हमारे असली माता–पिता जैसी ही रुचि लेते थे। यद्यपि वे भी हमारे मजे–मौज और मस्ती में शामिल होते थे लेकिन साथ ही वे हमारे व्यवहार को भी देखते थे और उसे सुधारने में हमारी मदद करते थे। वे हमें मजा करने का मौका तो देते थे, पर वे लोग पालकों की हैसियत से हमेशा हमारे प्रति सतर्क भी रहते थे। एक बार मैं एक परीक्षा में असफल हो गई। रघुभाई ने इसके बाद मुझे पढ़ाया और जब मुझे पूरे अंक आए तो वे मुझसे ज्यादा खुश थे।

मैं यहाँ पर मिलजुल कर किए गए हमारे कुछ सर्वाधिक दिलचस्प कार्यों का उल्लेख करना चाहूँगी। एक था 'खजाना नी शोध' या 'खजाने की खोज' और दूसरा था दोपहर का सामूहिक भोजन। ऐसी गतिविधियाँ एक समुदाय के रूप में हमारी भावनाओं को मजबूत करती थीं और इस तरह सामाजिक विकास का रास्ता खुलता था। खजाने की खोज का क्षेत्र बहुत विशाल होता था, कभी–कभी नौ से दस किलोमीटर का, जिसमें पहाड़ी इलाके भी होते थे और यहाँ खोजबीन करने में आधा दिन तक लग जाता था। जब हम लौटते थे, तो दिन का खाना तैयार होता था। हम अपने शिक्षकों के साथ बैठकर भोजन करते थे।

विद्यार्थी खुद भी खाना बनाते थे – नाश्ता, दिन का भोजन और रात का खाना। हमें उसके लिए सीमित राशि और सामग्री दी जाती थी और हमें उसके हिसाब से योजना बनाकर खुद अपना खाना बनाना होता था। रात का खाना सभी विद्यार्थियों, शिक्षकों और उनके परिवारों के साथ होता था। सभी इसमें शामिल होते थे और इस तरह खाना और भी स्वादिष्ट लगता था। आज हम इस बात को समझ पाते हैं कि यह समाज निर्माण की एक प्रक्रिया थी। नई तालीम सिर्फ एक प्रशिक्षण नहीं है, यह नागरिकों के सामर्थ्य निर्माण की प्रक्रिया भी है।

आज के स्कूल परीक्षा–उन्मुख हैं, न कि जीवन–उन्मुख। हालाँकि मेरा स्कूल परीक्षा–उन्मुख नहीं था, पर फिर भी हम परीक्षाओं के प्रति बहुत गम्भीर रहा करते थे। ऐसा इसलिए था क्योंकि हमें जो कुछ भी सिखाया जाता था वह हमारे जीवन के लिए था न कि सिर्फ पाठ्यचर्या के लिए। हम अपने पाठों को आम के या फिर चीकू के किसी पेड़ के नीचे बैठकर दोहराया करते थे और अपनी परीक्षाओं की बहुत गम्भीरता से तैयारी करते थे। हम बीच में सिर्फ खाना खाने के लिए वापस जाते थे। हमसे बड़े विद्यार्थी बहुत ज्यादा बातें करने वाले विद्यार्थियों के साथ बहुत सख्त रहते थे और वे लोग हमें सुबह जगाते भी थे। हमारी उस संस्था में कोई 'शिक्षक' नहीं थे – सारी चीजें हम लोग खुद ही करते थे।

परीक्षाओं के समय हमें हमारे परिसर के अन्दर किसी भी कक्षा में, कहीं पर भी बैठकर परीक्षा देने की छूट होती थी। यदि हमें कोई प्रश्न समझ नहीं आता, हम पूछ सकते थे। सत्र की अन्तिम परीक्षाओं के दौरान, जो गर्मियों में होती थीं, बड़ी कक्षाओं के विद्यार्थी हमारे अपने बड़े भाई–बहनों की तरह हमें बड़े प्यार से बर्फ डला नींबू का या सौंफ का शरबत दिया करते थे।

इस शानदार शिक्षा के बाद 1989 में मैं खुद एक शिक्षिका बन गई। शिक्षिका के रूप में मेरे जीवन के पहले 12 साल मैंने गुजरात के भावनगर जिले में बिताए। मैं बच्चों को स्नेह और सहयोग देने की कोशिश करती हूँ और उन्हें अपने बच्चों की तरह ही देखती हूँ। मुझे लगता है कि मैंने जो अपने 'परिवार' से पाया, वही मैं अपने विद्यार्थियों को भी दे सकती हूँ।

12 वर्षों की शिक्षा के बाद मुझे लगा कि अगर मैं अपने विद्यार्थियों को 'सम्पूर्ण'/समग्र शिक्षा देना चाहती हूँ तो उन्हें और मुझे साथ में रहना होगा ताकि शिक्षा को एक जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया बनाया जा सके। शादी के बाद मैं 300 लोगों वाले एक छोटे से गाँव में स्थित राजपुर स्कूल में काम करने लगी। पहले तो स्कूल पहुँचने के लिए मुझे रोज 23 किलोमीटर जाना पड़ता था। मैं गाँव में ही रहना चाहती थी पर ऐसा नहीं हो सका क्योंकि वहाँ सफाई की उपयुक्त व्यवस्थाएँ नहीं थीं। अब हमें यह सुविधा मिल गई है और हम गाँव में ही रहने लगे हैं। हालाँकि इस वजह से मेरे पति को उनके दफ्तर पहुँचने के लिए 50 किलोमीटर जाना पड़ता है, पर उन्होंने मेरे सपने के लिए खुशी–खुशी इसे स्वीकार कर लिया।

राजपुर प्राथमिक स्कूल एक 'सामान्य' प्राथमिक सरकारी स्कूल है। वहाँ ऐसा कुछ भी खास नहीं है, सिवाय इस बात के कि नई तालीम की विद्यार्थी होने के नाते मैंने यहाँ अपने सिद्धान्तों को लागू करना शुरू किया है। हम गाँव को

भली–भाँति जान गए हैं। यहाँ के लोगों में अन्धविश्वास है, शराब पीने जैसी बुरी आदतें हैं। मुझे लगा कि स्कूल से शुरुआत करते हुए मुझे गाँव में सुधार लाने की कोशिश करना चाहिए, क्योंकि स्कूल ही वह जगह है जहाँ जीवन की नींव पड़ती है।

अधिकांश ग्रामीण लोग यह मानते थे कि अगर कोई बीमार हो जाता है, तो उसे भगवान के सामने मन्नत माँगना चाहिए पर कोई दवाइयाँ नहीं लेना चाहिए। ऊँची बाल मृत्यु दर, ऊँची शिशु मृत्यु दर और माताओं की खराब सेहत यहाँ की प्रमुख समस्याएँ हैं। यहाँ तक कि भैंसें भी इस तरह के अन्धविश्वासों के कारण खतरे में पड़ जाती हैं। हमने लोगों को ग्लूकोज और कुछ फल देकर शुरुआत की। हमने यह कहना भी शुरू किया "भगवान से मन्नत माँगने के साथ–साथ चलो हम दवाइयाँ लेना भी शुरू करें।" हम जो परिणाम चाहते थे वे हमें मिल गए! लोगों को इससे लाभ हुआ। साथ ही साथ हमने स्कूल में साफ–सफाई और स्वास्थ्य पर ध्यान देना शुरू किया। नेल–कटर, कंघे और तौलिये हमारे प्रमुख उपकरण थे! बदलाव लाना बहुत आसान नहीं था पर गिजूभाई बधेका की पुस्तक 'दिवास्वप्न' को याद करके हम अपने सन्देश को फैला पाने में सफल हुए। हमने विद्यार्थियों के कपड़े सिलना भी शुरू किए। उन्हें उनकी कमीजों पर बटन टाँकना सिखाया। हमने स्कूल परिसर को साफ करके वहाँ पेड़ लगाए और अब दो साल बाद, सभी विद्यार्थियों का स्वास्थ्य पहले से बहुत सुधर गया है और स्कूल से नदारद रहने की घटनाएँ लगभग न के बराबर होती हैं।

गाँवों में बकरों की कुर्बानी देना बड़ी आम बात है। हालाँकि मुझे यह बात पता है कि पूरा गाँव माँसाहारी है और मैं माँसाहार के खिलाफ नहीं हूँ, लेकिन मुझे लगा कि जानवरों की बलि देना एक अन्धविश्वास है और अपना विरोध प्रदर्शन करने के लिए मैंने एक दिन का उपवास रखा। गाँववाले इस बात से सकते में थे पर उन्होंने मेरी बात मानी। तो गाँव में सार्वजनिक रूप से होने वाला बलिदान तो बन्द हो गया लेकिन लोगों ने अपने–अपने घरों में पशुओं की बलि देना जारी रखा। कुछ और उपवासों के बाद, अन्ततः उन्होंने बलि देना बन्द कर दिया और अब वे किसी भी उपलक्ष्य में पशु हत्या करने के बजाय कोई मिठाई बना लेते हैं।

नई तालीम ने ही मुझे सृजनात्मक ढंग से सोच पाना सिखाया। सोचने की इस प्रक्रिया से मुझे कई मामलों में मदद मिली।

हमारे गाँव में बाल विवाह एक बड़ी चुनौती है। यहाँ 8 से 10 साल की उम्र की लड़की की शादी हो जाना बड़ी आम बात है, हालाँकि उसका वैवाहिक जीवन लगभग 14–15 की उम्र हो जाने पर शुरू होता है। हम सब जानते हैं कि समय से पहले विवाह करना न केवल कानून के खिलाफ है बल्कि इसकी वजह से कम उम्र में बच्चा पैदा हो जाने से बहुत–सी स्वास्थ्य समस्याएँ सामने आती हैं। शिक्षिका होने के नाते मैं यह भी जानती हूँ इसके परिणामस्वरूप पैदा होने वाले बच्चों को जन्मजात सीखने सम्बन्धी कठिनाइयाँ हो सकती हैं, विवाहेत्तर सम्बन्ध और दूसरी सम्बद्ध समस्याएँ पैदा होती हैं। उदाहरण के लिए मुझे एक ऐसे मामले में पड़ना पड़ा जब सातवीं कक्षा की एक छात्रा की शादी की जाने वाली थी। हालाँकि उसके माता–पिता मेरी बात से सहमत थे फिर भी वे उस शादी को रोक नहीं सकते थे क्योंकि वह एक 'शृंखला' का हिस्सा थी। उसकी शादी तो हो गई पर अपने ससुराल वालों के सहयोग से वह दसवीं कक्षा तक तो हमारे गाँव में ही बनी रही। इस तरह का यह कोई अकेला मामला नहीं है। कम उम्र में शादी की प्रथा एक सामाजिक बुराई है और यह तभी दूर होगी जब पूरा समाज इसके लिए सहमत हो जाए।

मैंने पहले ही अन्धविश्वासों का जिक्र किया है। उदाहरण के लिए, अगर कोई व्यक्ति कोई गलत काम कर देता है तो वह ऐसा दिखाने लगता है/ लगती है जैसे कोई आत्मा उसके शरीर में घुस गई है और दरअसल वह आत्मा ही गलत काम कर रही है। फिर ऐसे व्यक्ति को किसी भूवा (ओझा) के पास ले जाया जाता है और उस आत्मा को भगाने के लिए तमाम तरह की चीजें खरीदी जाती हैं। हमने अपने स्कूल में बच्चों के साथ इस पर चर्चा की है और बच्चों को यह बात समझ में आती है कि इन बातों में कोई सच्चाई नहीं है।

अब कुछ बात रचनात्मक कार्यों के बारे में। हम सब इस बात को समझते हैं कि इन तमाम कुरीतियों की जड़ गरीबी है और किसी भी परिवार में बदलाव लाने के लिए स्त्रियाँ ही सबसे बेहतर माध्यम होती हैं। तो हमने इस गाँव में एक स्वयं सहायता समूह शुरू किया है और साथ ही विद्यार्थियों का एक बैंक खोल दिया है। आज हमारे इस स्वयं सहायता समूह के पास दो लाख रुपए से ज्यादा इकट्ठे हो चुके हैं तथा विद्यार्थियों के बैंक में एक लाख से कुछ कम रुपया इकट्ठा हो चुका है। अब अपने परिवारों में इन महिलाओं की भी आवाज है और वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो गई हैं।

लोकतंत्र किसी भी समाज की सबसे बड़ी पूँजी होती है और लोकतंत्र की बुनियाद स्कूल ही है। हमने स्कूल में विद्यार्थियों की एक परिषद शुरू की। हर वर्ष सभी विद्यार्थी इस परिषद के लिए छह या सात विद्यार्थियों को चुनते हैं। फिर पूरे स्कूल का प्रबन्धन इन विद्यार्थियों के हाथ में ही रहता है। हमने स्कूलों में होने वाले कामों को तय कर दिया है जैसे स्कूल की साफ–सफाई, पीने के पानी की व्यवस्था, प्रार्थना करवाना, मेहमानों की देखभाल, स्कूल के बगीचे का रखरखाव इत्यादि। ये सभी काम विद्यार्थियों द्वारा ही देखे जाते हैं और उनके पास निर्णय लेने का अधिकार होता है। उदाहरण के लिए क्या स्कूल का अपना एक–सा परिधान होना चाहिए और अगर हाँ तो किस तरह का? विद्यार्थी परिषद की इस योजना से हमें गाँव में भी बहुत लाभ हो रहा है। स्कूल में हमारे काम करते रहने के 12 साल बाद हमारे कई पूर्व विद्यार्थी अब बड़े हो गए हैं और गाँव के निर्णयकर्ता भी बन गए हैं। निर्णय लेने की उनकी प्रक्रिया लोकतांत्रिक होती है और उसमें गाँव के सभी लोगों का मत लिया जाता है। लोकतंत्र की भावना के अन्तर्गत ही हम बाल अदालत की योजना भी लागू करते हैं। स्कूल और घरों में ऐसी कई छोटी–मोटी समस्याएँ होती हैं जो हो सकता है हमें बहुत बड़ी न मालूम पड़ें लेकिन बच्चों के लिए वे बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं। समस्याओं को लिखकर एक बक्से में डाल दिया जाता है तथा हर बुधवार को प्रार्थनाओं के स्थान पर, बाल अदालत का सत्र आयोजित किया जाता है। इस बाल अदालत में विद्यार्थी परिषद के दो सदस्य, स्कूल के बाकी विद्यार्थियों में से दो बच्चे और एक शिक्षक शामिल किया जाता है। इससे हमें बच्चों को शिक्षित करने का मौका मिल जाता है जिन्हें वाकई मार्गदर्शन की जरूरत होती है।

और अन्त में, छात्रावास में न रहने वाले विद्यार्थी भी नई तालीम का हिस्सा हैं – स्कूल के घण्टों के बाद वे या तो स्कूल में ही रुक जाते हैं या फिर हमारे घरों में। ऐसा करना उनकी पसन्द है और हमें इसमें मजा आ रहा है!

बिन्दुबेन एक शासकीय प्राथमिक स्कूल की शिक्षिका हैं। वे राजपुर प्राथमिक स्कूल में काम करती हैं। 1989 से वे इस स्कूल के साथ जुड़ी हुई हैं। वे लोकभारती संसार में पैदा हुईं और पली बढ़ीं। वे पाठ्यपुस्तकों के लेखन व उनकी समीक्षा के कार्य में पिछले एक दशक से भी ज्यादा समय से लगी हुई हैं। 2006 में उन्हें सर्वश्रेष्ठ शिक्षक का पुरस्कार (चित्रकूट पुरस्कार) दिया गया था। अभी हाल ही में, शिक्षा के माध्यम से गाँव के विकास में अपना योगदान देने के लिए उन्हें नई तालीम, वर्धा की ओर से 'माँ–बाबा' पुरस्कार दिया गया था। उनसे parthesh.pandya@ceeindia.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

हमारी धरती, हमारा जीवन

दीवान सिंह नागरकोटी

उत्तराखण्ड के स्कूलों में पर्यावरण शिक्षा का विषय 'हमारी धरती, हमारा जीवन' औपचारिक रूप से पढ़ाया जा रहा है। इस विषय का शिक्षण, 1987 में प्रायोगिक आधार पर, अल्मोड़ा जिले के गाँधी इण्टर कालेज, पनुवानाओला में आरम्भ किया गया था। अब यह उत्तराखण्ड के 1000 से भी अधिक स्कूलों की 6वीं, 7वीं और 8वीं कक्षाओं में कृषि, हस्तकला और गृह विज्ञान के स्थान पर एक ऐच्छिक विषय की तरह पढ़ाया जा रहा है। ऐसा पहली बार हुआ है कि कुछ गैर–शासकीय संस्थाओं (उत्तराखण्ड सेवानिधि, गाँधी इण्टर कालेज पनुवानाओला तथा मीरटोला आश्रम) और केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों ने मिलकर स्थानीय पर्यावरण के विषय पर एक पाठ्यक्रम विकसित किया है। बाद में उसे मुख्यधारा की शिक्षा में शामिल किया गया। इस बीच उस पाठ्यक्रम को विशेषज्ञों के सुझावों और विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के अनुभवों के आधार पर चार बार संशोधित किया गया। उसे मैदानी खेतिहर जिलों के लिए भी उपयुक्त बनाया गया है।

शुरुआत में वह पहाड़ी क्षेत्र के 39 स्कूलों की 9वीं तथा 10वीं कक्षाओं में एक अतिरिक्त विषय की तरह रखा गया था। बाद में उसे केन्द्र तथा राज्य सरकारों के शिक्षा विभागों की अनुशंसाओं के आधार पर तथा एन.सी.ई.आर.टी. के विषय के विशेषज्ञों के सुझावों के आधार पर 6वीं से 10वीं कक्षाओं तक के लिए संशोधित किया गया। अब यह पहाड़ी जिलों के स्कूलों की 6वीं, 7वीं और 8वीं कक्षाओं में प्रारम्भ किया गया।

विषयवस्तु

गाँव की पर्यावरणीय व्यवस्था के आधार पर, इस विषय में संसाधनों की संवहनीयता (लम्बे समय तक बने रहने की क्षमता – सस्टेनेबिलिटी), मानवीय जरूरतों के बोझ को वहन करने की पर्यावरणीय क्षमता और पूरे गाँव के जैव–पारिस्थितिक तंत्र को एक सूत्र में जोड़ने वाली अवधारणा के रूप में अध्ययन किया जाता है। इसमें जमीन का अध्ययन, गाँव के नक्शे को निर्मित करना, मापने की तकनीकों और उनमें निहित गणित को समझना, गाँव का इतिहास, पेड़ों के रोपों को तैयार करना, उत्तराखण्ड की नैसर्गिक वनस्पति, मिट्टी का बनना, उसकी जल–धारण क्षमता, झरनों के बहाव को मापना, पानी की घरेलू खपत को नापना, वर्षा को मापना तथा आँकड़ों और जानकारियों का विश्लेषण करना, फसलों, जलाऊ लकड़ी, जानवरों के आराम करने के लिए बिछाने का चारा, घास, देसी खाद आदि को मापना, साथ ही गाँव को सहारा देने वाले क्षेत्र को फिर से हरा–भरा बनाना, टमाटर के पौधे तैयार करना, जैविक खेती और जमीन की सही माप करने के सिद्धान्त आदि विषय शामिल थे। ये सभी विषय कक्षा 6 से कक्षा 8 तक के 37 अध्यायों में समाहित किए गए हैं। इसके साथ ही पढ़ने की अतिरिक्त सामग्री भी प्रदान की गई है। इसके अलावा आसपास के गाँवों में कुछ प्रायोगिक अभ्यास कार्यों को करना भी आवश्यक बनाया गया है। कुछ अभ्यास कार्य स्वयं स्कूल में भी किए जा सकते हैं। विद्यार्थियों को समूहों में काम करना पड़ता है।

पर्यावरणीय शिक्षण : कुछ अनुभव

पर्यावरण की शिक्षा के क्षेत्र में आने के पहले मुझे शिक्षक–प्रशिक्षण का ज्यादा अनुभव नहीं था। 19 साल पहले 'उत्तराखण्ड सेवा निधि' में काम करना शुरू करने के बाद मैं पहले से कार्यरत शिक्षकों के लिए पर्यावरणीय शिक्षा प्रदान करने से जुड़ा। उसके पहले मेरा अनुभव विभिन्न क्षेत्रों, जैसे कि प्राथमिक शिक्षा, पर्यावरण तथा विकास आदि में शोधकार्य सम्बन्धी अध्ययन का रहा था। विद्यार्थी के रूप में वनों तथा पर्यावरण के मुद्दों पर हुए आन्दोलनों में भाग लेने के बाद मैंने श्री चण्डी प्रसाद जी द्वारा आयोजित पर्यावरण शिविरों में भाग लिया जिनमें मैंने पर्यावरण के मुद्दों के मूल तत्वों को समझा और सीखा। यह जरूर है कि मेरा बचपन ग्रामीण परिवेश में ही बीता था, इसलिए मुझे उसका जमीनी एहसास था। विभिन्न अध्ययन परियोजनाओं में भागीदारी करने से मुझे उत्तराखण्ड के विभिन्न भागों के 500 से भी अधिक गाँवों

में स्थानीय लोगों के जीवन को समझने का अवसर मिला। शुरुआत में 'हमारी धरती, हमारा जीवन' के पाठ्यक्रम को स्वीकारने में मुझे अड़चन महसूस हुई। पशुओं के द्वारा मुक्त रूप से चरने और अत्यधिक दोहन तथा जंगलों के कटने के कारण भूमि की गुणवत्ता खराब होने के दृष्टिकोण को समझने में मुझे कुछ समय लगा। पहले अपने पुराने अनुभवों के अनुरूप मेरी प्रवृत्ति ग्रामीण समुदाय का साथ देने की थी। पर जब मैंने प्राकृतिक घटनाओं के पारस्परिक सम्बन्धों को समझा – जैसे कि चराई के प्रचलित तरीकों के कारण चारागाहों (की जमीन) का खराब होना और पशुओं के खाने के लिए पेड़ों की पत्तियों वाली डालों के काटे जाने जैसी गतिविधियों से उनका नष्ट होना – तो मेरी पूर्व धारणाएँ शीघ्र ही बदल गईं। लेकिन कुछ सवाल फिर भी बने रहे, जैसे कि बच्चों को खेतों में क्यों काम करना चाहिए और क्या सब लोगों के लिए पर्याप्त जमीन उपलब्ध है।

जब मैं मीरटोला आश्रम देखने गया तो वहाँ एम.जी. जैक्सन और माधव आशीष महाराज ने तर्क दिया कि जो बच्चे इस पाठ्यक्रम के माध्यम से सीखते हैं, वे जब डाक्टर, इंजीनियर या शिक्षक बनेंगे तो वे बेहतर कार्य करेंगे। यदि वे प्रशासनिक नौकरियाँ चुनते हैं तो वे अच्छा नियोजन करने वाले सिद्ध होंगे। जो अपनी पढ़ाई आगे जारी नहीं रख सकते या जो उपयुक्त रोजगार हासिल नहीं कर सकते, वे यहाँ सीखे गए कौशलों का इस्तेमाल करते हुए, अपने गाँवों में सार्थक जीवनयापन करते हुए रह सकते हैं। शिक्षकों, बच्चों और समुदाय के साथ काम करते हुए जो बुद्धिमत्ता मैंने प्राप्त की उसने मुझे शहरों, महानगरों और वैश्विक स्तरों पर व्याप्त पर्यावरण की समस्याओं को समझने की योग्यता प्रदान की। पिछले ग्यारह सालों से शिक्षकों के प्रशिक्षण के दौरान उनके साथ सीखना, बच्चों के साथ कक्षा में तथा कक्षा के बाहर चर्चाएँ करना तथा शिक्षकों के साथ निरन्तर संवाद करना, मेरे लिए एक सुखद अनुभव रहा है।

शिक्षकों, विद्यार्थियों तथा समुदाय के बीच विचारों का आदान–प्रदान

उत्प्रेरक की भूमिका में शिक्षक

पर्यावरण शिक्षा के अपने अनुभवों को पीछे मुड़कर देखने पर, मैंने पाया है कि सीखने की इस प्रक्रिया में विद्यार्थी, शिक्षक और समुदाय एक–दूसरे की समझ के स्तर में संवर्धन करते रहते हैं। आरम्भ में जब शिक्षक अपने प्रशिक्षण के लिए आए तो देखा गया कि हवा, पानी और ध्वनि के प्रदूषण, पृथ्वी के धीरे–धीरे गरम होने (ग्लोबल वार्मिंग), वृक्षारोपण और वन्य जीवन के संरक्षण के बारे में जो कुछ कक्षा में पढ़ाया जाता था और जो किताब में दिया गया था, उसी जानकारी के अनुसार उनके दृष्टिकोण निर्मित हुए थे। इस नए पाठ्यक्रम का अध्ययन करने के बाद, शिक्षकों ने उन समस्याओं के बारे में प्रश्न पूछे जिनका उन्हें सामना करना पड़ता था। जैसे कि उनका गाँव बहुत दूर–दराज के इलाके में था, स्कूल के चारों ओर कोई दीवार नहीं थी, पानी उपलब्ध नहीं था, प्रायोगिक कार्य के लिए एक पीरियड बहुत कम था, गाँव वाले सहयोग नहीं करते थे आदि–आदि। परन्तु इन कठिनाइयों के बावजूद अधिकांश स्कूलों में शिक्षकों ने परिस्थितियों के विकल्पों की तलाश करने की पहल की। सामान्य दैनिक शिक्षण और प्रायोगिक कार्य को जारी रखते हुए उन्होंने गाँव के लोगों से संवाद करना शुरू किया। पढ़ाने की इस प्रक्रिया ने उन्हें अधिक सृजनात्मक बनने में मदद की। उसने शिक्षण की नौकरी में उनकी वास्तविक रुचि पैदा करने में भी सहायता की। इस अनुभव से प्रेरणा पाकर, अब उन्होंने स्वयं दूसरों को प्रेरित करने वालों की भूमिका अपना ली है।

अल्मोड़ा जिले के अरटोला में जूनियर हाई स्कूल के शिक्षक श्री केशर सिंह मनकोटी ने हमें बताया कि जब वे शुरू में वहाँ गए तो किसी भी खिड़की पर किवाड़ ही नहीं थे। उन्होंने गाँव के लोगों से सम्पर्क किया, पालकों की एक सभा आयोजित की और फूलों को उगाने तथा स्कूल की इमारत को सुधरवाने की गतिविधियाँ प्रारम्भ कीं। उन्होंने गाँव के इतिहास को चित्रित करने वाले और जंगली जानवरों के भटककर गाँवों में घुस आने के असली कारणों को दर्शाने वाले नाटक रचे और गाँव में उनका मंच पर प्रदर्शन किया। गाँव का समुदाय उनका बहुत प्रशंसक बन गया और उन्हें अपना पूरा सहयोग देने के लिए आगे आया। उन्होंने 'औसत समुद्र तल से ऊँचाई' की अवधारणा को समझाने का एक सरल तरीका ढूँढ़ निकाला जिसे बाद में पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। शिक्षा के प्रति उनके समर्पण को मान्यता देते हुए उनको राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। अब वे अवकाश प्राप्त कर चुके हैं, पर वे अभी भी गाँव में सक्रिय रहते हैं।

लगभग 27 साल पहले श्री नरेन्द्र कुमार बहुगुणा चमोली जिले के छिन्का में शासकीय इण्टर कालेज में पर्यावरण शिक्षा पढ़ा रहे थे। वहाँ उन्हें इस विषय की शिक्षा को स्कूल

से बाहर गाँव में ले जाने का मौका मिला। एक शिक्षक और प्रधानाध्यापक के रूप में उन्होंने स्कूल को पर्यावरण से सम्बन्धित गतिविधियों का केन्द्र बना दिया। इनमें भागीदारी और सहयोग करने के लिए उनके द्वारा बुलाए जाने पर अनेक गाँवों के लोग उत्साहपूर्वक स्कूल में इकट्ठे हो जाते थे। समुदाय की भागीदारी के बल पर उन्होंने सीमान्त क्षेत्रों में स्थित मलारी और गमशाली गाँवों में वृक्षारोपण का एक बड़ा अभियान चलाया। महिलाओं की भागीदारी की सहायता से उन्होंने स्कूल में हजारों पेड़ लगाने का और बहुत से पेड़ों को बचाने का उदाहरण प्रस्तुत किया। उसके बाद वे शासकीय इण्टर कालेज लाँग्सी, गैरसैन के प्राचार्य के रूप में सक्रिय बने रहे। प्रधानाध्यापक के रूप में भी वे स्वयं गाँवों में किए जाने वाले प्रायोगिक कार्य में विद्यार्थियों के साथ शामिल रहते थे। शासकीय इण्टर कालेज, गैरसैन में पानी की कमी की समस्या को हल करने के लिए उन्होंने एक पॉलीथीन की पानी की टंकी बनवाई। फिर स्कूलों के जिला निरीक्षक (डिस्ट्रिक्ट इंस्पेक्टर) के रूप में वे शिक्षकों, प्रधानाध्यापकों और प्राचार्यों को प्रेरित करते रहे। वर्तमान में वे उत्तराखण्ड में स्कूलों के संयुक्त निदेशक (ज्वाइंट डायरेक्टर) हैं।

उत्तरकाशी जिले के वर्णीगाड में एक शिक्षक, सबेन्द्र सिंह कहते हैं कि 'शिक्षकों के प्रशिक्षण में शामिल होने से पहले मैं कुछ रचनात्मक करना चाहता था, पर मुझे उसके लिए कोई मौका ही नहीं मिलता था। मैं साल भर में केवल एक या दो सांस्कृतिक कार्यक्रमों में ही भाग ले पाता था। पर 'हमारी धरती, हमारा जीवन' विषय में प्रशिक्षित हो जाने के बाद, मुझे इस कार्य की दृष्टि मिली और उसमें सक्रिय होने का अवसर मिला। जब लोग स्कूल आते हैं और मेरे काम की प्रशंसा करते हैं, तो मेरा आत्मविश्वास बहुत बढ़ जाता है।'

हमारे पारम्परिक समाज में शिक्षा और प्राकृतिक संसाधनों के बारे में बहुत से अच्छे सामाजिक और नैतिक मूल्य हैं। लेकिन, साथ ही कई बहुत खराब रीति–रिवाज, बुराइयाँ और अन्धविश्वास भी हैं। इनके कारण समस्याओं के असली कारणों का पता लगाना मुश्किल हो जाता है। इसलिए, प्रचलित धारणाओं की अर्थपूर्ण तरीके से जाँच–पड़ताल करना और सार्थक बातों को प्रोत्साहित करना, साथ ही बुराइयों और अन्धविश्वासों पर से उनका भरोसा हटाना भी शिक्षा के दायरे में ही आता है। शिक्षक समाज का अभिन्न अंग होता है। चूँकि वह स्वयं कई पीढ़ियों से उसी समाज का हिस्सा रहा होता है, इसलिए वह उसमें प्रचलित अच्छी और बुरी रीतियों तथा उसके गुणों और दोषों से अछूता कैसे रह सकता है? परन्तु, जब भी शिक्षकों ने पूछताछ और जाँच–पड़ताल की प्रक्रिया का समुचित उपयोग किया है, तब उनके दृष्टिकोण और उनकी समझ में परिवर्तन हुए हैं। इस प्रकार प्राप्त होने वाला नया आत्मविश्वास बदलाव का सूचक होता है।

श्री मदन सिंह देवली पेटशल के उच्चतर माध्यमिक स्कूल में शिक्षक हैं। उन्होंने हमें बताया कि, 'पर्यावरण शिक्षा का विषय पढ़ाने से पहले अन्य लोगों की तरह मैं भी अन्धविश्वासों और अस्पृश्यता में विश्वास करता था। उनमें से कुछ को पानी की कमी और जलस्रोतों के सूख जाने का कारण मानता था। ऐसी धारणाएँ मेरे मन में मजबूती से जमी हुई थीं। उनकी सत्यता की जाँच करने का ख्याल भी कभी मेरे मन में नहीं आया, न ही मुझे उसका कोई अवसर मिला। मैं अपने मन में यह धारणा पाले हुए था कि यदि मासिक धर्म से गुजर रही महिलाएँ या प्रसूति काल में एकान्तवास कर रही महिलाएँ किसी जलस्रोत से पानी लेती हैं या उसमें नहाती हैं, तो उनका यह साधारण कृत्य ही पानी के बहाव को कम कर देगा या वह स्रोत सूख जाएगा। लेकिन इस विषय को पढ़ाने और उसके साथ प्रयोग करने की प्रक्रिया के दौरान, मुझे जलस्रोतों के बहाव के कम हो जाने या उनके सूख जाने के असली कारणों की जानकारी हुई, और मेरी सभी पुरानी धारणाएँ अपने–आप ही बदल गईं।'

हाथों से किए जाने वाले कामों को हमारे समाज में कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। शिक्षा ने हमें उससे और भी ज्यादा दूर कर दिया है। इसके कारण पालकों की यह राय बन गई है कि शिक्षा केवल किताबों के माध्यम से कक्षा के भीतर ही प्रदान की जा सकती है। शिक्षकों और विद्यार्थियों को स्कूल के समय में गाँव की ओर आता हुआ देखकर, गाँव वालों ने शिक्षकों से सवाल किया कि कक्षाओं में विद्यार्थियों को पढ़ाने के बजाय वे उन्हें गाँव में क्यों ला रहे हैं। ऐसे सवालों ने शिक्षकों को गाँव के लोगों के साथ सार्थक चर्चाएँ करने का अवसर दिया। इस तरह, बदलाव के लिए एक अभियान की शुरुआत हुई।

उन दिनों स्कूल का सत्र जुलाई में शुरू हुआ करता था, वार्षिक परीक्षाएँ मई के पहले पखवाड़े में समाप्त हो जाती थीं और जून में स्कूल बन्द रहते थे। मुझे वह ठीक दिन तो याद नहीं, पर वह मई का महीना था। मुझे कामा गाँव में जूनियर हाई स्कूल का पर्यावरण मेला देखने जाना था। गागस

घाटी के उपजाऊ खेतों को पार करने के बाद, मैं कामा गाँव पहुँचा। वहाँ से चढ़ाई के रास्ते पर लगभग एक किलोमीटर चलकर स्कूल पहुँचा जहाँ मेला शुरू हो चुका था। स्कूल का छोटा–सा मैदान पुरुषों, महिलाओं और स्कूल के बच्चों से ठसाठस भरा हुआ था जो आसपास के गाँवों से आए थे। मंच पर एक नाटक खेला जा रहा था। वह 8वीं कक्षा की पढ़ने की सामग्री पर आधारित था। उसमें टांगसा गाँव के महिला मंगल दल की गतिविधियों को चित्रित किया गया था जिनमें समुदाय के संसाधनों का उपयोग, प्रबन्धन और उनसे होने वाले लाभों को साझा करना जैसी बातें शामिल थीं। उस नाटक में दिखाया गया था कि किस प्रकार टांगसा गाँव की महिलाओं ने संगठित होकर गाँव की सामुदायिक भूमि में (जो पूरी तरह खराब हो चुकी थी और जहाँ भारी भू–स्खलन हो चुके थे) पेड़ लगाने, अपने जंगलों की रक्षा करने और दुधारू पशुओं को पालने के काम किए। यहाँ तक कि जब सूखा पड़ा तो उन्होंने दूसरे गाँवों के लोगों को पशुओं के लिए चारा भी वितरित किया। इस प्रस्तुतीकरण ने ग्रामीण समुदाय के मन पर गहरा प्रभाव डाला।

नाटक के समाप्त हो जाने के बाद कुछ महिलाएँ प्रधानाध्यापक से मिलने आईं। उन्होंने प्रधानाध्यापक से, जो खुद भी पर्यावरण विज्ञान के शिक्षक थे, पूछा कि जो भी नाटक में दिखाया गया था क्या वह सब वाकई में घटित हुआ था। प्रधानाध्यापक ने इसकी पुष्टि की और उन महिलाओं से इस पर चर्चा करने के लिए बाद में उनसे मिलने को कहा। इस घटना के दो साल बाद ही मेरा फिर से उस स्कूल में जाना सम्भव हो पाया। तब कक्षा में बच्चों से चर्चा करने के बाद, उनके शिक्षक श्री त्रिलोक सिंह ने मुझे मेरे पिछले दौरे की याद दिलाई, जब टांगसा महिला मण्डल के बारे में खेले गए नाटक के बाद कुछ महिलाएँ कुछ जानकारी माँगने के लिए आईं थीं। वे महिलाएँ इडासेरा गाँव की थीं जो उन शिक्षक के गाँव से लगा हुआ था। फिर उन्होंने उनका यह किस्सा सुनाया।

उन महिलाओं ने उन्हें बताया कि इडासेरा में समतल और उपजाऊ जमीन है। सिंचाई के उद्देश्य से कामा गाँव की एक पुरानी पारम्परिक नहर को इडासेरा गाँव तक बढ़ा दिया गया। कुछ समय बाद उसको लेकर दोनों गाँवों के बीच विवाद हो गया। उसके बाद, विवाद के समाधान के लिए उन्हें कानूनी तौर पर सलाह दी गई कि वे दोनों गाँव एक दिन छोड़कर बारी–बारी से उस नहर का इस्तेमाल करें। इडासेरा ज्यादा बड़ा गाँव था जिसके कारण इस व्यवस्था से बहुत थोड़े परिवारों की सिंचाई की जरूरतें पूरी हो पाती थीं। कामा उससे छोटा गाँव था, इसलिए महीने में उनकी बारी के अधिकांश दिनों में पानी बेकार बहता था। इस वजह से इडासेरा गाँव के लोग उस नहर का रखरखाव करने के लिए बहुत इच्छुक नहीं थे। फिर भी, वे यह जानना चाहते थे कि जो कुछ टांगसा गाँव में किया गया था क्या उसे उनके गाँव में भी दोहराया जा सकता था। उन शिक्षक ने उन्हें इसके लिए पहल करके प्रयास करने को कहा और जरूरत पड़ने पर खुद भी मदद करने का आश्वासन दिया।

पर्यावरण मेले के कुछ दिन बाद इडासेरा की महिलाएँ इकट्ठी हुईं और उन्होंने अपना महिला मंगल दल गठित किया। उन्होंने हर परिवार से एक सदस्य को नहर की सफाई और रखरखाव के लिए आमंत्रित किया। रखरखाव के काम के लिए दिन सुनिश्चित किए और गाँव की पंचायत से उस नहर की मरम्मत करवाई। इसके बाद उन्होंने हर परिवार से 10 रुपए चन्दा लिया और एक कोष बनाया। इसी बीच में, महिला सिंचाई मण्डल ने एक महत्त्वपूर्ण कदम उठाया। उन्होंने कामा गाँव के लोगों से बातचीत की जिनका नहर के ऊपर पहला और बराबर का हक था। उन्होंने कामा के ग्रामीणों से अनुरोध किया कि वे अपनी सिंचाई की जरूरतें पहले पूरी कर लें, फिर उसके बाद इडासेरा के लोगों को बाकी दिनों में पूरा पानी इस्तेमाल करने की अनुमति दें। कामा गाँव के लोग इसके लिए राजी हो गए। अब कामा के ग्रामीण महीने के 3-4 दिनों में नहर का उपयोग करते हैं और बाकी दिनों में इडासेरा के लोग उसका इस्तेमाल कर पाते हैं। इससे दोनों गाँवों के लोगों के सम्बन्धों को सुधारने में भी मदद मिली है।

कक्षा के बाहर सीखने का आनन्द

बच्चों को हमेशा बाहर की जाने वाली गतिविधियों से सीखने में, अपने चारों और की चीजों का निरीक्षण करने में और जमीन पर गाँव का नक्शा बनाने में आनन्द आता है। उन्हें गाँव के इतिहास के बारे में सीखना, उसकी घास, जंगल, फसलों, जमीन और पानी के बारे में जानना अच्छा लगता है। उन्हें जलस्रोतों की माप करने में भी मजा आता है। किताबों में उन्होंने जो कुछ पढ़ा है, उसका सम्बन्ध अपने आसपास की चीजों से जोड़ना, उसके बारे में सवाल पूछना और फिर दूसरे बच्चों के साथ उनके उत्तर खोजना भी उनको अच्छा लगता है।

चौखन के पूर्व–माध्यमिक स्कूल के विद्यार्थियों ने पेड़ों के पौधे तैयार करने के लिए उनके बीज इकट्ठे करने की एक योजना बनाई। अगले दिन सिंगारोली के बच्चे बीज लेकर आए, लेकिन लामकोट के बच्चों ने बताया कि उनके गाँव में बाँज के पेड़ों से उन्हें कोई बीज नहीं मिले। सिंगारोली गाँव के बच्चों द्वारा लाए गए बीजों का उपयोग करते हुए, उनको उगाने की प्रक्रिया आरम्भ की गई। जब बीजों को उगाने की सम्भावना पर चर्चा की जा रही थी, तब लामकोट की एक लड़की ने पूछा कि, "हमारे गाँव के बाँज के पेड़ बीज क्यों नहीं देते?"

फिर एक विद्यार्थी ने इस ओर ध्यान खींचा कि स्कूल के चारों और मौजूद पेड़ों पर भी कोई बीज नहीं थे। वे सब इसके कारणों की खोज करने लगे। फिर शिक्षक ने कक्षा में यह विषय उठाया कि 'पौधे और पेड़ किस तरह मरते हैं?' और विद्यार्थियों से जरूरत से ज्यादा पेड़ों के काटे जाने के खतरों पर चर्चा करवाई। सिंगारोली और लामकोट के बच्चों के लिए एक प्रश्नावली तैयार की गई जिसके माध्यम से उन्हें अपने गाँव के बुजुर्गों से उनके गाँवों के जंगलों की वृद्धि के इतिहास के बारे में पूछताछ करना थी। पशुओं की चराई इकट्ठी करने के प्रचलनों के बारे में सवालों को भी उसमें शामिल किया गया था। पेड़ों की शाखाओं में वार्षिक वृद्धि को भी नापा गया। पेड़ों और उनके भोजन के बारे में सबक सीखे गए और प्रयोग किए गए। शिक्षकों और गाँव वालों की सहायता से एक महीने तक जाँच–पड़ताल की गई। पता चला कि पेड़ों की शाखाओं को बार–बार जितना काटा जाता है कि वह उनकी वार्षिक वृद्धि से ज्यादा होता है, इस कारण पेड़ों और घासों का आगे बढ़ना रुक जाता है और वे बीज देना बन्द कर देते हैं। इस तरह प्रकृति का नवीनीकरण भी रुक जाता है और लम्बे समय तक ऐसा होने पर पेड़ और घास पूरी तरह मर जाती हैं। बरसात के मौसम में ऐसे स्थानों पर बारिश के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए एक योजना बनाने के लिए एक चर्चा भी आयोजित की गई।

देवलखेत बागेश्वर जूनियर हाईस्कूल के शिक्षक श्री उपाध्याय ने हमें बताया कि आरम्भ में उन्हें 6वीं कक्षा के भूगोल के पाठ में किसी स्थान की ऊँचाई की अवधारणा को पढ़ाने में कठिनाई महसूस हो रही थी। उन्होंने कहा कि, "मैं समझ नहीं पा रहा था कि ऊँचाई की अवधारणा को किस तरह समझाऊँ कि बच्चे उसे पकड़ सकें। उसके तीन ही दिन बाद मैंने पर्यावरण विज्ञान के एक शिक्षक को कक्षा के बाहर उसी अवधारणा पर विद्यार्थियों से चर्चा करते हुए पाया। स्वाभाविक था कि मैं उसमें उत्सुक हो गया। मैंने देखा कि शिक्षक ने एक चौड़े बरतन में पत्थर का एक बहुत बड़ा टुकड़ा रखकर बरतन की आधी से अधिक ऊँचाई तक उसे पानी से भर दिया था। उन्होंने समुद्र तल को शून्य तल मानने की अवधारणा को समझाया। फिर बरतन में पानी की ऊपरी सतह को समुद्र का शून्य तल मानकर और पत्थर को पर्वत या पहाड़ी मानकर, पैमाने का उपयोग करते हुए विभिन्न स्थानों की ऊँचाईयों को निकालना समझाया। अगले दिन मैंने पाया कि विद्यार्थियों ने ऊँचाई की अवधारणा को पूरी तरह समझ लिया था।"

इसके अलावा, शिक्षकों ने अपने ऐसे अनुभवों को आपस में साझा किया कि इस विषय से किस तरह उन्हें विद्यार्थियों को सामाजिक विज्ञान के विषयों तथा विज्ञान और गणित की अनेक अवधारणाओं को समझाने में मदद मिली।

सन्दर्भ:

- कक्षा 6, 7 तथा 8 के लिए 'हमारी धरती, हमारा जीवन', शिक्षा विभाग, उत्तराखण्ड एवं उत्तराखण्ड सेवा निधि पर्यावरण शिक्षा संस्थान, अल्मोड़ा, 2009
- एनवायरनमेंटल ऐजुकेशन: हमारी धरती, हमारा जीवन – सम एक्सपीरिएंसेज इन उत्तराखण्ड, उत्तराखण्ड सेवा निधि, अल्मोड़ा, 2005

दीवान नागरकोटी वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, अल्मोड़ा के सदस्य हैं और वे पर्यावरण विज्ञान पर काम करने वाले समूह में शामिल हैं। इसके पहले उन्होंने लखनऊ में गिरि इंस्टीट्यूट फॉर डेवलपमेंट स्टडीज में काम किया है, जहाँ उन्होंने सामाजिक और पर्यावरण के अध्ययनों से सम्बन्धित विभिन्न शोध किए। उन्होंने पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र में 11 वर्षों तक उत्तराखण्ड सेवानिधि में भी काम किया है, जहाँ वे शिक्षकों के प्रशिक्षण में, पाठ्यपुस्तकों के पुनरीक्षण में और शिक्षकों को उनके कार्य–स्थलों पर सहयोग देने जैसे कार्यों में संलग्न रहे। वे कुमाऊँ विश्वविद्यालय से एग्रीकल्चर इकोनॉमिक्स में पीएच.डी. हैं। उन्होंने राष्ट्रीय दैनिक 'हिन्दुस्तान' के लिए लेखन भी किया है और वे कुमाऊँ यूनिवर्सिटी, अल्मोड़ा के पत्रकारिता विभाग में अतिथि अध्यापक भी रहे हैं। उनसे diwan.singh@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

निमार्ण, परवाह करने वाले समाज का

मीनाक्षी उमेश

"यह धरती हमें अपने पूर्वजों से विरासत में नहीं मिली है। इसे हमने अपने बच्चों से उधार लिया है।"

हमारे बच्चे

"तुम्हारे बच्चे दरअसल तुम्हारे बच्चे नहीं हैं।

वे जीवन की अपने प्रति उत्कण्ठा के बेटे और बेटियाँ हैं।

वे तुम्हारे माध्यम से जरूर आते हैं पर तुमसे नहीं आते हैं,

और यद्यपि वे तुम्हारे साथ होते हैं, पर वे तुम्हारे नहीं होते।" – खलील जिब्रान

वे फूलों की तरह होते हैं, और हर एक बच्चा अपने आप में खास होता है। वे आईने की तरह होते हैं और हमारे विचारों व कर्मों को प्रतिबिम्बित करते हैं। वे उन पक्षियों की तरह होते हैं जो उड़ना चाहते हैं और दुनिया के बारे में जानना चाहते हैं। बच्चे पैदा होते से ही सीखना शुरू कर देते हैं। वे जिज्ञासु होते हैं, सहज बोध से चीजों को समझने की कोशिश करते हैं, सृजनशील होते हैं, नई–नई चीजें करने की कोशिश करते हैं इत्यादि। दुर्भाग्यवश, जल्दी ही हमारे सामाजिक मानदण्डों की सीमाओं द्वारा उनके पर कतर दिए जाते हैं।

बच्चों को खुद के साथ और दूसरे बच्चों के साथ समय बिताने देने की जरूरत होती है। उन्हें एक–दूसरे के साथ संवाद करने की जरूरत होती है; वे एक–दूसरे के साथ अपनी भावनाएँ और अनुभव बाँटना चाहते हैं, और वे अपने आप से चीजें करना/ खोजबीन करना चाहते हैं। आत्म–निर्भरता के विकास में काम करने की भूमिका को समझाते हुए मारिया मॉन्टेसरी बताती हैं कि बच्चों को अपने दिमाग में दुनिया का अनुकरण करने वाली संरचना बनाने के लिए समय चाहिए होता है और गूढ़ अवधारणाओं को समझने लायक बनाने के लिए ठोस वस्तुओं की जरूरत होती है। बच्चों को अपने से रचनात्मक कार्य कर सकने की स्वतंत्रता होना चाहिए। सीखने से जुड़ी सामग्री को सम्भालने और दिए गए कार्य को पूरा करने की प्रक्रिया और पद्धति बच्चों के भीतर आत्म–अनुशासन और पर्यावरण के प्रति जिम्मेदारी की भावना पैदा करती है। महात्मा गाँधी ने ऐसी शिक्षा व्यवस्था का सपना देखा था जहाँ बच्चे अलग–अलग रचनात्मक कार्य करने के द्वारा सीखते हैं और उससे सीखने की प्रक्रिया भी समझते हैं। साथ ही, काम करने के द्वारा उन्हें अपने भीतर परिपूर्णता और सन्तोष की अनुभूति होती है।

हमारे व्यवहार और हमारे सरोकारों पर हमारी शिक्षा का बहुत असर पड़ता है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में बच्चों को तथ्यों का अध्ययन करवाकर सिखाया जाता है। उन्हें 'शीर्ष पर' रहने के लिए एक तनावपूर्ण प्रतिस्पर्धा में धकेल दिया जाता है। यह 'योग्यता की उत्तरजीविता' के लिए एक लड़ाई बन जाती है। उसमें चिन्तन–मनन के लिए कोई समय नहीं होता। ये बच्चे अपने कृत्यों तथा उनके परिणामों की जिम्मेदारी लेना नहीं सीख पाते और उसमें असफल हो जाते हैं।

इस तरह की शिक्षा न सिर्फ बच्चों को धरती माँ से विमुख कर देती है, बल्कि यह उन्हें प्रकृति के साथ उनके जुड़ाव पर निर्भरता के प्रति भी असंवेदनशील बना देती है। यह उन्हें जीवन मूल्यों के महत्त्व से तथा दूसरे लोगों के लिए सहानुभूति के भाव से दूर कर देती है। यह प्रतिस्पर्धात्मक शिक्षा उन्हें परेशान, असहाय और आत्म केन्द्रित बनाकर छोड़ देती है। स्कूल के पहले ही दिन से उन्हें कहीं भी आने–जाने की अपनी स्वतंत्रता पर पहला अवरोध सबसे पहले तब अनुभव होता है जब उन्हें मेज और कुर्सी के बन्धन से बाँध दिया जाता है। इस तरह उनकी ऊर्जा को अवरुद्ध कर दिया जाता है, जिसे बच्चे सामान्यत: यहाँ–वहाँ भागकर और अबाध रूप से हँसकर खर्च करते हैं। बच्चे कुण्ठित और निराश महसूस करते हैं और अपनी इस स्थिति को या तो आँसुओं के द्वारा या फिर हिंसक प्रदर्शन द्वारा व्यक्त करते हैं। कुण्ठा विरोध को लेकर होने वाली सामान्य भावनात्मक प्रतिक्रिया है। कुण्ठा का क्रोध और निराशा से गहरा नाता होता है और यह बच्चे की इच्छाओं की पूर्ति

में उसके द्वारा महसूस की जाने वाली बाधाओं से उपजती है। प्रेरक व्यवहार को बाधित करने से कुण्ठा पैदा होती है। हर बच्चा ऐसी स्थिति में अलग ढंग से प्रतिक्रिया करता है। हो सकता है कि वे इस बाधा को पार करने के लिए तर्कसंगत समस्या–निवारण के तरीके अपनाएँ। यदि ऐसे तरीके असफल हो जाएँ तो वे कुण्ठित होकर अतार्किक व आक्रामक ढंग से व्यवहार करने लग सकते हैं।

इस बारे में लोगों में जागरूकता आई है कि किस प्रकार वर्तमान शिक्षा व्यवस्था बच्चों के व्यक्तित्व को और उनके माध्यम से समाज को प्रभावित करती है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के आत्मसात किए गए पाठ अन्य मनुष्यों, जानवरों और पेड़ों के प्रति बच्चों के निर्दयी रवैयों में अपना योगदान करते हैं। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था सिर्फ प्रतिस्पर्धा को स्थान देती है। यह ब्रिटिश हुकूमत द्वारा भारत में अपनाई गई 'फूट डालो और राज करो' की नीति का ही विस्तार है। प्रतिस्पर्धा ईर्ष्या, वैमनस्य, अन्याय, लालच और लापरवाही को जन्म देती है। कोई आश्चर्य की बात नहीं कि आज के कुछ युवाओं का दृष्टिकोण, खासतौर से शहरों में जहाँ प्रतिस्पर्धा पर बहुत अधिक जोर दिया जाता है या तो आत्मघाती होता है या दूसरों के लिए घातक होता है।

अपने बच्चों के अभिभावकों के रूप में यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम सिर्फ शिक्षा की विषयवस्तु पर ही गौर न करें, बल्कि पूरी शिक्षा व्यवस्था की भी समीक्षा करें, उसकी पुन: पड़ताल करें और नए सिरे से उसकी रचना करें। हमें ऐसी शिक्षा व्यवस्था की जरूरत है जो हमारे बच्चों की वह बनने में मदद करे जो उन्हें ऐसे समाज में बनना चाहिए। जहाँ धरती और जीवन के सभी स्वरूपों की फिक्र करने के माध्यम से प्रेम, सहयोग और सामंजस्य को बढ़ावा दिया जाएगा। हमारे पास एक ही धरती है और यही समय है कि हम इसकी परवाह करें और अपने पाठ्यक्रमों की इस तरह से पुनर्रचना करें कि बच्चों के मन में इसके प्रति जिम्मेदारी और संरक्षण की भावनाएँ पैदा हो सकें।

लकड़ी से जुड़े कार्यों को स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल करने के उद्देश्य

1. सीखने की स्वाभाविक प्रक्रिया

ज्ञान के किताबीपन को हटाकर, स्कूल की शैक्षणिक प्रक्रिया को बच्चों की अपनी स्वाभाविक ढंग से सीखने की प्रक्रिया व जीवन का ही फैलाव बनाना – जिसका अर्थ हुआ कि ज्ञान हासिल करने का प्रमुख माध्यम अनुभव ही है (पाँच इन्द्रियों तथा छठी इन्द्री, यानी तर्क, के माध्यम से ज्ञान हासिल करना)।

2. अहिंसा

ऐसी शैक्षणिक प्रक्रिया निर्मित करना जिसका मूल तत्व अहिंसा हो। पारम्परिक शिक्षा व्यवस्थाओं में जानकारी और अनुभव के बीच जबरदस्त असन्तुलन होता है जिसकी वजह से विद्यार्थियों में असहमति और असन्तोष का भाव पैदा होता है जिसकी परिणति आन्तरिक व बाहरी हिंसा में होती है।

इस पाठ्यक्रम को प्रक्रिया व उत्पाद, दोनों ही रूपों में अहिंसा के विचार के साथ विकसित किया जा रहा है।

3. अनुभवजन्य सीखना

सीखने का ऐसा वातावरण बनाना जो बच्चे के दिमाग में ज्ञान की अनुभवजन्य प्रगति को प्रोत्साहित करे व उसमें मदद करे।

4. ज्ञान का संश्लेषण

शिक्षकों तथा पाठ्यक्रम को तय करने की प्रक्रिया से जुड़े अन्य भागीदारों में ऐसा नजरिया निर्मित करना कि ज्ञान की प्रक्रिया जैविक होती है। इसके लिए स्वाभाविक रूप से जरूरी होता है कि विद्यार्थी जानकारियों के अंशों को जोड़ने और उन्हें समन्वित करने की क्षमता विकसित करें और इसे विकसित करने में जानकारी का बहुत अधिक योगदान होता है। अपने हाथों से चीजें बनाकर इस क्षमता का बहुत अच्छे से विकास किया जा सकता है। सीखना एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है और अपने हाथों से वस्तुएँ बनाने के द्वारा बच्चे रोजमर्रा की जिन्दगी के साथ अपने जुड़ावों की समझ के साथ सीखे गए सिद्धान्तों से भी जुड़ पाते हैं।

5. स्वायत्तता/ आत्म–निर्भरता

सीखने का ऐसा परिवेश और ऐसी प्रक्रिया निर्मित करना जिसमें सीखने से जुड़ी प्रत्येक इकाई (चाहे वह शिक्षक हो, बच्चे हों या कक्षा, स्कूल, इत्यादि कुछ भी हो) की स्वायत्तता और आत्म–निर्भरता को सुनिश्चित किया गया हो।

पाठ्यचर्या की अनुसरण प्रक्रिया में यह सोच स्पष्ट रूप से तब दिखाई देती है, जब पाठ्यचर्या को विकसित करने के दौरान ही उसमें शिक्षकों और बच्चों, दोनों की भागीदारी व स्वामित्व को आवश्यक मानकर शामिल किया गया हो। ऐसा करने पर पाठ्यचर्या गतिशील और निरन्तर विकास करती हुए बनी रहती है। साथ ही विद्यार्थियों को सामने उपस्थित परिस्थिति का तथा बदलती दुनिया व समाज का सामना करने और समाधान खोजने के लिए तैयार करती है।

6. जानने के देशज तरीके – समेकित / बहुविषयी

ज्ञान की देशज व पारम्परिक व्यवस्थाओं और जानने के तरीकों को स्वीकार करना, उन्हें प्रामाणिक बनाना तथा उनके साथ संवाद को गहरा करना। पाठ्यचर्या में इस उद्देश्य की एक महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति विषयों के प्रति अपनाया जाने वाला समेकित व बहुविषयी दृष्टिकोण होता है।

7. आत्मज्ञान

सहयोगपूर्ण वातावरण में बच्चे को उसकी अपनी क्षमताओं, उसके मजबूत पहलुओं और कमजोर पहलुओं के प्रति संवेदनशील बनाने के द्वारा चरित्र निर्माण करना। अकादमिक अध्ययन में कम रुचि दिखाने वाले बच्चों को सिखाई जाने वाली अवधारणाओं के साथ दूसरे तरीकों से जुड़ पाने के अवसर प्रदान करना और इस तरह उन्हें अकादमिक अध्ययन पर ध्यान देने के लिए प्रेरित करना।

जब बच्चे अलग–अलग प्रकार की लकड़ियों को छूते हैं, महसूस करते हैं, उन पर कुछ काम करते हैं जैसे पॉलिश करना या उनसे कुछ बनाना, तो उनमें वृक्षों की पहले से कहीं ज्यादा गहरी समझ बन जाती है। इस तरह के काम करने पर उनका अपना–अपना विशेष व्यक्तित्व निखरेगा और वे पर्यावरण के साथ संवेदनशील समानुभूति विकसित करेंगे। आपस में प्रतिस्पर्धा करने के बजाय वे एक–दूसरे की मदद करेंगे। वे सरल उपकरणों को इस्तेमाल करना और उनका रखरखाव करना सीखेंगे जिससे उनके हाथों व आँखों का तालमेल, स्थानों का उपयोग करने की समझ व अनुशासन बेहतर होगा। वे कड़ी मेहनत का मूल्य समझेंगे, उन्हें कुछ सृजन करने का सन्तोष महसूस होगा और उनमें आत्मविश्वास व आत्म–निर्भरता इतनी बढ़ जाएगी कि हम सोच भी नहीं सकते। ये बच्चे जिन सुन्दर और उपयोगी वस्तुओं को बनाएँगे, उनमें वे खुद को देख पाएँगे। चिन्तन, परिश्रम और उत्कृष्टता हासिल करने का निरन्तर प्रयास उनका दूसरा स्वभाव बन जाएगा। उनके शरीर व आत्मा में ऐसा कुछ विकसित होना शुरू होगा जिससे कि वे शालीन, ईमानदार, सृजनशील, परिश्रमी और सन्तोषी मनुष्य बन सकेंगे।

जैसा कि हरबर्ट रीड कहते हैं, 'किसी बच्चे द्वारा बनाई गई कलाकृति उसके लिए स्वतंत्रता का, उसकी सभी प्रतिभाओं और योग्यताओं के फलीभूत होने का तथा वयस्क जीवन में स्थायी खुशी पाने का प्रवेश द्वार होती है। कला और शिल्प के कार्य बच्चे को खुद से बाहर लाते हैं। यह अकेले की जाने वाली वैयक्तिक गतिविधि की तरह शुरू हो सकती है, जैसे अपने आप में डूबा हुआ कोई छोटा बच्चा एक कागज के टुकड़े पर समझ में न आने वाली लिखाई कर रहा हो या कुछ गूदकर चित्र जैसा बना रहा हो। पर बच्चे का इस अस्पष्ट तरह से लिखना अपनी भीतरी दुनिया को किसी संवेदनशील दर्शक को सम्प्रेषित करने के लिए ही होता है।'

रबीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है : 'यदि शैक्षणिक प्रक्रियाओं को पूरी मानवता की एकता के लक्ष्य के लिए तैयार किया जाए तो इसकी शुरुआत बच्चे के मन में अपनी माँ के लिए और अपने करीबी परिवार वालों के लिए प्रेम के विकास से होती है, जो अन्ततोगत्वा सार्वभौमिक प्रेम तक पहुँचती है। पर प्रेम की इस एकता की बुनियाद सृजनशीलता में ही होती हैं।'

लकड़ी की शिल्प कला और आज के दौर की शिक्षा में उसकी भूमिका

गतिविधि	आयु वर्ग/ कक्षा 5–8 वाले वर्ष	आयु वर्ग/ कक्षा 8–11 वाले वर्ष	आयु वर्ग/ कक्षा 11–14 वाले वर्ष	सीखी गई प्रवृत्तियाँ
लय 5 मिनिट	लय में तालियों और पैरों की थापों का इस्तेमाल करते हुए, इस दृढ़ वचन के साथ शुरुआत करना कि मैं जो भी करता हूँ, वह अच्छा करता हूँ। एक गोले में खड़े हो जाएँ, हर शब्द के लिए पहली बार ताली बजाएँ, जब यह वाक्य दूसरी बार बोला जाए तो पहले 5 शब्दों पर ताली बजाएँ और पहले शब्द पर पैर की थाप दें, फिर 4 शब्दों पर पैरों की थाप दें। इस तरह यह गतिविधि चलती जाएगी। अन्त में पहले शब्द के लिए ताली बजाएँ और 5 शब्दों के लिए पैरों की थाप दें। इसके बाद सभी शब्दों के लिए पैरों की थाप दें। अब इस प्रक्रिया को उलटा करके करें।	छोटे बच्चों के लय अभ्यास की तुलना में, आगे की ओर कदम बढ़ाते हुए यह कहने की एक अपेक्षाकृत अधिक जटिल लय कि – मैं अपनी राह पर हिम्मत और मजबूती से आगे बढ़ता हूँ। पहले हर एक शब्द के लिए एक कदम चलते हुए आठ कदम आगे की ओर चलें। फिर 7 कदम आगे चले और 1 कदम पीछे चलें, और फिर 6 कदम आगे चलें और 2 कदम पीछे चलें जब तक कि आप पूरी तरह वापस पीछे न आ जाएँ। अब इस प्रक्रिया को उलटा दोहराएँ।	अपने पंजों पर खड़े होकर एक बार में एक वाक्य बोलें। 3 बार, मैं मजबूत हूँ, मैं स्वस्थ हूँ, मैं स्वास्थ्य हूँ, मैं समृद्ध हूँ, मैं समृद्धि हूँ, मैं चिन्ता नहीं करता/ करती। मैं क्रोध नहीं करता/ करती। मैं अपना काम ईमानदारी से करता हूँ/ करती हूँ। मैं सभी सजीव व निर्जीव चीजों के प्रति प्रेम और सम्मान दिखाता हूँ/ दिखाती हूँ। मैं सभी के प्रति आभारी हूँ। मैं सदा मुस्कुराता रहता हूँ/ रहती हूँ। मैं प्रसन्न हूँ, मैं प्रसन्न रहता हूँ।	मूल्य – सहयोग, एकाग्रता, सकारात्मक सोच और सकारात्मक काम। प्रक्रिया – तालियाँ बजाना और पैरों की थाप देना, अनुशासन। काम – उस स्थान की सफाई करना, और सभी बच्चों को एक गोले में व्यवस्थित करना। न्याय – गोले में एक लड़के के बाद एक लड़की को खड़ा करना। कला – क्रम और लय। अनुरूप बनाए जा सकने की क्षमता – यह गतिविधि किसी भी भाषा में की जा सकती है, और कोई भी सकारात्मक वचन इस्तेमाल किया जा सकता है। अकादमिक – भाषा तथा उच्चारण सीखना, गणना करना, सन्तुलन साधना।
चर्चा शिक्षक सीधे सवाल पूछकर चर्चा की दिशा तय करते हैं	उनके परिवेश में कौन–सी वस्तुएँ लकड़ी की बनी हैं : (मेज, कुर्सियाँ आदि, कागज, पेंसिल, लिखने के पैड, डेस्क, ब्लैक बोर्ड, नोटिस बोर्ड, दरवाजे, खिड़कियाँ, छत इत्यादि)। ये चीजें लकड़ी से क्यों बनाई जाती हैं? इन्हें बनाने के लिए लकड़ी के बजाय और किस सामग्री का इस्तेमाल किया जा सकता है? हमें अपना खाना कहाँ से मिलता है? कौन क्या खाता है? घनत्व से जुड़े हुए लकड़ी के गुणधर्म। सूखी और हरी लकड़ियों के साथ उनके पानी पर तैरते रहने या डूब जाने के प्रयोग। लकड़ी के अन्य कार्य : हवा को शुद्ध करना, छाया देना, अन्य प्राणियों के लिए बसेरा और घर बनाने के लिए उपयोग किया जाना, खाद्य शृंखला का सबसे पहला चरण इत्यादि।	एक ही चर्चा से अलग–अलग वार्तालाप निकलेंगें और बच्चे एक–दूसरे से सीखेंगे। कक्षा के भीतर ही ज्ञान का आधार बनता हुआ दिखाई देगा और बच्चों को अपने साथियों से सीखने में आसानी होगी। इसके अलावा, आगे कुछ और विषयों पर चर्चा कराई जा सकती है जैसे लकड़ी के ताप और विद्युत चालकता के गुणधर्म। ऊर्जा के शाश्वत (नवीनीकरण किए जा सकने वाले) स्रोत के रूप में लकड़ी। वृक्षों के अन्य काम : अन्य जीवन रूपों के लिए आवास निर्मित करने के लिए उपयोग, जैव–विविधता की आवश्यकता होने के पीछे मौजूद कारण।	संसाधित लकड़ी के बारे में तथा रचनात्मकता के साथ बेकार लकड़ियों का इस्तेमाल करने के बारे में और चर्चा की जा सकती है। जीवाश्म ऊर्जा और कोयले के चूरे की ईंटों जैसे स्वरूपों में लकड़ी के उपयोग के अन्य पहलू।	दूसरों को सुनना और उनके नजरिये का सम्मान करना, सीखना। अपने विचारों को बेझिझक होकर बताना और आलोचना को सकारात्मक ढंग से लेना सीखना तथा अपनी गलतियों से भी सीखना। विश्लेषण करना, विचार करना सीखना और अवलोकन के बारे कुछ निष्कर्षों पर पहुँचने के लिए तर्क करना सीखना। सहयोग, दूसरों का लिहाज करना, आत्म–अनुशासन, आत्म–मूल्यांकन, आत्म–प्रमाणन करना सीखना।

गतिविधि	आयु वर्ग/ कक्षा 5–8 वाले वर्ष	आयु वर्ग/ कक्षा 8–11 वाले वर्ष	आयु वर्ग/ कक्षा 11–14 वाले वर्ष	सीखी गई प्रवृत्तियाँ
बताई जाने वाली **अवधारणा**	विभिन्न पदार्थों पर ध्यान देना सीखना, और उनके उपयोग, गुणधर्म और सम्भावनाओं के बारे में सीखना। अन्य पदार्थों और उनके स्रोतों की सूची बनाना – जैसे कि एल्यूमीनियम, लोहा, तांबा, इस्पात, कपड़ा, पीतल, आदि। बच्चों के परिवेश में, इनमें से प्रत्येक पदार्थ से जो वस्तुएँ बनाई गई हों उनकी सूची बनाना। इस बात को समझना कि पदार्थों को उपयोग करने से पहले संसाधित किया जाता है। इस बात की तरफ बच्चों का ध्यान आकर्षित करना कि पृथ्वी सभी तरह के कच्चे माल की एकमात्र स्रोत है।	अलग–अलग वस्तुओं की तरफ बच्चों का ध्यान दिलाकर उनसे पूछना कि वे किस पदार्थ से बनी हैं। उदाहरण के लिए, बरतन, अलमारी की पट्टी, फर्नीचर, चटाइयाँ, कपड़े, घर, औजार, बिजली के तार इत्यादि। ये वस्तुएँ उन्हीं पदार्थों से क्यों बनती हैं, दूसरे पदार्थों से क्यों नहीं बनतीं? किसी चीज को बनाने के लिए कच्चे माल का उपयोग करने से पहले किन मानदण्डों पर विचार किया जाता है?	चर्चा करें कि पदार्थों के अन्धाधुन्ध ढंग से उपयोग किए जाने के कारण क्या हुआ है? किस तरह पारम्परिक पदार्थों की जगह विघटित न हो सकने वाले प्लास्टिक ने ले ली है? जंगलों की अन्धाधुन्ध कटाई के बगैर, नवीनीकरण किए जा वाले संसाधन के रूप में लकड़ी का उपयोग करने की सम्भावना के बारे में चर्चा करें। कृषि–वन विज्ञान के बारे में तथा लकड़ी के अन्य संसाधित विकल्पों जैसे प्लाईवुड, पार्टिकल वुड, हार्ड बोर्ड और न्यूवुड के बारे में चर्चा करें। लकड़ी का संरक्षण। लकड़ी पर होने वाले प्रभाव जैसे लकड़ी का आड़ा–तिरछा हो जाना, बीच में दरार आ जाना, मुड़ जाना, दीमक लग जाना, छेद करने वाला कीड़ा लग जाना इत्यादि।	विषय की कड़ियों को जोड़ना। अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा को कम करने की जरूरत को समझना, पदार्थों के पुन: उपयोग के बारे में जानना और आज के समय में इस्तेमाल करके फेंक दिए जाने वाले उत्पादों के बजाय, दीर्घकाल तक चल सकने वाले उत्पादों को बनाने के लिए उनकी गुणवत्ता को बेहतर बनाने के बारे में समझना।
कहानी सुनाना	इस बारे में एक कहानी बनाएँ कि अगर पेड़ों की भावनाएँ होतीं और वे बोल सकते होते और हमें अपनी जरूरतों के बारे में बता सकते तो क्या होता। पेड़ों को पानी, धूप, हवा के साथ ही एक ऐसे मित्र की जरूरत होती है जो उनकी देखरेख करे।	सजीव कार्टून फिल्में दिखाना, जैसे कि 'द लोरैक्स', जो एक ऐसे शहर के बारे में है जहाँ कोई पेड़ नहीं थे। फिल्म में बताया गया है कि वह शहर ऐसी स्थिति में कैसे पहुँचा और कैसे एक लड़के ने पेड़ों को वापस लाने की ठानी।	बच्चों को पेड़ों को बचाने के लिए हुए चिपको आन्दोलन की कहानी सुनाएँ। आधुनिक चिपको आन्दोलन 1970 के दशक की शुरुआत में उत्तराखण्ड के गढ़वाल हिमालय क्षेत्र में श्री सुन्दरलाल बहुगुणा के द्वारा प्रारम्भ हुआ था। तब यह क्षेत्र उत्तरप्रदेश में था। वनों के तेजी से हो रहे विनाश के बारे में बढ़ती जागरूकता के साथ यह आन्दोलन शुरू हुआ था।	पेड़ों के महत्त्व को समझना। यह समझना कि पेड़–कार्बन का चक्र किन चरणों से निर्मित होता है। पेड़–पौधों की दुनिया के प्रति सहानुभूति व समानुभूति का भाव पैदा करना।

गतिविधि	आयु वर्ग/ कक्षा 5–8 वाले वर्ष	आयु वर्ग/ कक्षा 8–11 वाले वर्ष	आयु वर्ग/ कक्षा 11–14 वाले वर्ष	सीखी गई प्रवृत्तियाँ
क्षेत्र भ्रमण : किसी पास के बगीचे/ जंगल/ वन/ पेड़ों के गलियारे में जाना। गतिविधियाँ	पत्तियों, फूलों, बीजों का संग्रहण (पौधे से बात करके, उसकी अनुमति लेना, और बाद में उसे धन्यवाद देकर गले से लगाना या चूमना)। क्रेयॉन रंगों का इस्तेमाल करके पेड़ की छालों तथा पत्तियों की छापें बनाना। बच्चों जो कुछ भी अच्छा लगे वे उसका चित्र बनाएँ – जीवन से जुड़ा चित्र।	जंगल में वनस्पति के विभिन्न प्रकारों, और विभिन्न परतों का अवलोकन। उन्हें पत्तियाँ जैसी दिखाई दें, उनका चित्र बनाना। छोटे–छोटे पौधों में जड़ों के तंत्र को समझना, फूलों और उनके विभिन्न भागों को समझना।	मौन ध्यान करना। पौधों, फूलों और पेड़ों के विभिन्न अंगों का चित्र बनाना। फिर दूर दिखाई देने वाले पूरे पेड़ का एकल स्वरूप की तरह चित्र बनाना।	बच्चों को यह समझाने के द्वारा, कि ये सारी चीजें किस तरह बनती हैं, उनके विस्मय बोध को जगाना और उन्हें भावनात्मक रूप से समृद्ध बनाना। उनके मन में पर्यावरण और धरती माँ के लिए श्रद्धा पैदा करना।
बताई जाने वाली अवधारणाएँ	पौधों के उपयोग, पौधों के अंगों के नाम और उनके काम। सब्जियों और फलों के नाम। खाना बनाने में इस्तेमाल होने वाले मसालों के नाम। सामान्य, और दैनिक जीवन में इस्तेमाल होने वाले घरेलू औषधीय पौधे और उनके उपयोग (बच्चे अपने माता–पिता से बात करें, और उन्हें फीडबैक दें)। पत्तियों के प्रकारों, बीजों के प्रकारों, जड़ों के प्रकारों में अन्तर समझना।	पौधों और पेड़ों के काम – जैव विविधता। पौधों की जरूरतें – वे उन्हें कैसे पूरी करते हैं – और यह आश्चर्यजनक तथ्य कि किस तरह पूरी जीती–जागती दुनिया हवा के एक घटक कार्बन डाई आक्साइड से बनती है। किस तरह से पौधे खाद्य शृंखला का पहला चरण होते हैं। किसी अंकुरित बीज की पत्तियों को देखकर यह पहचानने की कोशिश करें कि वह पौधा एकबीज–पत्री है या द्विबीज–पत्री।	दुनिया के जलवायु क्षेत्र – मरुस्थल, घास के मैदान, उष्णकटिबन्धीय वन, सदाबहार वन, आदि। वनस्पतियाँ किस तरह जलवायु सम्बन्धी दशाओं पर निर्भर करती है, और जीव–जन्तु वनस्पति पर निर्भर करते हैं। जंगलों का विनाश – और इसके कारण। जंगलों को साफ करते जाने के बजाय इमारती लकड़ी के पेड़ लगाना – कृषि वन विज्ञान।	अन्य जीवधारियों के साथ समानुभूति अनुभव करने पर जोर देना। पुस्तकों से जानकारियाँ इकट्ठा करने के बजाय बच्चों के भीतर खुद अवलोकन करने की क्षमता पैदा करना ताकि वे ज्ञान निर्मित कर सके। विषयों को सीखते समय आत्म–निर्भरता विकसित करना, तथा उन्हें अलग–अलग देखने के बजाय ज्ञान का संयोजन और एकीकरण करना।
क्षेत्र भ्रमण के आधार पर कक्षा के भीतर की जाने वाली **गतिविधियाँ**	इकट्ठा की गई सामग्री का वर्गीकरण करना – आकार के अनुसार, रंग के अनुसार, बनावट के अनुसार, गुणवत्ता के अनुसार। वर्गीकृत की गई अलग–अलग चीजों की गिनती करना। दिमाग में जिस तरह के रंगों की प्रतिछवियाँ उभरती हों, उन्हें वैसे ही चित्रित करना। हमारे लिए तथा हमारे आसपास स्थित जीवधारियों के लिए पेड़ों के उपयोगों को चित्रों के रूप में व्यक्त करना। क्रेयान्स से उनमें रंग भरना।	साथियों, माता–पिता और शिक्षकों की मदद से इकट्ठा किए गए विभिन्न पौधों को पहचानना। उनके उपयोगों की सूची बनाना और वनस्पतियों का संग्रह करके उनकी श्रेणियाँ बनाना। विभिन्न प्रकार के पौधों और उनके उपयोगों की एक तालिका बनाना और उनमें इमारती लकड़ी की किस्मों की पहचान करना। अपनी पसन्द के किसी एक पेड़ या पौधे के बारे में एक कविता लिखना। पौधों के लिए किए गए इस भ्रमण के अनुभव, उन्होंने क्या देखा इत्यादि के बारे में लिखना।	ज्यादा गहराई से महसूस करके लिखना। जंगल के भ्रमण के बारे में एक कार्टून पट्टी भी बना सकते हैं। किसी पेड़ को देखकर उसकी संरचना को समझना, उसकी शाखाएँ किस तरह बढ़ती हैं और पेड़ का सन्तुलन कैसा है। पहले एक पत्ती का चित्र बनाना, फिर शाखा का, और फिर पेड़ के पूरे स्वरूप का। चित्र बनाते समय ध्यान में रखना कि पत्तियों का आकार कैसा है और शाखाएँ किस प्रकार ऐसे ढंग से बढ़ती हैं कि पेड़ या पौधे की स्थिरता और मजबूती बनी रहती है।	सीखने का वर्गीकरण, पत्तियों और बीजों का उपयोग करके गिनती करना सीखना। विचारों को तस्वीरों से प्रगट करना सीखना। पेड़ों और पौधों का वर्गीकरण करना सीखना, उनके वैज्ञानिक नामों को सीखना, प्रचलित नामों को सीखना, वैज्ञानिक नाम रखने की प्रणाली की जरूरत का कारण जानना, पौधों के उपयोगों को जानना। तालिकाएँ बनाना सीखकर जानकारियों को वर्गीकृत करके उन्हें आसानी से ढूँढ़ने योग्य बनाना। भाषा– कौशल का विकास, शब्दों में विचारों को प्रगट करना। कविताएँ लिखने के लिए भाषा के उपयोग में रचनात्मकता लाना। वस्तुएँ जैसी हैं उनकी व्याख्या में दिमाग लगाए बगैर उन्हें वैसे ही देखना और उनका चित्र बनाना। इससे अवलोकन कौशल बेहतर होता है। पेड़ों से जुड़ी रेखागणित की तथा स्वरूप और स्थायित्व सम्बन्धी बुनियादी बातों को समझना।

गतिविधि	आयु वर्ग/ कक्षा 5–8 वाले वर्ष	आयु वर्ग/ कक्षा 8–11 वाले वर्ष	आयु वर्ग/ कक्षा 11–14 वाले वर्ष	सीखी गई प्रवृत्तियाँ
क्षमताएँ	आकार, रंग, बनावट के आधार पर वर्गीकरण करना। दहाईयों का इस्तेमाल करते हुए बड़ी संख्याओं को गिनना, पत्तियों और फूलों के बीच अन्तरों का अवलोकन, इन अन्तरों को पहचानना विभिन्न पत्तियों, डंडियों और पत्थरों का इस्तेमाल करके कोलाज बनाना।	जंगल की विभिन्न परतें। पौधों के प्रकार – कई तरह की घासें, जड़ी–बूटियाँ, झाड़ियाँ, पेड़, हवा और वर्षा के सहारे पनप कर दूसरे पेड़ों पर फैलने वाली गैर–परजीवी लताएँ (एपीफाइट्स), दूसरे पेड़ों पर पलने वाली परजीवी लताएँ। विभिन्न प्रकार के पेड़ों की तालिका बनाएँ जिनमें सामने उनके उपयोग दर्ज करें, जैसे कि ईंधन के लिए या इमारती लकड़ी, औषधि, खाद्य वस्तुओं और फलों के लिए या फिर बसेरा निर्मित करने के लिए (बरगद का पेड़), आदि। पौधों तथा पेड़ों की जरूरतें तथा वे खुद उन्हें कैसे पूरा करते हैं।	पेड़–पौधों तथा पशु–पक्षियों के विभिन्न जीवन रूपों की जैव–विविधता। पारिस्थितिक तंत्र में पौधों का कार्य। आपस में जीवरूपों की पारस्परिक निर्भरता एवं सहजीविता। ऊर्जा संश्लेषण के स्रोत के रूप में, और इस तरह पृथ्वी पर समस्त जीवधारियों के स्रोत के रूप में पेड़ों की भूमिका। कोणों की अवधारणा, किस प्रकार प्रकृति में न्यून कोण पाए जाते हैं और किस तरह त्रिभुज सबसे मजबूत स्वरूप होता है इत्यादि।	पेड़ों और झाड़ियों को पहचानना सीखना, पेड़, पौधों के स्वरूप को देखकर उनके औषधीय उपयोगों को जानना तथा याद रखना। प्रकृति में जैव–विविधता की आवश्यकता को समझना और उसे पारिस्थितिक तंत्र के स्वास्थ्य से जोड़ना। प्रकृति के प्रति धन्यवाद का भाव विकसित करना। सन्तुलन के बारे में सीखना, जड़ों के तंत्रों, शाखाओं की संरचनाओं और पत्तियों तथा फूलों और बीजों की संरचनाओं को समझना, जिनके कारण परागण और प्रसारण में मदद मिलती है। अवलोकन के कौशलों को सीखना, चित्र बनाने की योग्यता, आत्म–अभिव्यक्ति सीखना और रंगों के नाम जानना।
किसी कार्य का शैक्षणिक प्रदर्शन	बच्चे ध्यानपूर्वक बढ़ई को काम करता हुआ देखते हैं।	बच्चे किसी ऐसे व्यक्ति को खोज लेते हैं जो लकड़ी का बेहतरीन काम करता हो और वे उनसे स्कूल आकर उनके लिए कुछ बनाने का अनुरोध करते हैं। इस प्रक्रिया के दौरान वे लोगों से बात करते हैं और उपयुक्त बढ़ई का पता लगा लेते हैं।	सभी बच्चे गौर से बढ़ई महाशय को काम करता हुआ देखते हैं और जो भी बात उन्हें रोचक लगती है उसके बारे में उनसे बातचीत करते हैं। उनसे यह पता करने की कोशिश करें कि उन्होंने यह कला कैसे सीखी और उनके परिवार की आर्थिक स्थिति कैसी है।	बढ़ई को काम करता हुए देखने के दौरान विभिन्न औजारों के उपयोगों के बारे में सीखना। पारम्परिक हस्तकलाओं को बढ़ावा देने की जरूरत को समझना। सौन्दर्य बोध और रचनात्मकता विकसित करना।
क्षेत्र भ्रमण : बढ़ई के साथ स्थानीय आरा मशीन कारखाने को देखने जाना	इस आयु वर्ग के बच्चों के लिए इस गतिविधि की जरूरत नहीं है।	पेड़ के तने को आड़ा काटने पर उस पर बने हुए वार्षिक वृक्ष वलयों (ट्री रिंग्स) का निरीक्षण करना, और जानना कि किस तरह उनसे पेड़ों की आयु का पता लगाया जाता है।	विविध प्रकार की इमारती लकड़ी की विभिन्न किस्में और उनके मूल पेड़। ऐसी लकड़ी की किस्मों की लागतें – लकड़ी को मापने की इकाई के बारे में सीखना।	मौसमों के पौधों पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में सीखना और जानना कि पेड़ समय को कैसे दर्ज करते हैं। वार्षिक, द्विवार्षिक और सदाबहार किस्म के पौधों के बारे में जानना।

गतिविधि	आयु वर्ग/ कक्षा 5–8 वाले वर्ष	आयु वर्ग/ कक्षा 8–11 वाले वर्ष	आयु वर्ग/ कक्षा 11–14 वाले वर्ष	सीखी गई प्रवृत्तियाँ
अवधारणाएँ		लम्बाई को मापने की इकाई सीखना और इमारती लकड़ी की लागत का पता करना। आरा मशीन से होने वाली चिराई में बचने वाली, छिल्पियों, कतरनों और टुकड़ों से क्या बनाया जा सकता है? लकड़ी को संरक्षित करने तथा उसे मजबूत और टिकाऊ बनाने की प्रक्रिया जानना। बाँस के लचीलेपन की ताकत उसे बहु–उपयोगी बना देती है। यदि उसे छेद करने वाले कीड़ों और दीमकों से बचाया जा सके तो यह लगभग कई चीजों में स्टील की जगह ले सकता है।	लकड़ी के निर्यात और आयात के बारे में जानना। उसकी लागत और उपलब्धता का विवरण। स्थानीय रूप में उपलब्ध इमारती लकड़ी की किस्मों और उनके विशेष उपयोगों के बारे में जानना। जंगलों के कटने का मिट्टी पर, और वन्य प्राणियों की आबादियों पर पड़ने वाले प्रभाव। खेती के लिए इसका निहितार्थ – मनुष्य के और वन्य जीवन के हितों के टकराव को समझना।	वर्ग फुट और घन फुट में गणना करना। आयतन की अवधारणा और इसे कैसे मापा जाता है, यह सीखना। विभिन्न ठोस आकृतियों के आयतनों के बारे में सीखना और जानना कि उनकी गणना कैसे की जाती है। लघुत्तम (एलसीएम) और महत्तम (एचसीएफ) की अवधारणाओं का उपयोग करते हुए लकड़ी को इस तरह काटना कि कम से कम लकड़ी बरबाद हो। पौधों की बढ़त और उनके रस की प्रसार गति से चन्द्रमा की घटती, बढ़ती कलाओं का सम्बन्ध। उदाहरण के लिए, बाँस की कटाई पारम्परिक रूप से अमावस्या के आसपास की जाती है, क्योंकि तब रस कम होता है और इसलिए कीटों के हमले की सम्भावना भी कम होती है।
लकड़ी की वस्तुएँ बनाने की गतिविधि	पहले से तैयार की गई ऐसी सामग्री का उपयोग करना, जिसमें असली स्क्रू, लकड़ी की कीलों और असली लोहे के नट–बोल्टों, पेंचकस, लकड़ी के हथौड़े, आदि को इस्तेमाल करने का समावेश किया गया हो। लकड़ी के एक टुकड़े या नारियल के एक खोल को लेकर उसे रेगमाल से तब तक घिसना जब तक वह चिकना न हो जाए और फिर इससे कप व चमचे बनाना।	छोटे वसूलों, हथौड़ों, आरी आदि का उपयोग करते हुए कोई सरल खिलौना बनाना। उदाहरण के लिए एक भौंरा या बल्ला, गिल्ली डंडा, या एक खचोड़ने वाला खिलौना आदि बनाना।	तीन चीजें बनाना : पहली : उनकी पसन्द की कोई चीज दूसरी : कोई उपयोगी वस्तु, जैसे कि जूतों का स्टैंड, पत्रिकाएँ रखने का स्टैंड या एक छोटा स्टूल आदि। तीसरी : सौन्दर्य बोध वाली कोई चीज, जैसे कि पेन रखने का स्टैंड, तस्वीर का फ्रेम आदि।	सक्षम होने की अनुभूति, सन्तोष और तृप्ति का एहसास होना। अपनी योग्यता और खामियों के बारे में जानना, साथ ही धैर्य और लगन सीखना। हाथ के सधे और स्थिर होने का महत्त्व समझना और उसे दिमाग के द्वारा समस्याओं को सुलझाकर, हृदय की सृजनात्मकता के साथ जोड़ना।

गतिविधि	आयु वर्ग/ कक्षा 5–8 वाले वर्ष	आयु वर्ग/ कक्षा 8–11 वाले वर्ष	आयु वर्ग/ कक्षा 11–14 वाले वर्ष	सीखी गई प्रवृत्तियाँ
क्षमताएँ और अवधारणाएँ	जब ऐसे काम किए जाते हैं, तब मौन रहने की जरूरत को समझना। लकड़ी के टुकड़ों के विभिन्न प्रकार के सम्भव जोड़ों के बारे में जानना। उनकी आकृतियों, आकार और परस्पर संगत बैठने का निरीक्षण करना। मापने के गैर–मानकीकृत औजारों का उपयोग करते हुए नापना। हाथों और आँखों में तालमेल बिठाना और साथ काम कर रहे लोगों के साथ समन्वय तथा सहयोग करना। सृजनात्मक ढंग से सोचना।	बनाई गई चीजों के अनुसार अवधारणाएँ जोड़ें (उदाहरण के लिए, यदि एक भौंरा बनाया है – तो घूर्णन की गति समझाना। इसी प्रकार गिल्ली–डंडा, गेंद–बल्ला, सिर्फ गेंद, खचोड़ने वाला खिलौना आदि के सन्दर्भ में, प्रक्षेपण मार्ग पर गति, सीधी रेखा में गति, लयपूर्ण या आवर्ती गति और चक्रीय गति आदि की अवधारणा समझाना। कौन–सी चीजें धुरी पर घूमती हैं या घूर्णन करती) हैं : जैसे कि पृथ्वी – अक्ष या धुरी की अवधारणा समझाना। यह समझाना कि पृथ्वी पर रात और दिन का होना, पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने के कारण होने वाला प्रभाव होता है। जबकि, ऋतुएँ सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की चक्रीय गति के कारण होती हैं।	बल की अवधारणा और वह कैसे कार्य का होना सम्भव बनाता है। घर्षण की अवधारणा और उसके द्वारा गति को कैसे रोका जाता है। आवेग की अवधारणा और हम बस में कैसे तब अपनी सीट पर आगे की ओर धकेल दिए जाते हैं, जब बस अचानक रुकती है। सापेक्षिक गति की अवधारणा – जब हम एक दिशा में जाते हैं तब चीजें विपरीत दिशा में गति करती हुई प्रतीत होती हैं। जब हम किसी भी तरफ और कितनी भी तेज चलते हैं तो किस तरह चन्द्रमा हमारा पीछा करता हुआ प्रतीत होता है। ऐसे खिलौने बनाना जो चारों ओर विभिन्न प्रकार की आवाजें निकालते हुए चक्कर लगाते हैं (अरविन्द गुप्ता की किताब में ढेरों ऐसे खिलौने बताए गए हैं)।	कौशलों को सीखना, वस्तु की ऊपर से दिखने वाली आकृति और बगल से दिखने वाली आकृति के चित्र बनाना। इस्तेमाल की जाने वाली सामग्री और उसके आकार तय करना – लकड़ियों या संसाधित लकड़ियों के प्रकार तय करना। सामग्री का इंतजाम करना, उसकी लागत और मेहनत का आकलन करना। बनाई गई वस्तु की कीमत तय करना। अपने श्रम के मूल्य को जायज ठहराना (स्वयं की गरिमा)। औजारों को किस तरह इस्तेमाल करना और व्यवस्थित ढंग से रखना। अतिरिक्त अवधारणाएँ – एक छोटी–सी प्लास्टिक की बोतल लेना, उसे काटना, उसे पानी से आधा भरना, उसमें एक रस्सी बाँधकर उसे तेजी से घुमाना और ध्यान से देखना कि घुमाते समय बोतल से पानी नहीं गिरता। अपकेन्द्री तथा अभिकेन्द्री बलों की अवधारणाओं को समझना। किसी भौंरे को रस्सी लपेट कर फिर तेजी से फेंकने पर उसके घूमने की छानबीन करना और उसे भी समझना! इसी प्रकार चर्खे और तकली के घूमने को समझना। एक रंगीन चकरी बनाना।
चर्चा और रंगमंच	इस पर चर्चा करना कि पारम्परिक हस्तकलाएँ क्या हैं और वे किस प्रकार मर रही हैं : पारम्परिक हस्तकलाओं के धीरे–धीरे नष्ट होने के विषयसूत्र के आधार पर तीनों आयु समूहों के बच्चों से, उनकी योग्यता और समझ के अनुसार सामूहिक रूप से अलग–अलग कहानियाँ लिखवाना और फिर उन्हें एक नाटक में परिवर्तित करना। नाटक की पटकथा लिखने में शिक्षक या सहायक मदद करेगा। फिर उस नाटक को पूरे स्कूल के सामने मंच पर प्रस्तुत करना।			भाषा की योग्यता, आत्मविश्वास, सामूहिक सृजनात्मकता आदि का विकास करना।

मुम्बई में जन्मी और पली–बढ़ी, **मीनाक्षी** उमेश ने सर जे. जे. कालेज ऑफ आर्कीटेक्चर से आर्कीटेक्चर की स्नातक उपाधि प्राप्त की है। उन्होंने पुदूचेरी के पास ऑरोविल में कम लागत के पर्यावरण–अनुकूलित आवास निर्मित करने की प्रौद्योगिक विधियों पर काम किया है। कई वर्षों तक उन्होंने अपने सहचर उमेश के साथ तमिलनाडु के धरमपुरी जिले में कृषि, भवन निर्माण और शिक्षा की वैकल्पिक पद्धतियों पर काम किया है। सन 2000 में उन्होंने रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गाँधी और ई. एफ. शूमाखर की विचारधाराओं पर आधारित एक स्कूल प्रारम्भ किया, जिसमें मारिया मॉंटेसरी, डेविड हॉर्सबर्ग, रूडोल्फ स्टाइनर और जैनेट तथा ग्लेन डोमेन द्वारा प्रदर्शित की गई शिक्षण पद्धतियों का उपयोग किया जाता है। अब वे दोनों पुविधाम रूरल डेवलपमेंट ट्रस्ट का संचालन कर रहे हैं जो प्रभावकारी जैविक खेती की तकनीकें विकसित करने का कार्य करता है और तमिलनाडु में धरमपुरी के नागरकूडल क्षेत्र के बच्चों को मानवीय तथा बाल–केन्द्रित शैक्षिक वातावरण प्रदान करने के लिए कार्यरत है। अधिक जानकारी के लिए, www.puvidham.org को देखें। उनसे puvidham@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

सीखना जीवन भर

प्रेमा रंगाचारी

"शिक्षा से मेरा आशय समग्र रूप से उसे प्रकट करना है जो बच्चे और मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा में सर्वश्रेष्ठ होता है।" *– महात्मा गाँधी*

सार्वभौमिक प्रारम्भिक शिक्षा के लिए सरकार के प्रमुख कार्यक्रम, सर्व शिक्षा अभियान, को तमिलनाडु के 13 जिलों में लागू किया गया है। इसकी बच्चों पर केन्द्रित तथा गतिविधि–आधारित सीखने की प्रक्रिया ने प्रारम्भिक शिक्षा की पहुँच में विस्तार किया है और उसकी गुणवत्ता को बढ़ाया है। इससे मिलता–जुलता कार्यक्रम माध्यमिक स्कूलों में आरम्भ किया गया है, जो रचनावाद और स्व–निर्देशित सीखने पर आधारित है।

सरकार का दृष्टिकोण सदैव ऊपर से नीचे की ओर रहता है। वह हमेशा बच्चों की जरूरतों और वे जिस समुदाय से आते हैं उसकी जरूरतों को ध्यान में नहीं रखता।

पर क्या नीचे से ऊपर की ओर बढ़ने वाला दृष्टिकोण काम करता है? हाँ, वह कारगर होता है, जैसा कि कोयम्बटूर जिले के अनैकट्टी में इरुला समुदाय के बच्चों की सेवा करने वाले विद्या वनम् की शिक्षण पद्धति से प्रकट होता है। यह दृष्टिकोण सीखने की प्रक्रिया को समुदाय के व्यापक पारिस्थितिक तंत्र के साथ अविभाज्य रूप से जोड़ता है।

स्कूली शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य बच्चों को ऐसे दृष्टिकोण और कौशल सीखने की सुविधा देना है जो उन्हें सफलतापूर्वक अपने परिवेश के साथ काम करने दें। एक आदिवासी व्यक्ति का जीवन पूरी तरह से उसके पर्यावरण से जुड़ा रहता है, इसलिए हमें वहाँ ऐसी शिक्षण पद्धति की जरूरत थी जो उनकी सांस्कृतिक जरूरतों के प्रति संवेदनशील हो, और जो विभिन्न बच्चों की परम्पराओं तथा उनकी सीखने की शैलियों के प्रति जागरूक हो।

सीखने की समस्याएँ तब खड़ी होती हैं जब बच्चों का पर्यावरण और सांस्कृतिक परिवेश वह नहीं होता जो शिक्षक का होता है। आमतौर पर सभी शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रमों में एक जैसी सामग्री होती है, जिसका उपयोग उसमें बिना कोई परिवर्तन किए, शहरी तथा ग्रामीण, दोनों ही परिवेशों में किया जाता है। शिक्षण पद्धति को सिर्फ एक वैज्ञानिक उपकरण की तरह नहीं, बल्कि एक ऐसी प्रक्रिया की तरह देखा जाना चाहिए जिसमें सीखने को एक सांस्कृतिक जाल पर बुना जाता है। उसमें विभिन्न सांस्कृतिक सन्दर्भों तथा कक्षा में और कक्षा के बाहर सीखने और सिखाने के व्यवहारों को भी समाहित किया जाना चाहिए।

शिक्षा एक जैविक तथा मानवीय, दोनों ही प्रकार की व्यवस्था है; वह लोगों के बारे में और उनके लिए होती है। मनुष्य नैसर्गिक रूप से भिन्न और विविध प्रकार के होते हैं। वे ऐसे व्यापक पाठ्यक्रम में ही पनपते हैं जो उस विविधता को सराहता है और विभिन्न प्रकार की प्रतिभाओं को मान्यता देता है। एक ऐसा पाठ्यक्रम जो विज्ञान और गणित पर तो जोर देता ही है, पर साथ ही कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए और सीखने की अलग–अलग शैलियों के लिए भी भरपूर सुविधा देता है। इसलिए पाठ्यक्रम बनाने में शिक्षा की वर्तमान कार्यप्रणाली के बारे में फिर से सोचे जाने तथा ऐसी नई व्यवस्थाएँ निर्मित करने की जरूरत है जो मस्तिष्क, हृदय और हाथों को समाहित करती हों।

स्कूल के प्रारम्भिक वर्षों में प्रमुख रूप से बच्चों के आत्मविश्वास और स्वयं सीखने के कौशलों को निर्मित करने पर ध्यान केन्द्रित रहना चाहिए। यह जरूरी नहीं है कि विभिन्न विषयों के भेद बच्चों को समझ में आएँ। सार्थक सीखना ऐसी योग्यता के साथ आता है जो ज्ञान को एक ऐसी अन्तर्सम्बन्धित संरचना के रूप में समझ सके जिसमें एक चीज सहजता से दूसरी से जुड़कर एक सुसंगठित पूर्णता को निर्मित करती है। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए, विद्या वनम ने 'विषयसूत्र (थीम) आधारित सीखने' की पद्धति विकसित की।

विषयसूत्र–आधारित सीखना

इसमें किसी ऐसे विषयसूत्र को चुनना होता है जिसकी खोजबीन बच्चे के विकास के भिन्न–भिन्न स्तरों पर की जा सके। बच्चों को छोटे–छोटे समूहों में बाँट दिया जाता हैं और उन्हें अपने समूह के साथ करने के लिए कार्य दिए जाते हैं। वह विषयसूत्र ऐसा छत्र होता है जिसके अन्तर्गत अलग–अलग विषयों का अध्ययन किया जाता है और उन्हें एक–दूसरे से इस तरह जोड़ दिया जाता है कि वे मिलकर एक अखण्ड इकाई बन जाते हैं। वह सीखने के विभिन्न स्तरों को भी समाहित करता है और हर समूह को सक्रिय रूप से सीखने के लिए नई चुनौतियाँ पेश करता है। यह प्रक्रिया बहुत हद तक यह बात फिर साबित करती है कि ज्ञान अलग–अलग, स्वतंत्र खण्डों में बँटा हुआ नहीं होता, बल्कि वह एक पूर्ण इकाई की तरह अखण्ड होता है। सीखने के ये विविध आयाम उस पारिस्थितिक तंत्र तथा उस सांस्कृतिक परिवेश के बोध को और गहराई देते हैं जिनके वे हिस्से होते हैं।

विषयसूत्र–आधारित इकाइयाँ किसी विषय को केन्द्र में रखते हुए पाठ्यक्रम के क्षेत्रों को उससे और आपस में संयोजित करने के माध्यम से बच्चों को विविध प्रकार के कौशल और विषयवस्तु पढ़ाने में मदद करती हैं। यह बच्चों की रुचियों के अनुरूप होने के कारण उनमें एक सार्थक उद्देश्य का भाव और कक्षा में समुदाय की भावना निर्मित करता है। ज्यादा जानने की इच्छा से पूछताछ करने और संवाद करने की प्रक्रियाएँ सहज रूप से होने लगती हैं, जिसका परिणाम उनकी उत्साहपूर्ण भागीदारी होती है। समेकित अध्ययन की यह कार्यपद्धति, जो सीखने वालों की सहभागिता पर आधारित रहती है, कुछ शिक्षकों के लिए एक नया संगठनात्मक प्रतिरूप होता है। जो शिक्षक ज्यादा पारम्परिक प्रतिरूप के आदी होते हैं, उन्हें इससे खतरा महसूस हो सकता है, क्योंकि इसमें पाठ्यक्रम की विषयवस्तु के ऊपर शिक्षक का नियंत्रण नहीं रह जाता। ऐसे सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक अब एक भागीदार बन जाता है।

इस प्रकार, शिक्षक एक संयोजक या सहायक बन जाता है। कई शिक्षकों की अपनी पाठ योजनाएँ होती हैं, लेकिन वे लचीला रुख अपनाते हैं और विद्यार्थियों को उनकी रुचि के अनुसार पाठ्य इकाई को अप्रत्याशित दिशाओं में ले जाने की छूट देते हैं। हालाँकि यह विद्यार्थियों को उन विषय इकाइयों में अधिक सक्रिय भूमिका निभाने का अवसर देता है जिनका वे अध्ययन करते हैं, परन्तु इससे शिक्षक की भूमिका कम नहीं हो जाती। युवा लोगों को अपने सीखे हुए ज्ञान पर विचार करने और जो वे पहले जानते थे उसका सम्बन्ध नए सीखे से जोड़ने के लिए शिक्षकों की सहायता की जरूरत पड़ती है। कौशलों को हासिल करने की प्रक्रिया को भी नियोजित करने की आवश्यकता होती है। उन कौशलों को अन्य स्थितियों में इस्तेमाल करने की सम्भावनाओं को उदाहरणों सहित दर्शाए जाने की जरूरत होती है।

शिक्षकों के लिए एक श्रेष्ठ रणनीति किसी सहकर्मी के साथ विषयसूत्रों पर आधारित इकाइयों की योजना बनाना है। आपस में विचारों का आदान–प्रदान, गतिविधियों के बारे में सोचना, संसाधनों को विकसित करना, गतिविधियों की योजना बनाना, ये सब दोनों शिक्षकों के कौशलों की पुष्टि करते हैं और एक–दूसरे के विशेष ज्ञान का लाभ उठाते हुए, उन्हें कुछ ऐसा निर्मित करने का अवसर प्रदान करते हैं जिसे वे अकेले–अकेले नहीं कर सकते थे।

विद्या वनम् पूरे स्कूल को शामिल करने वाले ऐसे विषयसूत्रों पर आधारित अध्ययनों की योजना बनाता है, जो बहु–आयु वर्गों के समूहों के लिए होते हैं। इन समूहों को, विद्यार्थियों को उनकी कक्षाओं के आधार पर समूहों में बाँटने के सामान्य प्रचलन से हटकर, पूरे विद्यार्थी समुदाय को अलग तरीकों से संयोजित करके बनाया जाता है। इनका ढाँचा और कार्य–अवधि, संसाधनों की उपलब्धता और लक्ष्यों के अनुसार बदलते रहते हैं। इसका एक फायदा यह है कि जब शिक्षक सहभागिता की प्रक्रिया के माध्यम से साथ काम करते हैं तो वे विचारों के पारस्परिक आदान–प्रदान से लाभान्वित होते हैं। इसके साथ ही, जब शिक्षकों तथा भिन्न–भिन्न कक्षाओं के विद्यार्थियों का आपस में परिचय होता है, विद्यार्थी भिन्न आयु वाले दूसरे विद्यार्थियों के साथ काम करते हैं, तो पूरे स्कूल के एक समुदाय होने की भावना प्रगाढ़ होती है।

शिक्षकों और विद्यार्थियों के द्वारा मिलकर विषयसूत्रों पर आधारित अध्ययनों के विकसित किए जाने के और भी लाभ हैं। विद्यार्थी उनके लिए नए कल्पनाशील विचार, संसाधन और रणनीतियाँ लाते हैं और सीखने की प्रक्रिया के प्रति समर्पित रहते हैं क्योंकि वह उनकी अपनी रुचियों से प्रेरित होती है। सीखना तब अधिक अर्थपूर्ण हो जाता है जब सीखने वाले खुद अध्ययन के अपने विषय और विधियाँ चुनते हैं; और

इस तरह स्कूल के परिवेश में आजीवन सीखने का प्रतिरूप काम करने लगता है। जब शिक्षक अपनी आधिकारिक सत्ता को परे रख देते हैं तो उनके तथा विद्यार्थियों के पारस्परिक व्यक्तिगत सम्बन्ध बेहतर बनते हैं। शिक्षक व्याख्याताओं के बजाय सहयोगी और मार्गदर्शक बन जाते हैं।

निश्चित रूप से, विद्यार्थियों के आचरण पर अन्तिम नियंत्रण शिक्षक का ही रहता है और वही यह सुनिश्चित करने के लिए जवाबदेह होता है कि वे ऐसी सार्थक परियोजनाओं में संलग्न हों जो उनके कौशलों का विस्तार करती हों और जिनका परिणाम उनके ज्ञान में वृद्धि और सकारात्मक दृष्टिकोणों का विकसित होना हो। विद्यार्थियों के द्वारा निर्देशित सीखने की प्रक्रिया का मतलब शिक्षकों का उनकी जिम्मेदारी से हटना नहीं है, बल्कि उसे विद्यार्थियों के साथ साझा करना है।

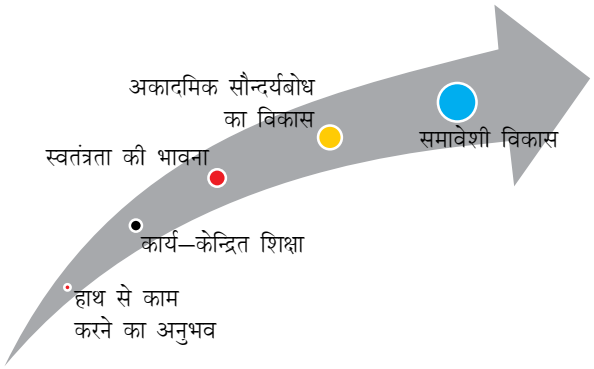

1. विषयसूत्र (थीम) चुनना

पहला काम एक ऐसे विषयसूत्र (थीम) पर चर्चा करना और उसे परिभाषित करना है जो अध्ययन की एक इकाई का आधार बनेगा। उस विषयसूत्र से सम्बन्धित लक्ष्यों (अर्थात, जो जरूरी नहीं कि पाठ्यक्रम के दायरों में ही आते हों) के बारे में योजना बनाने वाले पूरे दल को सहमत होना चाहिए।

2. पहले से योजना बनाना

चुने गए विषयसूत्र को केन्द्र में रखते हुए एक व्यावहारिक योजना बनाएँ। तय करें कि पाठ्यक्रम के किन खास क्षेत्रों की योजना कौन बनाएगा और योजनाओं को पूरी तरह तैयार करने के लिए एक तारीख निर्धारित करें। पूरी अध्ययन इकाई को इकट्ठी तैयार करें और यह सुनिश्चित करें कि उसके खास लक्ष्य पूरे हो जाएँ। आपके पढ़ाना आरम्भ करने से पहले जो कार्य पूरे हो जाना चाहिए उनमें ये शामिल होंगे :

- (पाठ्यक्रम के क्षेत्रों के लिए) लक्ष्यों को निर्धारित करना
- मूल्यांकन की रणनीतियाँ तय करना
- योजना बनाने की जिम्मेदारियों को बाँटना
- योजना बनाने का काम पूरा करने की अन्तिम तिथि तय करना
- संसाधनों को इकट्ठा करना या उनके उपलब्ध होने के स्थान पता करना
- गतिविधियों की योजना बनाना : एक प्रारम्भिक गतिविधि, पूरी कक्षा के लिए गतिविधियाँ, छोटे समूहों के लिए गतिविधियाँ, व्यक्तिगत परियोजनाओं या दिए गए कार्यों के लिए गतिविधियाँ और सत्र के अन्त में एक आखिरी गतिविधि
- सहयोग प्राप्त करने के लिए समुदाय से सम्पर्क और अनुरोध करना
- साप्ताहिक योजना की रूपरेखाओं का उपयोग करते हुए पूरी अध्ययन इकाई को समाहित करना

3. योजना का क्रियान्वयन करना

विषयसूत्र को प्रस्तुत करना। आपको इसमें लचीला रुख अपनाना होगा, क्योंकि विद्यार्थियों के विचार और उनकी रुचियाँ आपको अप्रत्याशित दिशाओं में ले जा सकती हैं। जैसे–जैसे अध्ययन इकाई आगे बढ़ती है, तो प्रेरणा और सहयोग प्राप्त करने के लिए योजना बनाने वाले दल के साथ विचार–विमर्श करना जारी रखें और योजना को स्थिति के अनुसार संशोधित करें।

4. मूल्यांकन करना

विद्यार्थियों की प्रगति का चरण 2 में तय किए गए लक्ष्यों को प्रतिबिम्बित करने वाले उपकरणों से मूल्यांकन करें। जब आपने गतिविधियों को पूरा कर लिया हो, तो अध्ययन इकाई की सफलता का मूल्यांकन करें। उसकी जानकारी को अन्य कक्षाओं, माता–पिताओं तथा समुदाय के समूहों के साथ साझा करें। अपनी उपलब्धियों का उल्लास मनाएँ।

उदाहरण

विषयसूत्र : मिट्टी

बच्चों को मिट्टी के साथ खेलना बहुत अच्छा लगता है और इसकी सहज सुलभता इसे एक रोचक विषय बनाती है। इसे अध्ययन के एक विषयसूत्र की तरह लेने से उसमें अपने–आप विज्ञान, सामाजिक विज्ञान विषयों, गणित और भाषाओं का विस्तृत अध्ययन शामिल हो जाता है।

हमने शुरुआत मिट्टी के बरतन के प्रतीक से की। मिट्टी के बरतन बनाने की कला इस विषयसूत्र के अध्ययन का एक क्रियाशील परिणाम था। मिट्टी का बरतन पाँच मूल तत्वों का भी प्रतीक होता है : मिट्टी (पृथ्वी) को पानी के साथ मिलाकर चिकनी गूँथी हुई लोई बनाते हैं जिसे बर्तन का आकार देकर भट्टी (अग्नि) में पकाया जाता है और फिर उसमें हवा रहती है और वह आकाश में अवस्थित होता है।

इसके बाद हमने मिट्टी में पाए जाने वाले प्राणियों का अध्ययन किया। फिर हम पौधों और पशुओं के संसार में चले गए जिसमें मनुष्य भी शामिल है। यह पूरा चक्र परिस्थिति–विज्ञान, पर्यावरण तथा प्रदूषण तथा अन्त में फिर से मिट्टी को परस्पर जोड़ देता है।

बहु–विषयी कार्यपद्धति

विज्ञान : मिट्टी की विशेषताएँ (रंग, उसके स्पर्श की अनुभूति), उसमें निहित पोषक तत्व और उपजाऊ क्षमता, मिट्टी बनने की प्रक्रिया, विभिन्न प्रकार की मिट्टियों के निर्माण के कारक जैसे कि जलवायु, बारिश की मात्रा, पानी आदि।

गणित : विभिन्न आकार, क्षेत्रफल और परिमाप, पोषक तत्वों के अनुपात को समझने के लिए भिन्नों का ज्ञान, आयतन और भार जैसी चीजों का मापन।

सामाजिक विज्ञान : पारिस्थितिक तंत्र, वनस्पतियाँ और वन्य जीवन, जमीन के प्रमुख स्वरूप, पर्यावरण संरक्षण, वायुमण्डल, पृथ्वी की सतह की आकृति, पुरातत्व।

ललित कलाएँ : चित्रकला, बरतन बनाने की कला, प्रतिरूप गढ़ना, भित्तिचित्र, मूर्तिकला।

भाषा : कहानियाँ, साहित्य, लेख, कविताएँ, नारे, वाद–विवाद।

विषयसूत्र–आधारित सीखना बच्चों को उनके द्वारा जिए गए यथार्थ की बेहतर समझ प्रदान करने में और हासिल किए गए विज्ञान का उपयोग करने में सहायता करता है। शिक्षण पद्धति की यह अवधारणा शिक्षकों के संकल्प, समर्पण और संसाधनों की व्यवस्था करने की क्षमता की परीक्षा लेती है। इसके लिए संवेदनशील शिक्षकों की जरूरत होती है, जिन्हें लोकतांत्रिक ढंग से सीखने–सिखाने की इस प्रक्रिया के बारे में माता–पिताओं और समुदाय को भी शिक्षित करना पड़ता है।

प्रेमा रंगाचारी तमिलनाडु के अनैकट्टी में भुवन फाउण्डेशन के द्वारा आदिवासी और विपन्न बच्चों के लिए चलाए जा रहे स्कूल, विद्या वनम् की प्रमुख सलाहकार हैं। उनसे premarangachary@yahoo.co.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।

दैनिक जीवन में ऊर्जा की खोजबीन बनाम अन्तर्सम्बन्धों की खोज

राधा गोपालन

जब हम ऊर्जा तथा ऊर्जा के संरक्षण के बारे में विचार करते हैं तो ज्यादातर मुख्य रूप से बिजली के बारे में सोचते हैं। इसका मुख्य कारण वे तमाम उपकरण और घरेलू मशीनें हैं जो (चाहे हम उनका उपयोग सचेत होकर करें या अचेतन रूप से आदतन करें) हमें हमारे रोजमर्रा के आम दिन को सुविधापूर्वक बिताने में मदद करती हैं। हम ऊर्जा के बारे में तभी सजग होते है जब गर्मियों में बिजली की कटौती होती है या महीने के अन्त में हम बिजली के बिल को बढ़ा हुआ पाते हैं या जब हमारी खाना बनाने की गैस चुक जाती है! इसके अलावा, जिस तरह से हम ऊर्जा से अपने सम्बन्ध को देखते हैं उसमें भी एक तरह की नासमझी होती है। अपने निजी और सार्वजनिक जीवन में हम बहुत ही कम यह सवाल उठाते हैं कि – हम ऊर्जा के किन रूपों का उपयोग करते हैं? वह कहाँ से आती है? किस तरह अनेक शहरी घरों, आवासीय परिसरों, दफ्तरों और शॉपिंग मॉलों में सातों दिन 24 घण्टे रोशनी और पंखों के लिए (और कभी–कभी तो वातानुकूलन के लिए भी) बिजली उपलब्ध रहती है, तब भी जब राज्य और देश में बिजली का संकट चल रहा हो? हम खाने के लिए जो चीजें चुनते हैं, उनसे ऊर्जा की खपत का क्या सम्बन्ध होता है? हम काम पर या छुट्टी बिताने के लिए कैसे जाते हैं? आदि। परन्तु स्कूल में, किसी सामाजिक आयोजन में, सम्मेलनों तथा गोष्ठियों में हम अकसर पृथ्वी के गरम होने और जलवायु परिवर्तन से उपजे संकटों के बारे में, नवीनीकरण की जा सकने वाली (रिन्यूएबल – अक्षय) ऊर्जा प्रौद्योगिकी विधियों की जरूरत के बारे में, अलग–अलग कारों से जाने के बजाय सार्वजनिक यातायात साधनों का इस्तेमाल करने आदि के बारे में चर्चाएँ करते रहते हैं। अकसर हम ऐसी चर्चाएँ करते समय, ऊर्जा के उपयोग के व्यक्तिगत स्वरूपों और ऊर्जा के ज्यादा बड़े मुद्दों, जैसे कि उसका आसपास के पर्यावरण पर पड़ने वाला प्रभाव और इस ग्रह के सामने खड़े सबसे महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक संकट – जलवायु परिवर्तन – में उसके योगदान के बीच के सम्बन्धों को नहीं देख पाते। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि वह समस्या हमसे कहीं अलग स्थित है – एक ऐसी समस्या जो खराब सरकारी नीतियों, भ्रष्टाचार, 'अमीरों' के द्वारा अति उपभोग का परिणाम है और जो विकसित देशों द्वारा पैदा की गई है इत्यादि।

यह लेख कुछ ऐसे आसान तरीकों की खोजबीन करता है जिनके द्वारा ऊर्जा के बारे में इस नासमझी को दूर करने की कोशिश करने के लिए स्कूल के परिसर का उपयोग किया जा सकता है। यह लेख ग्रामीण परिवेश में स्थित एक आवासीय स्कूल – द ऋषि वैली एजुकेशन सेण्टर (आर.वी.ई.सी.) – में शहरी विद्यार्थियों के साथ मेरे अनुभवों पर आधारित है। यह एक 80 साल पुरानी संस्था है जो आन्ध्र प्रदेश के रायलसीमा क्षेत्र के अर्ध–बंजर पर्यावरण वाले इलाके में स्थित है। इसका सबसे नजदीकी शहर, मदनपल्ले, लगभग 20 किलोमीटर दूर है। हमारे पड़ोसी छोटे किसान और चरवाहे हैं जिनकी आजीविकाएँ बड़े कमजोर पर्यावरण वाले परिवेश पर निर्भर हैं जिसे बहुत थोड़ी बारिश नसीब होती है, जो वार्षिक रूप से 55 से 75 मिमी के बीच रहती है। बिजली की आपूर्ति अनिश्चित और बीच–बीच में होती है, जिसमें सबसे अधिक गर्मी वाले दौर में 6 से 8 घण्टे तक कोई बिजली नहीं रहती। इसलिए ऊर्जा और पानी यहाँ दुर्लभ और अत्यन्त मूल्यवान हैं।

स्कूल के परिवेश में ऊर्जा को समझना

अधिकांश स्कूलों की ही तरह, यहाँ भी ऊर्जा से सम्बन्धित विभिन्न सैद्धान्तिक अवधारणाओं की समझ निर्मित करने का काम सामान्यतया विज्ञान के पाठ्यक्रम के हिस्से के रूप में ही किया जाता है। ऊर्जा के उपयोगों और पर्यावरण से उसके सम्बन्ध को पर्यावरण अध्ययन के माध्यम से पढ़ाया जाता है। विज्ञान और पर्यावरण अध्ययन के पाठ्यक्रमों के अंग की तरह आवश्यक जिन परियोजनाओं पर विद्यार्थी काम करते हैं, उनमें ऊर्जा अकसर उनका पसन्दीदा विषय होता है।

ऋषि वैली ऐजुकेशन सेण्टर में विद्यार्थी विज्ञान, पर्यावरण अध्ययन और कक्षा 11 में सामान्य अध्ययन के पाठ्यक्रम के हिस्से के रूप में, ऊर्जा के विभिन्न पहलुओं की खोजबीन सम्बन्धित सामग्री को पढ़ने, परियोजनाओं पर काम करने और हाथों से करके देखने वाली गतिविधियों के द्वारा करते हैं। परियोजनाओं के माध्यम से नवीकरणीय ऊर्जा प्रौद्योगिकी विधियों का अन्वेषण करना विद्यार्थियों तथा शिक्षकों, दोनों के ही द्वारा विशेष रूप से पसन्द किया जाता है।

नवीकरणीय ऊर्जा की अवधारणाओं को और वर्तमान तथा भविष्य में पर्यावरणीय तथा आर्थिक सन्दर्भों में उनके महत्त्व को समझना बेहद जरूरी है। परन्तु किसी दिए गए स्थान पर सर्वाधिक उपयुक्त ऊर्जा प्रौद्योगिकी विधि या विधियों को पर्याप्त जानकारी के आधार पर चुनने के लिए खपत होने वाली ऊर्जा के परिमाण और उसकी गुणवत्ता को तथा ऊर्जा उपभोग के विभिन्न तरीकों को समझना महत्त्वपूर्ण होता है। इस जानकारी को उपलब्ध करवाने वाला एक सरल उपकरण ऊर्जा लेखा (एनर्जी ऑडिट)[1] है। ऊर्जा की खपत के स्वरूपों को समझने के लिए इस लेखा से प्राप्त होने वाली जानकारी को चित्रात्मक रूप से पारिस्थितिक–मानचित्रों (ईको–मैप्स)[2] के माध्यम से निरूपित किया जा सकता है। आर.वी.ई.सी. में पर्यावरण अध्ययन के विद्यार्थी अपनी परियोजनाओं के लिए इस उपकरण का व्यापक रूप से उपयोग करते हैं। कुछ विद्यार्थियों ने पास–पड़ोस के इलाके में (जिसमें छोटे किसानों और मवेशी चराने वालों के घर हैं), सभी घरों के सर्वेक्षणों और लोगों से बातचीत के द्वारा, ऊर्जा के उपयोग के स्वरूपों की खोजबीन भी की है। इस जानकारी की स्कूल के परिसर में ऊर्जा के उपयोग के स्वरूपों से तुलना करने पर ग्रामीण और शहरी ऊर्जा उपभोग के ढाँचों में अन्तर स्पष्ट दिखाई देते हैं।

लेखा और पारिस्थितिक–मानचित्र, दोनों ही सरल उपकरण हैं जो बहु–उपयोगी हैं और कहीं भी किसी के भी द्वारा इस्तेमाल किए जा सकते हैं। इसके लिए सिर्फ एक पेन्सिल, कागज और योजना बनाने की जरूरत होती है! जब भी इन गतिविधियों को करके देखा गया है, तो विद्यार्थी तथा शिक्षक दोनों ही यह जानकर चकित हुए हैं कि हमारे जीवन में ऊर्जा किस प्रकार हर–तरफ व्याप्त है और फिर भी हम उसके बारे में कितना कम विचार करते हैं।

यह लेख इस पर ध्यान केन्द्रित करेगा कि एक उपकरण की तरह ऊर्जा लेखा का उपयोग किस प्रकार न केवल ऊर्जा की खपत को समझने और ऊर्जा के संरक्षण के उपाय विकसित करने के लिए, बल्कि ऊर्जा के बारे में विचार–विमर्श को प्रोत्साहित करने के लिए भी किया जा सकता है।

ऊर्जा लेखा – कुछ अनुभव

ऊर्जा लेखा की प्रक्रिया का क्रियान्वयन करने में पहला कदम उसके पैमाने या दायरे को तय करना होता है – क्या वह एक मकान या इमारत होगी या उसे किसी परिसर या संस्था के लिए किया जाएगा? इसे करने के लिए हमें ऊर्जा के उपयोग के विभिन्न बिन्दुओं, उपयोग की गई ऊर्जा के प्रकार, उपयोग की आवृत्ति आदि की जानकारी इकट्ठी करने की जरूरत होती है। फिर उपयोग की गई ऊर्जा की मात्रा की गणना करना होती है और ऊर्जा के उपयोग की कार्यक्षमता ज्ञात करना होती है। इस तरह का लेखा किस प्रकार किया जा सकता है, इसके बारे में कई बहुत अच्छे संसाधन उपलब्ध हैं।[3] परन्तु महत्त्वपूर्ण बात पहले स्पष्ट रूप से ऊर्जा लेखा करने के प्रयोजन को व्यक्त करना है – क्या वह सिर्फ यह जानने के लिए करना है कि कितनी ऊर्जा इस्तेमाल की जा रही है या ऊर्जा कहाँ और किन रूपों में उपयोग की जा रही है? या कि हमारा उद्देश्य ऊर्जा की खपत को कम करने के लिए या ऊर्जा के संरक्षण के किसी कार्यक्रम को लागू करने के लिए उस लेखा का एक साधन की तरह उपयोग करना है? उदाहरण के लिए विद्यार्थियों ने अपने घरों के या जिन इमारतों में वे रहते हैं उनके ऊर्जा लेखा यह समझने के लिए तैयार किए हैं कि उनमें ऊर्जा की कितनी मात्रा का उपयोग होता है। आर.वी.ई.सी.परिसर में, विद्यार्थियों का एक समूह और कुछ अध्यापक परिसर में ऊर्जा संरक्षण को उपायों को बढ़ावा देना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने ऊर्जा के उपयोग की मात्रात्मक जानकारी इकट्ठी करने के लिए एक उपकरण की तरह ऊर्जा लेखा का उपयोग किया।

---

[1]ऊर्जा लेखा एक ऐसा उपकरण है जिसका (i) ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों, और उपयोग की जाने वाली ऊर्जा की मात्राओं तथा ऊर्जा के उपभोग और उसके मापन के लिए इस्तेमाल होने वाले तरीकों को व्यवस्थित रूप से दर्ज करने के लिए, तथा (ii) ऊर्जा के उपयोग का समय–समय पर पुनरीक्षण तथा मूल्यांकन करने के लिए उपयोग किया जाता है।

[2]ऊर्जा के लिए पारिस्थितिक–मानचित्र किसी दिए गए स्थान पर ऊर्जा के उपयोग को चित्रात्मक रूप से निरूपित करता है। इसे एक मकान के लिए या एक समुदाय के लिए बनाया जा सकता है।

[3]द ग्रीन स्कूल्स प्रोग्राम. ए मैनुअल टु असेस द ऐनवायरनमेंटल परफार्मेंस ऑफ द कम्युनिटी। सेंटर फॉर साइंस ऐंड ऐनवायरनमेंट, नई दिल्ली, 2011। यह ऊर्जा, पानी और कचरे का लेखा तैयार करने के लिए एक चरणबद्ध मार्गदर्शक पुस्तिका है।

इसके लिए मोटे तौर पर जो पद्धति अपनाई गई उसकी रूपरेखा चित्र 1 में दर्शाई गई है। हालाँकि यह एक आदर्श बात होगी कि वार्षिक रूप से ऊर्जा लेखाओं को फिर से किया जाए, परन्तु ऐसे लेखाओं को पुन: करने की आवृत्ति इस पर निर्भर करती है कि पिछले लेखा में निर्धारित किए गए ऊर्जा संरक्षण के उपायों को लागू करने में कितना समय लगता है। फिर से किया जाने वाला लेखा सामान्यतया इसका आकलन करने के लिए किया जाता है कि ऊर्जा संरक्षण के उपाय किस हद तक ऊर्जा की खपत को कम करने में कामयाब हुए हैं।

चित्र 1 : ऊर्जा लेखा संचालित करने की चरणबद्ध कार्यपद्धति

वह पैमाना/ स्तर तय करें जिस पर ऊर्जा लेखा संचालित किया जाना है (इमारत या परिसर/ संस्था)।

जिस इमारत या परिसर का लेखा किया जाना है उसका नक्शा प्राप्त करें।

उस इमारत या परिसर में चलकर उन सभी बिन्दुओं की पहचान करें और उन्हें नक्शे पर चिन्हित करें जिनसे होकर ऊर्जा का उपयोग होता है।

हर बिन्दु पर उपयोग की जाने वाली ऊर्जा का प्रकार, उपयोग की आवृत्ति और उपयोग के क्षेत्र को दर्शाते हुए ऊर्जा की मात्रा की जानकारियों को दर्ज करें।

सभी जानकारियों को इकट्ठी करें, प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण करके यह पता लगाएँ कि ऊर्जा की अधिक तथा कम खपत करने वाले बिन्दु कौन–से हैं।

ऊर्जा संरक्षण के थोड़े समय में अपनाए जा सकने वाले तात्कालिक उपायों और लम्बी अवधि में अपनाए जा सकने वाले उपायों का पता लगाएँ।

ऐसे ऊर्जा लेखा से प्राप्त होने वाली जानकारियों को अन्य लोगों के साथ साझा करने के लिए उस स्कूल या घर के नक्शे का उपयोग किया जा सकता है और उसमें ज्यादा और कम ऊर्जा खपत वाले क्षेत्रों को अलग–अलग रंगों के द्वारा चिन्हित करके अधिक प्रभावशाली ढंग से दर्शाया जा सकता है। उदाहरण के लिए अधिक ऊर्जा की खपत वाले क्षेत्रों को दर्शाने के लिए लाल रंग का और कम ऊर्जा की खपत वाले या अधिक कार्यक्षमता के साथ ऊर्जा का उपयोग करने वाले बिन्दुओं (जैसे कि पुराने तरह के बल्बों के स्थान पर लगाई गईं सी.एफ.एल. बत्तियाँ) को दर्शाने के लिए हरे रंग का उपयोग किया जा सकता है।

विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के द्वारा किए गए ऊर्जा लेखा ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, दोनों प्रकार की शिक्षाएँ प्रदान कीं। प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हुई शिक्षाओं में निम्न बातें शामिल थीं

- ऊर्जा की खपत का एकदम सही मापन करने का महत्त्व समझ में आया। लेखा की बिलकुल शुरुआत में ही यह स्पष्ट हो गया कि कुछ बिजली के मीटर सही नहीं थे, इसलिए उनसे प्राप्त जानकारी विश्वसनीय नहीं थी। इसलिए प्राथमिकता के तौर पर कार्यवाही किए जाने वाले कामों में से निकलकर आने वाला एक था विभिन्न स्थानों पर अच्छी गुणवत्ता के मीटरों की आवश्यकता – जिसे हम नाप नहीं सकते उसे हम संरक्षित नहीं कर सकते।
- इस बात के प्रति जागरूकता आई कि ऊर्जा को उसके विभिन्न रूपों में इस्तेमाल किया जाता है, उदाहरण के लिए बिजली का उपयोग घर, कक्षाओं और सड़कों पर रोशनी के लिए, कम्प्यूटरों को चलाने के लिए, खाना बनाने के लिए, कपड़े धोने के लिए, घरों और परिसर में नित्य उपयोग किए जाने वाले भूजल को टंकियों में पम्पों के द्वारा चढ़ाने आदि के लिए किया जाता है। टंकियों में आने वाली एल.पी.जी. का उपयोग खाना बनाने के लिए, जलाऊ लकड़ी का पानी गरम करने के लिए, सौर ऊर्जा का उपयोग पानी गरम करने के लिए और परिसर में कुछ स्थानों पर रोशनी के लिए तथा डीजल का उपयोग लोगों, कृषि उत्पादों तथा स्कूल के लिए आवश्यक अन्य वस्तुओं और सेवाओं के परिवहन के लिए किया जाता है।
- यह पता चला कि विद्युत ग्रिड से होने वाली अनियमित आपूर्ति के चलते, परिसर में बिना व्यवधान के 24 घण्टे बिजली की आपूर्ति को सुनिश्चित करने के लिए डीजल से चलने वाले तीन जेनरेटरों से काम लेना पड़ता है। इससे यह समझने में मदद मिली कि जेनरेटरों के लिए कितनी

बार और कितनी मात्रा में डीजल की खपत होती है।

- यह भी ज्ञात हुआ कि परिसर में काम के घण्टों के दौरान कम्प्यूटरों को कार्यरत रखने के लिए 20 से भी अधिक इनवर्टर काम करते हैं, जिसका मतलब है कि किसी को उनका रखरखाव करना पड़ता है और उनके काम करने का जीवन समाप्त होने पर उन्हें बदलना पड़ता है। यह भी स्पष्ट हुआ कि उनसे हानिकारक कचरा पैदा होने की सम्भावना रहती है क्योंकि इनवर्टर में अम्लीय बैटरियाँ होती हैं।
- यह ज्ञात हुआ कि दफ्तर के प्रशासक स्कूल से सबसे नजदीकी शहर तक परिवहन की अधिक से अधिक कारगर व्यवस्था करते हैं, ताकि ईंधन की बचत हो सके।
- यह समझ में आया कि ऊर्जा के संरक्षण को सम्भव बनाने के लिए उसके एक स्थान से दूसरे स्थान तक संचरण में तथा उसके उपयोग में कार्यक्षमता को बढ़ाना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। ऊर्जा का कार्यकुशल ढंग से उपयोग करना सुनिश्चित करने के लिए, विद्युतीय अधोसंरचना (जिसमें संचरण के लिए बिछाया गया तारों का जाल शामिल रहता है) का नियमित अन्तरालों पर पुनरीक्षण किया जाना जरूरी है, जिससे संचरण में होने वाली हानि को कम से कम किया जा सके। बिजली से चलने वाले सभी उपकरणों जैसे कि कपड़े धोने की मशीनों, रसोईघर की बड़ी भट्टियों, रोशनी के लिए इस्तेमाल की जाने वाली बत्तियों आदि की कार्यकुशलता को नियमित रूप से एक रोकथाम वाले रखरखाव कार्यक्रम के तहत जाँचा जाना भी जरूरी है।

ऊर्जा लेखा से प्राप्त हुई कुछ जानकारियों के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष रूप से कार्यवाही की गई। उदाहरण के लिए परिसर के अधिक बिजली की खपत वाले बिन्दुओं पर विशेष रूप से ध्यान देते हुए वहाँ नए बिजली के मीटर लगाए गए, ताकि खपत के बिलकुल सही आँकड़े प्राप्त किए जा सकें, जिनके आधार पर फिर ऊर्जा की खपत को कम करने के लिए विस्तृत अध्ययन किए जा सकें। इसके परिणामस्वरूप रोकथाम वाले रखरखाव की दृष्टि से सार्वजनिक कार्यों में उपयोग किए जाने वाले सभी उपकरणों जैसे कि सौर ऊर्जा के पानी गरम करने के उपकरण, कपड़े धोने की मशीनें आदि के निरीक्षण के लिए एक जाँचसूची भी बनाई गई। विद्यार्थियों ने इस जाँचसूची का इस्तेमाल सत्र में एक बार सभी उपकरणों की जाँच करने के लिए किया और अपनी रिपोर्ट परिसर में रखरखाव करने वाले कार्यदल को दी, ताकि जहाँ आवश्यक हो वहाँ सुधार किया जा सके।

इस लेखा का एक अन्य परिणाम यह निकला कि पूरी इमारतों के स्तर पर ऊर्जा के उपयोग (उसकी मात्रा तथा आवृत्ति, दोनों की दृष्टि से) की जानकारी पहली बार उपलब्ध कराई जा सकी। यह परिसर के स्थल इंजीनियर तथा रखरखाव कर्मचारियों के लिए ऊर्जा के सर्वाधिक भार वाले घण्टों की पहचान करने में उपयोगी साबित हुई और फिर सर्वाधिक ऊर्जा भारों की उस जानकारी का उपयोग परिसर में ऊर्जा की आवश्यकता का अनुमान लगाने और उसके वितरण की व्यवस्था के लिए तब किया गया जब आर.वी.ई.सी. ने एक सौर ऊर्जा आधारित विद्युत उत्पादन प्लांट का निर्माण करने का फैसला किया। इस तरह ऊर्जा लेखा के उपयोग बहुआयामी होते हैं।

ऊर्जा लेखा से आगे जाना

लेखा से उपजी हुई जानकारी का अनेक प्रकार से विस्तार किया जा सकता है – जिसकी शुरुआत व्यक्ति से करके वृहद समुदाय तक जा सकते हैं। व्यक्तिगत ऊर्जा खपत के तरीके स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं – हमें अचानक एहसास होता है कि हम दैनिक जीवन में कितने उपकरणों का इस्तेमाल करते हैं। वे बैटरी से संचालित बिजली के टूथब्रशों से लेकर, फलों और सब्जियों के रस निकालने, सूप या चटनी बनाने के लिए इस्तेमाल होने वाले ब्लेंडर तथा नलों तक पानी लाने के लिए लगने वाली मोटरों और पम्पों और कम्प्यूटरों को चलाने के लिए इनवर्टरों आदि तक अनेक उपकरण हो सकते हैं। इस जानकारी का उपयोग एक निजी ऊर्जा संरक्षण योजना निर्मित करने के लिए किया जा सकता है।

नगरों और शहरों में दफ्तरों और घरों को ठण्डा करने के लिए ऊर्जा का प्रयोग एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। घरों और दफ्तरों को गरम और ठण्डा करने से सम्बन्धित जानकारी का उपयोग शहरी नियोजन और प्रासंगिक वास्तुकला के मुद्दों की चर्चा करने में किया जा सकता है। उदाहरण के लिए खराब शहरी नियोजन, पर्याप्त हरित आवरण का अभाव के साथ काँच, स्टील और कंक्रीट से इमारतों का निर्माण किए जाने के परिणामस्वरूप हमारे शहर और नगर 'गरम द्वीप' बन गए हैं। फिर उन्हें ठण्डा रखने के लिए हमें वातानुकूलन की जरूरत पड़ती है, जिसके कारण ऊर्जा की माँग बहुत बढ़ जाती है। तो विद्यार्थियों से पूछा जा सकता है कि भारत जैसे

देश में कंक्रीट–काँच से बनी इमारतें कैसे उपयुक्त हो सकती हैं। इससे फिर वैकल्पिक वास्तुकला रूपों की खोजबीन करने की छोटी परियोजनाएँ निकल सकती हैं, जैसे कि देशज वास्तुकला और स्थानीय निर्माण सामग्री का इस्तेमाल करना जो ऊर्जा की खपत की दृष्टि से अधिक सक्षम होती हैं।

एक अन्य रोचक गतिविधि, जिसे विद्यार्थी ऊर्जा लेखा से आगे जाने के लिए कर सकते हैं, पीछे की ओर खोजते हुए ऊर्जा के स्रोत का पता लगाना है। बिजली कहाँ से आ रही है? क्या वह मूल रूप से जल–विद्युत, ताप–विद्युत या अन्य ऊर्जा के अन्य किसी रूप जैसे कि सौर, पवन आदि से उत्पादित विद्युत है? उत्पादन का केन्द्र कितनी दूर है? इन मुद्दों में से कुछ को समझने के लिए विद्युत विभाग के कर्मचारियों से साक्षात्कार लिया जा सकता है। वाहनों के लिए इस्तेमाल होने वाला ईंधन कहाँ से आ रहा है? ईंधन प्राप्त करने का सबसे नजदीकी स्थान कहाँ है? ईंधन की लागत क्या है? ऊर्जा का कितना प्रतिशत राज्य और देश के स्तर पर उपलब्ध स्रोतों से आता है? स्थानीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर ऊर्जा की स्थिति को समझने के लिए ऐसे कई अन्य सवालों की छानबीन की जा सकती है।

यह गतिविधि ऊर्जा संरक्षण के उपायों पर चर्चाएँ करने के लिए आधार हो सकती है – जैसे कि उपकरणों की संख्या कम करना, (जहाँ जरूरत हो) बेहतर उपकरणों का इस्तेमाल करके ऊर्जा की कार्यक्षमता को बढ़ाना, विद्युत संचरण में हानि को कम करने के लिए तारों का बेहतर जाल बिछाना, परिवहन में सार्वजनिक यातायात का उपयोग करके ईंधन की समुचित बचत करना आदि।

पीने और अन्य उपयोगों के लिए पानी खींचने के लिए तथा खाद्य वस्तुओं के उत्पादन में सिंचाई के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है, इस तथ्य से हमारे चारों ओर की सभी चीजों के पारस्परिक अन्तर्सम्बन्धों के बारे में चर्चाएँ उठ सकती हैं – इससे इस बात की पुष्टि होती है कि जल संरक्षण का मतलब ऊर्जा का संरक्षण भी होता है। खाद्य पदार्थों की बर्बादी कम करने का मतलब पानी और ऊर्जा दोनों की बचत करना होता है। खाद्य पदार्थों के परिवहन में होने वाली ईंधन की खपत को समझने से खाद्य पदार्थों के उत्पादन में निहित ऊर्जा में, पेट्रोरसायनों पर आधारित उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग करने के कारण, उनके निर्माण में व्यय की गई ऊर्जा के भी शामिल होने के बारे में चर्चाओं की ओर बढ़ा जा सकता है। इन रसायनों का उत्पादन करने के लिए जीवाश्म ईंधनों की जरूरत होती है और इसलिए हमें संसाधनों का संरक्षण करने वाली दीर्घकालिक कृषि प्रणालियों की आवश्यकता है, इस विचार पर भी चर्चा की जा सकती है।

इस प्रकार, लेखा और मापन की तरह प्रारम्भ होने वाली इस गतिविधि का विस्तार यह समझने और दर्शाने के लिए किया जा सकता है कि किस प्रकार हमारे कृत्यों का सम्बन्ध अपरिहार्य रूप से हमारे संसाधनों की स्थिति और उनके भविष्य से जुड़ा हुआ है और किस तरह ऊर्जा इन सब बातों के केन्द्र में है। इस सरल लेखा उपकरण की बहुआयामी उपयोगिता सीखने वाले (चाहे वह शिक्षक हो या विद्यार्थी) की कल्पना शक्ति पर निर्भर करती है।

तालिका 1 : आरवीईसी ऊर्जा लेखा में उपयोग किए गए नमूना प्रपत्र

क. बिजली से चलने वाले घरेलू उपकरणों का जानकारी पत्रक

पानी गरम करना — आप अपने घर में पानी कैसे गरम करते हैं? उस उपकरण के काम करने की अवधि कितनी होती है, और उसे कितनी बार इस्तेमाल किया जाता है?

उपकरण	क्षमता	काम करने की अवधि (मिनिट में)				उपयोग की आवृत्ति		
गीजर		15	30	60	अन्य कोई	दिन में एक बार	दिन में दो बार	अन्य कोई
गैस–आधारित हीटर								
पानी गर्म करने वाली इमर्शन रॉड								
लकड़ी जलाने वाला बॉयलर								
एल.पी.जी.चूल्हा								
अन्य कोई साधन								

ख. रोशनी और पंखे

सुविधाएँ

उपकरण	मात्रा (संख्या)	मॉडल	उपयोग की आवृत्ति*	काम करने की अवधि**
ट्यूबलाइटें				
सी.एफ.एल.				
एल.ई.डी. बत्तियाँ				
पंखे				
कूलर				

*वह समय बताएँ जब वे उपकरण चालू रखे जाते हैं, उदाहरण के लिए रोशनी के बल्ब शाम के 7 बजे से रात के 10 बजे तक आदि।

**मौसम के अनुसार उपयोग का चलन, उदाहरण के लिए गरमियों में कूलर पंखे आदि।

इसी प्रकार के प्रपत्र अन्य गतिविधियों के लिए भी तैयार किए गए थे, जैसे कि कपड़े धोना, खाना बनाना, खेती आदि।

राधा गोपालन एक पर्यावरण वैज्ञानिक हैं जिन्होंने पर्यावरण विज्ञान एवं इंजीनियरिंग में आई.आई.टी. मुम्बई से डाक्ट्रेट की उपाधि हासिल की है। पर्यावरण परामर्शदाता के रूप में 15 वर्ष काम करने के बाद राधा ऋषि वैली आ गईं, जहाँ वे ऋषि वैली एजुकेशन सेण्टर में हाई स्कूल के विद्यार्थियों को पर्यावरण विज्ञान पढ़ाती हैं। राधा सेण्टर के आसपास के छोटे किसानों और मवेशी चराने वालों के साथ उनकी जीविकाओं को अधिक दीर्घकालिक बनाने के लिए काम करती हैं। खाद्य सुरक्षा और शिक्षा के क्षेत्रों में राधा की लम्बे समय से निरन्तर रुचि बनी हुई है, जिसको आधार बनाकर वे उन छोटे और सीमान्त किसानों के साथ काम करती हैं जिनसे वह ग्रामीण समुदाय बना है जिसके बीच में सेण्टर स्थित है। राधा को ऋषि वैली एजुकेशन सेण्टर में काम करते हुए लगभग 6 वर्ष हो चुके हैं। अब वे क्षेत्र के अपने अनुभव और कार्य के आधार पर एक आजीविका कार्यक्रम विकसित करने में संलग्न हैं। उनसे radha.gopalan@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

मशरूम उत्पादन से शिक्षा और उसका अन्य वियों से सम्बन्ध

शहाबुद्दीन अन्सारी

"आज की दुनिया में सफल होने के लिए कौशलों की जरूरत है।"

– सायरस वकील, चेयरमैन, एग्जामिनेशन रिफॉर्म सिस्टम (परीक्षा सुधार व्यवस्था)

दिनेशपुर, ऊधम सिंह नगर जिले की एक छोटी–सी न्याय पंचायत है। यहाँ बंगाली लोगों की जनसंख्या बहुत अधिक है। यहाँ 2012 में अज़ीम प्रेमजी स्कूल की स्थापना हुई, जिसमें आर.टी.ई. (शिक्षा का अधिकार) लागू है।

जब इस स्कूल की शुरुआत हुई, तो शिक्षक इस पूरे इलाके में घूमे और उन्होंने लोगों को स्कूल के बारे में जानकारी दी। अपने इन दौरों के दौरान, हमने पाया कि यहाँ की अधिकांश जनसंख्या श्रमिक हैं, जिनमें से कुछ सिडकुल (उत्तराखण्ड राज्य बुनियादी ढाँचा तथा औद्योगिक विकास निगम) में कार्यरत हैं, महिलाएँ और बच्चे अपने–अपने घरों में बीड़ियाँ बनाते हैं और अन्य लोग खेतों में काम करते हैं या सब्जियाँ बेचते हैं। हमारे स्कूली बच्चे भी कहीं न कहीं काम करते थे, जैसे मोटर गैराज में और गोश्त की दुकानों में। कुछ बच्चे सब्जियाँ उगाते थे और शनिवार को लगने वाले साप्ताहिक हाट में अपने माता–पिता का सहयोग करते थे। इन बच्चों के माता–पिता कुछ खास पढ़े–लिखे नहीं हैं।

मैं पिछले 8–10 सालों से अपनी खाद्य सामग्री निर्माण करने का कारखाना चला रहा हूँ और मशरूम की खेती कर रहा हूँ। एक बार स्कूल के हेडमास्टर के साथ बातचीत में मैंने उन्हें अपने बारे में थोड़ा–बहुत बताया। हेडमास्टर ने मुझे सुझाव दिया कि मैं किसी ऐसी गतिविधि का संचालन करूँ जो बच्चों को उनकी पढ़ाई के साथ–साथ कुछ नया सीखने में मदद करे। उन्होंने नई तालीम और शिक्षा में काम को शामिल करने के बारे में बात की। फिर मुझे मशरूम उगाने की परियोजना का विचार मन में आया। मैंने अपने साथियों को इसके बारे में बताया। सभी ने मुझे अपने सुझाव दिए। हमने इस परियोजना को लेकर विस्तार से चर्चाएँ कीं। जब हमने बच्चों को इस परियोजना के बारे में बताया तो वे इस पर काम करने के लिए बड़े उत्साह से सामने आए।

गाँधी जी और नई तालीम

गाँधी जी ने नई तालीम की बुनियाद रखी थी। उनका भरोसा था कि हमारे देश में चूँकि अधिकांश लोग गाँवों में रहते हैं, इसलिए बच्चों की शिक्षा ऐसी होना चाहिए कि वे कक्षा में जो कुछ भी सीखें उसका वे अपने जीवन में व्यावहारिक उपयोग कर सकें। उन्होंने हस्तकला पर केन्द्रित शिक्षा की वकालत की थी, पर ऐसा कहने से उनका आशय यह नहीं था कि शिक्षा सिर्फ नौकरी हासिल करने के प्रशिक्षण के रूप में होना चाहिए। वे काम के माध्यम से विद्यार्थियों को सभी तरह की जानकारियाँ सिखाना चाहते थे। उनकी योजना थी कि इस तरह से सिखाने के तरीके में इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान, भाषा, कला और संगीत को भी शामिल किया जाए। उनकी राय थी कि शिक्षा केवल किताबी ज्ञान नहीं होना चाहिए, बल्कि उसमें रोजमर्रा के जीवन से जुड़ी गतिविधियाँ भी शामिल होना चाहिए। काम और अन्य गतिविधियों के माध्यम से शिक्षा तक पहुँचा जाना चाहिए।

वे यह भी महसूस करते थे कि विद्यार्थियों को जीवन के अभिन्न अंग के रूप में सतत कड़ी मेहनत और श्रम करते रहना चाहिए। आँखों से सिर्फ अवलोकन और परीक्षण किया जाना चाहिए। जब हम अपने हाथों से कड़ी मेहनत करते हैं और जब हम ऐसी प्रायोगिक गतिविधियों में शामिल होते हैं जो समाज के लिए लाभकारी हों, तभी व्यक्ति और विद्यार्थी के मस्तिष्क और हृदय का सच्चा विकास होगा।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में बच्चों को, खुद अपने हाथों से काम करने के तरीके पर आधारित शिक्षा देने की बात कही गई है। ऐसी शिक्षा का उद्देश्य यही है कि हर नागरिक देश की अर्थव्यवस्था में योगदान कर सकता है।

राष्ट्रीय फोकस समूह का विश्वास है कि :

- हस्तकला को एक अलग विषय के रूप में नहीं पढ़ाया जाना चाहिए, बल्कि इतिहास, सामाजिक और पर्यावरण विज्ञान, भूगोल, कला और अर्थशास्त्र के साथ जोड़कर पढ़ाया जाना चाहिए, क्योंकि यह भारत की संस्कृति, सुन्दरता और अर्थव्यवस्था का अभिन्न हिस्सा है।
- भले ही बच्चा कोई भी विषय या व्यवसाय चुने, उसे हस्तकला के माध्यम से जो अनुभव हासिल होगा वह उसे सीखने की प्रक्रिया में मदद करेगा। अपने हाथों से काम करने से, वस्तुओं पर काम करने से और विशेष तकनीकों के साथ काम करने पर हमें प्रक्रियाओं को बेहतर ढंग से समझने में मदद मिलेगी।
- ग्रामीण इलाकों में, हस्तकला का पाठ्यक्रम अलग होना चाहिए ताकि इन जगहों पर व्यापार, तकनीकी शिक्षा, भाषा कौशल, लेखा–कर्म, विपणन और सामानों की पैकिंग जैसे पहले से चल रहे अध्ययन के कामों को और विकसित किया जा सके। शहरी स्कूलों में, हस्तकला को वैकल्पिक अनुभव और रचनात्मक निर्माण के रूप में शामिल किया जा सकता है।

लेकिन हमने मशरूम की खेती क्यों की?

कक्षा 6 में 29 में से 25 बच्चों के माता–पिता खेतों में या कहीं और काम करने वाले दिहाड़ी मजदूर हैं। बाकी बचे चार माता–पिता में से एक डॉक्टर हैं, एक शिक्षक हैं, दो किसान हैं और एक दुकानदार है।

दिनेशपुर के बच्चों के साथ ये स्थितियाँ हैं :

- उनके पास एक ऐसा शिक्षक है जिसके पास मशरूम की खेती का प्रशिक्षण और अनुभव है।
- उनके पास खेती के लिए बहुत अधिक जगह नहीं है।
- घासफूस और गाय के गोबर की खाद आसानी से उपलब्ध है।
- 17–18 डिग्री सेल्सियस का तापमान, जो मशरूम की खेती के लिए जरूरी है।
- अक्तूबर से मार्च तक के महीने मशरूम की खेती के लिए सही हैं क्योंकि इस समय परिस्थितियाँ मशरूम के लिए उपयुक्त होती हैं।

मशरूम की खेती के लाभ

- बहुत बड़ी जगह की जरूरत नहीं होती। इसका काम छोटे से कमरे में भी किया जा सकता है।
- इसमें लगाने वाली अधिकांश सामग्री की जरूरत खेती से मिलने वाले अपशिष्ट उत्पादों से पूरी हो जाती है। इनका आसानी से दोबारा इस्तेमाल किया जा सकता है।
- इसकी खेती में पूरा परिवार आसानी से शामिल हो सकता है।
- यह काम न्यूनतम 500 रुपए से शुरू किया जा सकता है।
- बाद में मशरूम को बाजार में बेचा जा सकता है और उससे प्राप्त पैसे से जरूरत के अन्य सामान खरीदे जा सकते हैं।
- बच्चों को इससे पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन मिल सकता है – मशरूम को रोज खाया जा सकता है।
- इसके लिए उपयोग की गई कम्पोस्ट खाद को खेतों और बगीचों में उर्वरक के रूप में दोबारा इस्तेमाल किया जा सकता है।
- इसकी खेती में सारा दिन मेहनत करने की जरूरत नहीं होती।

मशरूम की खेती के बारे में कुछ बातें

मशरूम की खेती शुरू करने से पहले हमने बच्चों के साथ एक सामान्य चर्चा की और उन्हें बताया कि हम मशरूम की खेती शुरू करना चाहते हैं। हमने उनसे इस तरह की बातें पूछीं, क्या तुम लोगों ने मशरूम को देखा है? उन्हें बंगाली में क्या कहते हैं? बच्चों ने बताया कि उन्होंने मशरूम को देखा तो था, पर कभी खाया नहीं था। उन्होंने पूछा कि क्या यह बाजारों में उपलब्ध होता है? उन्होंने और भी कई सवाल पूछे, उदाहरण के लिए :

- मशरूम कहाँ उगते हैं?
- वे कैसे उगते हैं?
- वे मिट्टी के बगैर कैसे उग जाते हैं?
- क्या मशरूम पशु होते हैं?
- भूसे में क्या मिलाया जाता है?
- मशरूम हमेशा सफेद क्यों होते हैं?

मशरूम की खेती और विभिन्न विषयों से उसका सम्बन्ध

1. गणित से सम्बन्ध
   - मुनाफा और नुकसान
   - आमदनी और खर्चे
   - आँकड़ों का विश्लेषण
   - मूल्य में परिवर्तन (बाजार की विभिन्न दरों के अनुसार रुपयों में बदलना)
   - क्षेत्रफल
   - इकाई–आधारित गणना (यदि 200 ग्राम की कीमत 20 रुपए है, तो 1000 ग्राम की कीमत कितनी होगी?)
   - औसत मानों की गणना
   - गणितीय क्रियाएँ (जोड़, घटाना, गुणन, भाग)

2. विज्ञान से सम्बन्ध
   - नवीनीकरण किए जा सकने वाले और नवीनीकरण न किए जा सकने वाले संसाधन
   - परजीवी (मरे हुए या जीवित)
   - पौधे और पशु
   - क्लोरोफिल
   - सर्वेक्षण
   - जिप्सम (खड़िया मिट्टी) का पीएच मूल्य, फोरमैलिन को क्यों डाला जाता है
   - खमीर उठना
   - पैनिसिलिन इत्यादि की खोज
   - तापमान का मापन
   - ऊष्मा
   - विभिन्न प्रकार के उपकरण
   - मापन की इकाई
   - डिग्री सैंटीग्रेड और डिग्री फैरनहाइट का एक–दूसरे में रूपान्तरण

3. भूगोल से सम्बन्ध
   - मौसम और जलवायु
   - तापमान
   - जिप्सम कहाँ से प्राप्त की जाती है?

4. इतिहास से सम्बन्ध
   - मशरूम की उत्पत्ति कैसे हुई होगी?
   - मशरूम का इतिहास
   - भोजन और पानी

5. भाषा से सम्बन्ध
   - सुनना
   - बोलना
   - लिखना
   - पढ़ना
   - सवाल करना

6. भोजन और पोषण

7. मार्केटिंग (विपणन) और पैकेजिंग (डिब्बाबन्दी)

8. कैरियर और रोजगार : कोई भी व्यक्ति (पुरुष या स्त्री) इस काम को कर सकता है या तो अकेले या फिर किसी समूह में। मशरूम की खेती में कोई बहुत अधिक राशि के निवेश की भी जरूरत नहीं पड़ती। इसे बहुत कम खर्च के साथ शुरू किया जा सकता है और मुनाफा कमाया जा सकता है।

9. जलवायु : मशरूम की खेती के लिए ठण्डी जलवायु होना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए इसकी खेती अक्तूबर से मार्च के बीच की जा सकती है।

10. मशरूम उत्पादन केन्द्र पन्तनगर और तराई फूड्स लिमिटेड ऐसे कुछ संसाधन संगठन हैं जहाँ से मशरूम की खेती के बारे में सलाह और कम्पोस्ट ली जा सकती है। ये केन्द्र दिनेशपुर से लगभग 12 से 15 किलोमीटर की दूरी पर स्थित हैं। मशरूम को बेचना भी आसान है – रुद्रपुर और हलद्वानी अच्छे बाजार हैं।

- इनका स्वाद कैसा होता है?
- मशरूम का आकार ऐसा क्यों होता है?
- मशरूम के भीतर क्या होता है?
- क्या हम इसकी खेती में उपयोग की गई कम्पोस्ट खाद को पुन: उपयोग कर सकते हैं?

तैयारी

जब हमने शिक्षकों के साथ मशरूम की खेती की चर्चा की तो हमारे सामने जो सबसे बड़ी समस्या आई वह थी जगह की। हम मशरूम कहाँ पैदा करते? हालाँकि स्कूल में पर्याप्त जगह थी, हमने सही जगह की तलाश करना शुरू की। सबने अपनी–अपनी राय सामने रखी, लेकिन अन्त में स्कूल के एक कोने को ही इस काम के लिए चुन लिया। फिर हमने यह सोचना शुरू किया कि हम उस स्थान को चारों तरफ से कैसे ढँकें ताकि वहाँ धूप न पहुँचे। हमने एक बड़ी टेबल ली और उसे पॉलीथीन से ढक दिया और उससे एक कमरे जैसा बना लिया। हमने दो घण्टे के भीतर विद्यार्थियों और शिक्षकों की मदद से यह काम पूरा कर लिया। अब यह जगह मशरूम उगाने के लिए तैयार थी।

मशरूम के स्पॉन (बीजों) को कम्पोस्ट खाद में मिलाने के पहले की जा रही तैयारियाँ

कम्पोस्ट खाद और स्पॉन की खरीदी

हमने दिसम्बर में यह काम करना शुरू किया।

दिनेशपुर से 12 किलोमीटर दूर तराई फूड्स लिमिटेड स्थित है जहाँ वर्ष भर मशरूम उगाए जाते हैं। हमने 50 किलोग्राम कम्पोस्ट खाद और स्पॉन का एक पैकेट खरीदा। अगले दिन हमने कम्पोस्ट खाद में स्पॉन को मिलाया और उन्हें अखबार में लपेट दिया।

हमने बच्चों से कहा कि अखबार सूखे नहीं रहना चाहिए, अन्यथा कम्पोस्ट भी सूख जाएगी। बच्चे अखबारों में लिपटे कम्पोस्ट खाद और स्पॉन के मिश्रणों को रोज देखते, और उन्हें अगर लगता कि अखबार सूख रहा है, तो वे उस पर थोड़ा पानी छिड़क देते और इस बात को लिख लेते। वे यह भी लिखते कि उन्होंने कितना पानी छिड़का। स्पॉन को मिलाने के 20 दिन बाद, हमने उस पर आवरण (गाय के गोबर की डेढ़ बरस पुरानी खाद का) चढ़ाया। बच्चों ने इसमें पूरे उत्साह से भाग लिया। जब भी हमें किसी खास तरह की खाद की जरूरत होती थी, हम बच्चों को बता देते थे और वे अपने घरों से इसे ले आते थे और उससे कम्पोस्ट बना लेते। वे बहुत से सवाल पूछते, जैसे – हम कीटनाशकों का प्रयोग क्यों कर रहे हैं? हम इस मिश्रण में फॉरमेलिन क्यों मिला रहे हैं? हम इस पर पॉलीथीन का आवरण क्यों चढ़ा रहे हैं? क्या होगा अगर हम इस पर आवरण न चढ़ाएँ?

स्पॉन को मिलाने तथा उसमें जिप्सम, कीटनाशक और फॉरमेलिन को मिलाने के बाद आवरण को तैयार करते बच्चे

आवरण को तैयार करने के बाद, हमने उसमें थोड़ा पानी मिलाया। फिर बच्चों से कहा कि उसमें जो नमी है वह बनी रहना चाहिए, लेकिन इतनी अधिक भी नहीं होना चाहिए कि पानी बह जाए और इतनी कम भी नहीं होना चाहिए कि यह आवरण सूख जाए। यदि आवरण सूख जाता है, तो कवक जाल नहीं बनेगा। यदि बन भी जाए तो भी वह मशरूमों में नहीं बदलेगा। बच्चे रोज इसे देखते थे और जरूरत पड़ने पर पानी डाल देते थे। हमने लगातार यह किया। बच्चे उस समय का इन्तजार करने लगे जब मशरूम उगना शुरू होने वाले थे। जब 15–20 दिन के बाद भी कवक जाल बनना शुरू नहीं हुआ, तो बच्चों ने पूछना शुरू कर दिया कि वह कब बनना शुरू होगा। मुझे भी चिन्ता होने लगी थी क्योंकि यह पहला मौका था जब मैं बच्चों के साथ मशरूम उगा रहा था। यदि कवक जाल नहीं बनता, तो वे बहुत निराश हो जाते और इस परियोजना में अपना भरोसा खो बैठते। मैंने कवक जाल के न उगने के कारण की तलाश करना शुरू की। पता चला कि हम लोगों ने जो आवरण बनाया था, उसमें फॉरमेलिन की मात्रा ज्यादा होने के कारण कवक जाल नहीं बन रहा था। मैंने आवरण को पानी डालकर धोया और उसे फिर से कम्पोस्ट के साथ मिला दिया। इसके 15 दिन बाद, हमें मशरूम दिखाई

देने लगे। बच्चों का रोमांच देखने लायक था! पहली से छठी कक्षा तक के बच्चे वहाँ आने लगे और मशरूमों को गिनने लगे। उन्होंने इस बात की प्रतिस्पर्धा भी शुरू कर दी कि कौन सबसे पहले गिनती खत्म करके, पास में ही टाँगे गए चार्ट में उसे लिखेगा।

आवरण को कम्पोस्ट में मिलाते बच्चे

मशरूमों को निकालकर उनका वजन नापना

मशरूमों को निकालने के बाद हमने उनकी जड़ों को काट दिया और बच्चों से पास की किसी दुकान में जाकर उनका वजन करवाने के लिए कहा। उन्होंने वहाँ से लौटकर हमें बताया कि मशरूमों का वजन 1 किलो 650 ग्राम था। मैंने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने बरतन के वजन को मशरूमों के वजन में से घटवा दिया था कि नहीं। तो वे बोले कि उन्होंने यह नहीं किया था। फिर बच्चों ने बरतन का वजन लिया और इसे कुल वजन में से घटा दिया। मशरूमों का वजन 950 ग्राम था। फिर हमने उनसे इन बातों को लेकर चर्चा की, कि एक किलोग्राम में कितने ग्राम होते हैं, सही वजन कैसे लिया जाता है तथा इसमें जोड़ना और घटाना किस तरह होता है।

मशरूमों की कटाई और उन्हें मध्यान्ह भोजन में इस्तेमाल करना

जिस दिन हमें मशरूमों को निकालना था, उस दिन बच्चे स्कूल जल्दी पहुँच गए थे। मैंने उन्हें वे मशरूम बताए जो इतने बड़े हो चुके थे कि उन्हें तोड़ा जा सकता था। वे बहुत रोमांचित दिख रहे थे। बच्चे पास की एक दुकान में गए, मशरूमों का वजन करवाया और इस बात का भी हिसाब लगाया कि बिना बरतन के मशरूमों का वजन कितना था। इसके बाद मशरूमों को खारे पानी से साफ किया गया। उनके टुकड़े किए गए। फिर उन्हें उस दिन के खाने की सूची में शामिल कर लिया। वे मशरूम की सब्जी को लेकर बहुत उत्साहित थे।

जब मशरूम की सब्जी को बच्चों में बाँटा गया, तो सिर्फ कुछ बच्चों को ही यह खाने को मिली। जिन बच्चों ने यह सब्जी खाई, उन्होंने कहा :

- मशरूम खाने में गोश्त जैसे लगते हैं।
- ये रबर जैसे लगते हैं।
- इनका स्वाद बढ़िया है।

जब हम भाषाएँ पढ़ाते हैं, तो हम अकसर यह कहते हैं कि बच्चों को प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। यहाँ, पिछले दो महीनों में न सिर्फ छठी कक्षा के बच्चों ने, बल्कि पहली से छठी तक के बच्चों ने ढेर सारे सवाल पूछे थे। कुछ बच्चे अपने घरों में मशरूम उगाना चाहते थे। कुछ बच्चे यह जानना चाहते थे कि क्या मशरूम बीमारियों से लड़ने में उपयोगी होते हैं। अन्य बच्चे यह जानना चाहते थे कि जहरीले और सुरक्षित मशरूमों में अन्तर कैसे किया जाता है।

बच्चों की पारिवारिक पृष्ठभूमि, उस क्षेत्र की विशेषता तथा भौगोलिक दशाओं को देखते हुए हम विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का चयन कर सकते हैं और उन्हें पाठ्यक्रम में शामिल कर सकते हैं।

काम के माध्यम से शिक्षा : दोस्तों व शिक्षकों के साथ सम्बन्ध

हम अक्सर इस बात को देखते हैं कि बच्चे शिक्षकों से सवाल पूछने में घबराते हैं। अत: ऐसे में यह समझ पाना मुश्किल होता है कि विद्यार्थियों और शिक्षकों के बीच का नाता कैसा है। बच्चे सवाल तभी पूछ पाएँगे जब वे पढ़ाए जा रहे विषयों से जुड़ पाते हैं। शिक्षा में काम की सोच पर काम करते हुए हमने पाया कि बच्चे शिक्षकों से पूछने के लिए खुद ही तार्किक प्रश्न गढ़ लेते हैं। वे ऐसा इसलिए कर पाते हैं क्योंकि वे इन्हें अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी से जोड़ लेते हैं। वे अपने मित्रों के साथ भी चर्चा और वार्तालाप करते हैं।

कभी–कभी किसी बात को सिद्ध करने के लिए वे खास प्रकार के तर्क देते हैं। उदाहरण के लिए एक बच्चे ने कहा

कि हम सभी तरह के मशरूम खा सकते हैं। एक दूसरे बच्चे ने कहा कि नहीं हमें हर तरह के मशरूम नहीं खाना चाहिए। अपनी बात को सिद्ध करने के लिए उस बच्चे ने कहा कि यदि हम सभी तरह के मशरूम खा सकते, तो हम उन मशरूमों को क्यों नहीं खाते जो पेड़ों पर उगते हैं? हम बारिश के मौसम में मशरूमों को उगता देखते हैं, हम उन्हें क्यों नहीं खाते? एक बच्चा बोला, कि लोग जंगलों से मशरूम इकट्ठा करते हैं और उन्हें खाते हैं। एक अन्य बच्चे ने कहा कि उसने अखबार में पढ़ा था कि एक परिवार के छह लोग जंगल के मशरूमों को खाने से मर गए थे। तो एक बच्चे ने पूछा कि हम यह कैसे पता लगा सकते हैं कि कौन–से मशरूम खाने योग्य हैं और कौन–से नहीं। मैंने उन्हें बताया कि हम खाने योग्य तथा विषैले मशरूमों में अन्तर कैसे कर सकते हैं।

शिक्षा में काम और सतत और निरन्तर मूल्यांकन (सी.सी.ई.)

सतत और निरन्तर मूल्यांकन एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया होती है। बच्चों का मूल्यांकन लगातार करना होता है और हम काम के माध्यम से शिक्षा के द्वारा यह मूल्यांकन कर सकते हैं। जब आज हम मूल्यांकन के बारे में सोचते हैं, तो हमारे दिमाग में सिर्फ एक तस्वीर आती है – बच्चे की प्रगति को पेन और पेन्सिल के साथ जाँचना। हम सभी इस बात को जानते हैं कि हर बच्चे का सीखने का अपना तरीका होता है। अगर हम सिर्फ कागज पर लिखने के द्वारा परीक्षण करने को महत्त्व देंगे, तो सही मूल्यांकन नहीं हो पाएगा, क्योंकि कुछ बच्चे अपनी बात को लिखने के माध्यम से सही ढंग से नहीं समझा पाते। कुछ बच्चे अपनी बात बोलकर बेहतर ढंग से बता पाते हैं और कुछ करके। काम के माध्यम से शिक्षा के द्वारा हम बच्चों के सभी पहलुओं का मूल्यांकन सकते हैं, जैसे कक्षा के उनके साथियों के साथ उनका क्या रिश्ता है, विभिन्न गतिविधियों में उनकी भागीदारी का स्तर, काम के प्रति जिम्मेदारी की भावना, सोचने की क्षमता, समझ और न्यायसंगत तर्क करने की क्षमता, बोलने का कौशल, नई चीजें सीखने की उनकी ललक, सामाजिक कौशल, अवलोकन क्षमता, अपने विषयों से जुड़ने की उनकी क्षमता और सहयोग करने की क्षमता इत्यादि। हम लोग बच्चों के माता–पिताओं के साथ इस बात को लेकर चर्चा कर रहे हैं कि बच्चों के घरों में भी इस तरह की गतिविधियों को करने की कोशिश की जाए।

शहाबुद्दीन अन्सारी वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, ऊधमसिंह नगर के सदस्य हैं। इससे पहले उन्होंने रुद्रपुर में फाउण्डेशन के लर्निंग गारण्टी प्रोग्राम में क्षेत्र समन्वयक के रूप में काम किया है। उन्हें राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र और शिक्षा में मास्टर्स डिग्री प्राप्त है। उन्हें खाद्य उद्योग में काम करने का 10 वर्षों का अनुभव है और शिक्षा क्षेत्र में काम करने का लगभग ६ वर्षों का अनुभव है। उनसे sahabuddin.ansari@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

मदद करते हुए सीखना

सुरेश कुमार साहू, राकेश टेटा
और गुलशन यादव

अपनी विविध भौगोलिक और सामाजिक विशेषताओं के साथ धमतरी जिला छत्तीसगढ़ के मध्य भाग में स्थित है। इस जिले का एक महत्त्वपूर्ण और उपजाऊ भाग महानदी घाटी में पड़ता है। इस क्षेत्र के लोगों की जीविकाओं में सिंचित कृषि व्यवस्था के तहत होने वाली धान की खेती का अहम योगदान है। इस जिले के दक्षिण में एक विशिष्ट इलाका है जिसका भूभाग उतार–चढ़ाव वाला है और जहाँ घने जंगल पाए जाते हैं। इस क्षेत्र के लोग लघु वन–उपज का संग्रहण करते हैं, जो इन लोगों की जीविकाओं का एक और सहारा है, क्योंकि इस इलाके में सिंचाई का अभाव होने से लोग सिर्फ अपने जीवन के निर्वाह लायक खेती ही कर पाते हैं। इस जिले के भीतर ही एक और क्षेत्र है जहाँ मध्य छत्तीसगढ़ के चार मध्यम और बड़े बाँध स्थित हैं। इन बाँधों के निर्माण की वजह से अनेक गाँवों का विस्थापन हो गया था। इनमें से कई गाँवों में आज तक पुनर्वास नहीं हो पाया है। इन बाँधों के जलग्रहण क्षेत्र में आने वाले गाँवों के कई लोगों के लिए मछली मारना एक महत्त्वपूर्ण गतिविधि बन गई है।

ऊपर उल्लिखित, कृषि व पारिस्थितिक तंत्र से जुड़ी तीन विशेषताएँ इन क्षेत्रों के लोगों की जीविकाओं के विविध स्वरूपों को प्रभावित करती हैं। शहरीकरण भी यहाँ के लोगों की, खासतौर से जिले में नए उभरते छोटे शहरी केन्द्रों से सटे हुए इलाकों में, जीविका के स्वरूपों को प्रभावित करने वाला एक और कारक रहा है। ऊपर उल्लिखित तीन क्षेत्रों की जनसांख्यिकीय रूपरेखा का भी अपना एक स्वरूप है। महानदी घाटी के कृषि आधारित क्षेत्र में जहाँ अन्य पिछड़ा वर्ग के लोगों की संख्या सबसे अधिक है, वहीं जंगलों और बाँधों वाले अन्य दो क्षेत्रों में जनजातीय जनसंख्या अधिक है।

जीविकाओं के विविध स्वरूपों का सर्वेक्षण करने के लिए और इन जिलों के इन क्षेत्रों के लोगों की जीविकाओं को प्रभावित करने वाले कारकों को समझने के लिए एक अध्ययन किया जा रहा है। नमूने के लिए कुछ गाँवों का चयन किया गया है जिनमें नमूना स्वरूप चुने गए घरों से जानकारियों को एकत्र किया गया। इस अध्ययन में एक मिश्रित पद्धति वाला तरीका अपनाया गया है, जिनमें आँकड़ों को इकट्ठा करने के लिए परिवार के सर्वेक्षणों, गहन समूह चर्चाओं (फोकस ग्रुप डिस्कशन), लोगों से बातचीत और सहभागिता के आधार पर सुखी जीवन के वर्गीकरण जैसे कई उपकरणों का उपयोग किया गया है।

हमने बच्चों को आँकड़ों को इकट्ठा करने की प्रक्रिया में शामिल करने के बारे में विचार किया। बच्चों द्वारा आँकड़ों के एकत्रीकरण करने के लिए, निम्नलिखित तीन प्रकार के उपकरणों का उपयोग करने का निर्णय लिया गया :

क. प्रतिदिन का कार्यक्रम : वयस्कों और बच्चों द्वारा किए जाने वाले कामों में लिंग–आधारित भेद को समझना। हर एक गाँव के दस बच्चे (पाँच लड़के और पाँच लड़कियाँ) इस कार्य में शामिल हुए।

ख. गाँव का विवरण तैयार करना : गाँवों की जनसांख्यिकीय, सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक और आधारभूत संरचना (बुनियादी सुविधाओं) सम्बन्धी जानकारियों से जुड़े आँकड़ों को इकट्ठा करने के लिए एक प्रारूप तैयार किया गया। इस कार्य को करने के लिए हर गाँव से चार से छह बच्चों के एक या दो समूह बनाए गए।

ग. मौसमी कैलेण्डर : खेती से जुड़ी पद्धतियों और फसलों के चक्रों, स्वास्थ्य से जुड़ी मौसमी समस्याओं, लघु वन उपज की उपलब्धता, स्थानीय उत्सवों और मेलों तथा साल के विभिन्न महीनों में मिलने वाली सब्जियों और फलों से सम्बन्धित आँकड़ों को इकट्ठा करना। इस कार्य को भी हर गाँव से बच्चों के एक या दो समूहों ने किया।

बत्तीस गाँवों के कक्षा आठ के करीब 300 बच्चों ने इस प्रक्रिया में भाग लिया। बच्चों द्वारा दिखाए गए जोश और उत्साह से लेकर, इकट्ठा किए गए आँकड़ों की गुणवत्ता तक, हमारे अनुभव प्रेरणादायी रहे हैं। हालाँकि, शुरुआत में

हमें इतने सकारात्मक परिणाम का भरोसा नहीं था, क्योंकि हम बच्चों की भागीदारी और आँकड़ों की गुणवत्ता, दोनों के बारे में आश्वस्त नहीं थे। इसके अलावा हम लोग शोध की नैतिकताओं से जुड़ी समस्याओं से भी जूझ रहे थे। अन्त में, स्कूल के ढाँचे के भीतर बच्चों को अपने परिवेश से जुड़ने के लिए पर्याप्त गुंजाइश न मिल पाने के कारणों की हमारी समझ के आधार पर, हमने अपनी आशंकाओं के बावजूद इस काम को आगे बढ़ाने का निर्णय लिया। बच्चों में स्कूल के प्रति ऐसे अलगाव की पहचान बहुत समय से कई लोगों द्वारा की जा चुकी है और स्कूल की प्रक्रियाओं में विद्यार्थियों की रुचि न जग पाने के एक प्रमुख कारण के रूप में भी इसका निदान किया गया है।

एन.सी.एफ. 2005 इन समस्याओं को स्कूली व्यवस्था की 'कठोरता' के रूप में रेखांकित करती है, जहाँ 'सीखना एक अलग–थलग गतिविधि बन गई होती है' जो इतनी गुंजाइश नहीं देती कि 'बच्चे ज्ञान को अपनी जिन्दगियों से जोड़ पाएँ'। स्कूलों की प्रक्रियाएँ 'नए ज्ञान के सृजन की मानवीय क्षमता के महत्वपूर्ण आयामों को अनदेखा कर देती हैं', और 'ऐसी विचार प्रक्रिया को प्रचारित करती हैं जो रचनात्मक सोच और अन्तर्दृष्टि को हतोत्साहित करती है'। सीखने से बच्चे के सन्दर्भ को गायब ही कर दिया गया है और 'सीखना विद्यार्थियों और उनके माता–पिता के लिए बोझ व तनाव का एक स्रोत बन गया है'।

एन.सी.एफ. 2005 ने भी अपने दस्तावेज के विभिन्न खण्डों में इन समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करने की कोशिश की है। उदाहरण के लिए, सामाजिक विज्ञानों पर बना राष्ट्रीय फोकस समूह बच्चों के जीवन की स्थानीय, सामाजिक और पर्यावरण–सम्बन्धी परिस्थितियों को उनके सीखने का हिस्सा बनाने के महत्त्व पर जोर देता है। इसी प्रकार, काम और शिक्षा पर प्रस्तुत किए गए पोजीशन पेपर में 'काम–केन्द्रित शिक्षा' के सर्वव्यापी कार्यक्रम को लागू करने का सुझाव दिया गया है। यह कार्यक्रम केन्द्रीय पाठ्यक्रम से जुड़े सभी अन्य प्रकार के कामों (उदाहरण के लिए, बच्चों द्वारा की जाने वाली गतिविधियाँ, प्रयोग, सर्वेक्षण, वास्तविक कार्यक्षेत्र–आधारित अध्ययन (फील्ड स्टडी), सामाजिक कार्य, लोगों के साथ काम करना इत्यादि) के साथ उत्पादक कार्य को भी शैक्षणिक माध्यम के रूप में देखने के सिद्धान्त पर आधारित है।

हमने जो कार्य तय किए, उन्हें हमने बच्चों को उनके परिवेश से जोड़ने के मौके की तरह से देखा। इन प्रक्रियाओं में विद्यार्थी जानकारियों के विभिन्न स्रोतों की पहचान कर रहे थे, आँकड़ों को इकट्ठा कर रहे थे (कहीं–कहीं दो आँकड़े एक–दूसरे के परस्पर विरोधी भी थे), एक से ज्यादा स्रोतों से उन्हें इकट्ठा करके उनका सत्यापन कर रहे थे और फिर उन आँकड़ों का श्रेणीकरण कर रहे थे। यह माना जा सकता है कि बच्चों के मन में उनके नजदीकी परिवेश के साथ सीधे तौर पर जुड़ी विभिन्न चीजों के बारे में ज्ञान निर्मित होता रहता है। लेकिन, बच्चे जब ये कार्य कर रहे थे तो उस दौरान कई अन्य महत्वपूर्ण प्रक्रियाएँ भी हो रही थीं। यहाँ बच्चों के विचारों पर आधारित ऐसी ही कुछ चीजों की चर्चा की जा रही है।

समूह में कार्य करना, ऐसी ही एक बात थी जिसका बच्चों ने सबसे ज्यादा मजा लिया। बच्चों ने समूह के अन्दर अपने–अपने कार्यों को बाँट लिया। कुछ बच्चों ने गाँव के बुजुर्गों से बात करने का काम अपने हाथ में लिया। कुछ अन्य बच्चों को पटवारी या नर्स या पंचायत सचिव के साथ बात करने का काम सौंपा गया। बच्चों ने यह कहा कि ऐसी परियोजनाओं पर समूहों में काम करने के लाभों और चुनौतियों से उन्हें इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र की कई सीखें मिलीं। उनमें से कुछ बच्चों ने यह भी बताया कि वे अपना कार्य पूरा नहीं कर पाए थे, लेकिन फिर समूह के बाकी बच्चों ने उनकी मदद की। कुछ बार यह भी हुआ कि समूह ने अपने कुछ सदस्यों द्वारा दिखाई जा रही अरुचि पर नाखुशी जाहिर की।

अपने काम को ग्रामीणों को और गाँव के कर्मचारियों को समझाने के कार्य में भी उन्हें यह मौका मिला कि वे अपने संवाद कौशल को परख सकें। यद्यपि विद्यार्थियों ने महसूस किया कि उन्हें ग्रामीण व ग्राम कर्मचारियों की तरफ से मिश्रित प्रतिक्रियाएँ मिलीं। कुछ लोगों ने उनके प्रयासों का स्वागत किया और उनकी सराहना की। लेकिन कई लोगों ने उनसे यह भी कहा कि यह उनका काम नहीं था, उन्हें स्कूल जाकर अपनी पढ़ाई पर ध्यान देना चाहिए। स्पष्ट है कि ग्रामीण समुदाय के इन लोगों में स्कूल की चहारदीवारी के भीतर ही सीखने की धारणा बड़ी मजबूत थी। हालाँकि यह बात दिलचस्प थी कि हमारे शुरुआती संवादों के दौरान अधिकांश शिक्षकों ने इस विचार का स्वागत किया और उनमें से कुछ ने दो विद्यार्थियों को उनके काम में मदद भी दी।

इन स्कूलों में बच्चे जो काम कर रहे थे, उसे समझाने के लिए कई शिक्षकों ने शहरी स्कूलों में बच्चों द्वारा किए जाने वाले परियोजना कार्य की उपमा दी और उन्होंने इन्हीं सन्दर्भों

में इन कार्यों का मूल्यांकन किया। परिणामस्वरूप, जिन स्कूलों में हम नहीं पहुँचे थे, उनके शिक्षकों ने हमसे सम्पर्क किया कि हम उनके स्कूलों में भी ऐसे कार्य करें। ऐसा करके उन्होंने दिखाया कि वे सीखने के दायरे में स्थानीय सन्दर्भों को शामिल करके उसका विस्तार करने के विचार से अवगत थे। लेकिन, वे कक्षा की पारम्परिक धारणा से भी बँधे हुए थे। अपने कार्यों के दौरान बच्चों के सामने जो एक और समस्या आई वह थी लैंगिक भेदभाव की। कुछ गाँवों में लड़कों और लड़कियों के मिश्रित समूह को बुजुर्गों ने टोका जो यह जानना चाहते थे कि वे लोग एक साथ कैसे और क्यों घूम रहे थे।

इस सवाल के जवाब में, कि क्या इस प्रयोग से उन्हें कुछ नया सीखने में मदद मिली या बेहतर ढंग से सीखने में मदद मिली, बच्चों ने जोरदार ढंग से हाँ में जवाब दिया। उन्होंने पाया कि पहले भी ऐसी कई चीजें थीं जिन्हें वे रोज देखते थे पर उनके बारे में अनभिज्ञ थे या पर्याप्त नहीं जानते थे। गाँव के लोग क्या करते हैं, इस सवाल के जवाब में सबसे आम जवाब था 'खेती'। लेकिन, जब उन्होंने लोगों के पेशों और उनके द्वारा किए जाने वाले कामों के बारे में सुनना शुरू किया, तो उन्हें कामों की अन्य श्रेणियों की भी जानकारी हो गई। इस तरह से, इस प्रारूप ने उन्हें चीजों को अधिक व्यवस्थित ढंग से देखने का मौका दिया, जिससे उन्हें कई नई चीजों के बारे में जानने व सीखने में मदद मिली।

प्रतिदिन के कार्यक्रम की मदद से बच्चों को लिंग के आधार पर काम के भार तथा काम के प्रकारों के बीच किए जाने वाले अन्तरों को समझा। कुछ स्कूलों में हमें विद्यार्थियों के साथ इन पहलुओं पर चर्चा करने का मौका मिला। बच्चों द्वारा इकट्ठा किए गए 'प्रतिदिन के कार्यक्रम' के आँकड़ों से बच्चों ने लगभग एकमत होकर यह निष्कर्ष निकाला कि महिलाएँ/ लड़कियाँ अपने परिवारों में लड़कों/ पुरुषों से ज्यादा काम करती हैं। इस सवाल के जवाब में भी, कि क्या काम में ऐसा लैंगिक भेदभाव होना उचित है, करीब–करीब सभी बच्चों ने यह मत जाहिर किया कि ऐसा होना अनुचित है। हमने पाया कि इन स्कूलों में विद्यार्थियों के साथ लिंग–आधारित समस्याओं की चर्चा करना एक उत्तम शैक्षणिक उपकरण हो सकता है।

बच्चों द्वारा एकत्रित आँकड़ों का विश्लेषण करने पर एक दिलचस्प बात सामने आती है। आँकड़ों की गुणवत्ता, सामान्यत: तो काफी अच्छी थी, लेकिन उनमें जो खामियाँ थीं उनमें से अधिकांश सरकारी विभागों से इकट्ठा किए गए आँकड़ों में थीं। उदाहरण के लिए, पटवारी से लिए जाने वाले गाँवों में जमीन के उपयोग के स्वरूप से जुड़े आँकड़े। दरअसल सरकारी व्यवस्था के अन्दर आधिकारिक गोपनीयता की भावना गाँव के स्तर पर भी काम करती प्रतीत हुई।

इस प्रकार, हमें यह स्पष्ट रूप से समझ में आया कि भागीदार बच्चों ने इस प्रक्रिया का खूब आनन्द लिया था। उन्हें समूहों में काम करने के बारे में, जानकारियों के स्रोतों के बारे में तथा उनके निकट के समाज और परिवेश के बारे में कुछ बातों को जानने और सीखने का मौका मिला। इसके अलावा, विद्यार्थियों ने इस प्रक्रिया में अपने संवाद के तथा लोगों को समझाने के कौशलों का उपयोग किया। एक बच्चे ने हमें बताया कि उसे एक शोधकर्ता की मदद करके कितना अच्छा लगा, क्योंकि उसकी नजर में वे कुछ 'गम्भीर' या 'महत्त्वपूर्ण' कार्य कर रहे थे। इस प्रक्रिया से बाकी चाहे जो भी परिणाम प्राप्त हुए हों, लेकिन बच्चों के भीतर अपने सीखने में सक्रिय भागीदार होने की भावना पैदा कर पाने के सन्तोष ने इस पूरी प्रक्रिया के लिए किए गए प्रयासों को सार्थक बना दिया।

सुरेश साहू अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन जिला संस्थान, धमतरी के साथ काम कर रहे हैं। वे अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में लाइवलीहुड इनीशियेटिव (जीविका पहल) का हिस्सा भी हैं। वे वर्तमान में, धमतरी जिले में, जीविकाओं के विवरण से सम्बन्धित शोधकार्य में और ग्रामीण लोगों की जीविकाओं के विकल्पों को समझने के कार्य में संलग्न हैं। इससे पहले उन्होंने विकास के क्षेत्र में, अधिकांशत: कृषि–जैव विविधता, खाद्य सुरक्षा, पारम्परिक देशी ज्ञान और प्राकृतिक संसाधनों के विकेन्द्रीकृत प्रबन्धन से जुड़े मुद्दों पर काम किया है। उनसे suresh.sahu@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

राकेश टेटा अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन जिला संस्थान, धमतरी के साथ काम कर रहे हैं और वर्तमान में सामाजिक विज्ञान दल के सदस्य हैं। वे जिले के कुछ चुनिन्दा स्कूलों के साथ काम और शिक्षा के विचार पर कार्य करते रहे हैं। इससे पहले उन्होंने छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्रों में विकास के क्षेत्र में काम किया है। उनकी रुचि के क्षेत्रों में विभिन्न सामाजिक सन्दर्भों और सांस्कृतिक परम्पराओं को समझना शामिल है। उनसे rakesh.teta@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

गुलशन यादव 2013 से अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन जिला संस्थान, धमतरी के साथ फैलो के रूप में काम कर रहे हैं। उनके पास व्यवसाय प्रबन्धन में मास्टर्स की डिग्री है, जिसमें उनकी विशेषज्ञता का क्षेत्र था विपणन (मार्केटिंग) और मानव संसाधन। इसके अलावा उन्होंने प्रबन्धन में एम. फिल भी किया है। इससे पहले उन्होंने कम्प्यूटर शिक्षा के क्षेत्र में काम किया है। उनसे gulshan.yadav@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

समेकित तथा समग्र रूप से सीखने का एक सशक्त माध्यम

सुषमा शर्मा

स्वयं करके सीखना : महाराष्ट्र के सेवाग्राम में स्थित आनन्द निकेतन स्कूल का अनुभव

यह पहली बार था कि हमने छठी व सातवीं कक्षाओं के हर एक विद्यार्थी के लिए अलग–अलग क्यारियों में प्याज को एकल फसल की तरह से लगाने की योजना बनाई थी। प्याज के रोपे तो तैयार थे लेकिन क्यारियों को तैयार किया जाना था। हमारी बागवानी के शिक्षक प्याज बोने की तैयारी के कामों में विद्यार्थियों का मार्गदर्शन कर रहे थे। हालाँकि मैं प्रधानाध्यापिका हूँ, लेकिन मेरे लिए भी ये चीजें उतनी ही नई थीं जितनी मेरे विद्यार्थियों के लिए। मैं भी इससे जुड़ी बातों को जानने के लिए और बच्चों के समूह में शामिल होने के लिए उत्सुक थी। जब मैं बगीचे मैं पहुँची तो मैंने देखा कि बच्चों को इस काम में जमकर मजा आ रहा था। उन्होंने मिट्टी को ढीला कर दिया था और क्यारियों को पानी से भर दिया गया था। वे मिट्टी और पानी को अपने पैरों से मसल रहे थे ताकि वह कीचड़ बन जाए। इस प्रक्रिया का वे भरपूर आनन्द ले रहे थे। उन्हें इस बात की भी कतई परवाह नहीं थी कि उनके कपड़ों पर भी कीचड़ लग रहा था। आखिरकार, तैयार किए गए प्याज के रोपों को यहाँ प्रतिरोपित कर दिया गया। पिछले साल स्कूल में प्याज की अच्छी पैदावार हुई थी। जैविक ढंग से उगाए गए इन प्याजों का स्कूल की किचन में उपयोग किया गया था और कुछ प्याज शिक्षकों को बेच दिए गए थे।

यह सीखना आसान था कि प्याज की फसल में सामान्य तने का संशोधित रूप गाँठ (बल्ब) बन जाता है। फसल के बढ़ने के दौरान उसकी यह गाँठ जमीन के भीतर ही रहती है। इसलिए जब उन्होंने हल्दी, मूली, गाजर और चुकन्दर की फसलें लगाईं तो उनके लिए तने, जड़ आदि के रूपान्तरण के अन्य उदाहरणों को समझना आसान रहा। स्कूल की पाठ्यचर्या के अनिवार्य पहलू के रूप में, मानसून और रबी की ऋतुओं में, सब्जियाँ उगाने के कार्य ने विद्यार्थियों के लिए सभी स्तरों पर अलग तरह से सीखने की एक विराट सम्भावना के द्वार खोल दिए। इनमें से कुछ सीखें इस प्रकार हैं :

1. विभिन्न प्रकार के पौधों का अवलोकन करना, चाहे वे फसलें हों या खरपतवार। इसका अर्थ था पत्तियों का, जड़ों के तंत्रों का, तनों और शाखाओं के बनने का, फूल आने का, फल आने का और बीजों का अवलोकन करना। इससे विद्यार्थियों को पौधों के समूहीकरण, उपयोग और उनको होने वाले खतरों के बारे में जानने में मदद मिली।
2. अलग–अलग प्रकार की सब्जियों जैसे फलों वाली सब्जियों, पत्तेदार सब्जियों और कन्दों के लिए जमीन तैयार करना सीखना तथा बीज बोने के तरीके व अन्य बारीकियों को सीखना।
3. मिट्टी के उपजाऊपन के महत्त्व को समझना तथा मिट्टी को जीवन्त बनाए रखने में कीड़ों, केंचुओं, फफूँद और जीवाणुओं के महत्त्व को समझना। खेती में सामाजिक कीड़ों जैसे चींटियों, दीमकों और मधुमक्खियों के महत्त्व को समझना।
4. कम्पोस्ट खाद और सड़ी हुई वनस्पति से ढाँकने (मल्चिंग) जैसे विभिन्न तरीकों के माध्यम से जैविक पदार्थ की री–सायक्लिंग का महत्त्व समझना। साथ ही गाय के गोबर तथा अतिरिक्त जैविक पोषण का प्रयोग करते हुए कम्पोस्ट खाद तैयार करना सीखना।
5. फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले कीटों, लाभकारी कीड़ों के जीवन चक्रों का अवलोकन करना और उन्हें समझना तथा कीट प्रतिरोधी छिड़काव करना।
6. नियमित रूप से निराई करने, मिट्टी की खुदाई करने, पानी देने, खाद डालने, छिड़काव करने इत्यादि के द्वारा वनस्पतियों वाले भूखण्ड/ उद्यानों की देखरेख करना। हँसिया, काँटे, कुदाली/ फावड़े जैसे विभिन्न उपकरणों का उपयोग करना सीखना।
7. प्रकाश संश्लेषण, वाष्पोत्सर्जन, परागण जैसी वैज्ञानिक प्रक्रियाओं में धूप की भूमिका को समझना।

8. सब्जियाँ उगाने के लिए जमीन के टुकड़ों को मापना और तैयार करना। किसी भूखण्ड पर जोड़ और गुणन का इस्तेमाल करके पौधों की संख्या की गणना करना/आकलन करना। जितनी भूमि पर जुताई हो रही है, उसकी परिमाप को, क्षेत्रफल को मापना, खुले क्षेत्र को मापना, नक्शे बनाना, उपज को तौलना, उपज का रिकार्ड रखना, सब्जियाँ बेचना इत्यादि।

9. मौसम का रिकार्ड रखना। उदाहरण के लिए न्यूनतम और अधिकतम तापमानों, आर्द्रता, वर्षा को मापना तथा उन्हें लेखाचित्र के रूप में प्रस्तुत करना।

10. पौधा घरों में पौधों को बड़ा करने की तकनीकें जानना। गड्ढ़े खोदना और पौधे लगाना। पौधों को पानी देने के लिए ड्रिप सिंचाई (बूँद–बूँद पानी टपकने के द्वारा सिंचाई) की सरल विधि का उपयोग करना। सिंचाई के तरीकों को तुलनात्मक रूप से समझना।

11. पानी की कमी तथा पानी के अतिरेक से जुड़े संकटों को समझना।

12. भू–जल के अत्यधिक दोहन, पानी की असमान उपलब्धता, बाजार की जरूरतों के मुताबिक लगाई जाने वाली फसलों के कारण होने वाले पानी के अतिशय उपयोग, एक ही फसल को बार–बार लगाया जाना, स्थानीय पोषण की अस्थायी प्रकृति जैसी व्यापक समस्याओं को समझना।

13. लैंगिक पहलुओं को समझना। उदाहरण के लिए महिलाओं के लिए पानी के अभाव के क्या मायने होते हैं, पानी को घरों तक लाने का काम पारम्परिक रूप से किसे सौंपा जाता है।

14. अपने भूखण्ड की खुद देखरेख करना सीखना और अच्छा प्रदर्शन करने के लिए दूसरे विद्यार्थियों के साथ सहयोग करना सीखना। सामूहिक रूप से उल्लिखित नियमों के आधार पर काम को और कमाए गए पैसों को बाँटना। कुछ समाजों में आज भी इस्तेमाल की जाने वाली पारम्परिक सहकारी पद्धतियों के विचार की समझ हासिल करना।

15. मिट्टी की गुणवत्ता में कमी, कीटनाशकों और रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग के कारण होने वाले प्रदूषण, खाद्य और पोषण–सम्बन्धी सुरक्षा, खाद्य पदार्थों की जैव विविधता आदि से जुड़ी ज्यादा बड़ी समस्याओं को अतिरिक्त पढ़ाई करके समझना।

16. बाजार से जुड़ी व्यापक समस्याओं को समझना। अपने उत्पादों के लिए उचित कीमतों के न मिलने से किसानों के साथ होने वाले अन्याय को समझना। यह समझना कि अनुचित आयात–निर्यात नीतियों तथा बीजों, उर्वरकों और कीटनाशकों के लिए किसानों द्वारा दिए जाने वाले मूल्य से उनकी आर्थिक स्थिति पर बेहद प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अखबारों, किताबों और वेबसाइटों से ली गई खबरें और लेख तथा विशेषज्ञों के साथ होने वाला संवाद विद्यार्थियों के सीखने को समृद्ध बना सकता है।

17. फसलों की योजना बनाने, कुछ फसलों के लिए बहुत अधिक पानी की जरूरत होने के कारण भू–जल के अत्यधिक निष्कर्षण तथा जमीन के खारेपन से जुड़ी व्यापक समस्याओं को समझना।

18. अन्तिम पर सबसे जरूरी बात, यह सीख प्राप्त करना कि काम करना हमारे जीवित रहने के लिए बेहद आवश्यक है। इसलिए काम का और उसे करने वाले व्यक्ति का हमेशा सम्मान होना चाहिए।

इस सूची को उम्र तथा स्तर के मुताबिक और विस्तृत किया जा सकता है। इसलिए इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि कृषि को नियमित स्कूली गतिविधि की तरह से किए जाने पर वह वर्गीकरण की सीमाओं से बँधी पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से हासिल की जाने वाली अपेक्षित समझ के अलावा, बच्चों को बहुत से पहलुओं की एकीकृत, समृद्ध और 'वास्तविक जीवन से जुड़ी' समझ और योग्यताओं को विकसित करने का द्वार खोलती है। इससे शिक्षकों और विद्यार्थियों के बीच ऊँच–नीच वाला सत्तावादी सम्बन्ध समाप्त हो जाता है क्योंकि दोनों ही एक साथ मिलकर खेतों में काम करते हैं। इसके अलावा खाना बनाना, वस्त्रकला (कपड़ा बनाना) और ऊर्जा के क्षेत्रों में कुछ और कार्य–आधारित गतिविधियाँ तैयार की कई हैं जिनमें सीखने और व्यावहारिक समझ को विकसित करने की सम्भावना है। स्कूल की स्थिति और जरूरतों के मुताबिक ऐसी कई और गतिविधियाँ तैयार की जा सकती हैं।

काम करना : समग्र रूप से सीखने का माध्यम

इस बात को दर्शाना बहुत जरूरी है कि शिक्षा में काम के समावेश को सिर्फ व्यावसायिक शिक्षा की तरह नहीं देखा जाना चाहिए। सीखने में इसकी भूमिका कहीं अधिक है। इसे समेकित तथा समग्र रूप से सीखने के साधन के रूप

में इस्तेमाल किया जा सकता है। जरूरत है ऐसे सीखने को सुगम बनाने के लिए शिक्षक की सोच, प्रेरणा और क्षमता के विकास की। क्योंकि इस तरह से सिखाने को सुगम बनाने के लिए पारम्परिक ढंग से विषयों को सिखाने के तरीके की तुलना में कहीं अधिक पेशेवर लगन की जरूरत होती है। सरल और बुनियादी कलाएँ तथा काम कहीं अधिक स्पष्ट देखे जा सकने वाले और रचनात्मक कल्पना के अनुसार ढाले जा सकने वाले होते हैं और इस तरह सीखने के लिए एक ठोस सन्दर्भ प्रदान करते हैं। लेकिन सभी चीजों को उत्पादक कार्य के साथ आसानी से एकीकृत नहीं किया जा सकता। पर्यावरण और स्थानीय समाज से जुड़ी कुछ अच्छी गतिविधियों के संयोजन से सीखने के लिए बहुत समृद्ध परिस्थिति निर्मित की जा सकती हैं। स्कूल को सहभागिता के प्रतिरूप पर चलाना ही अपने आप में सीखने का एक अच्छा माध्यम है।

स्कूल की बिलकुल शुरुआत में हमने तय किया था कि शारीरिक कामों को स्कूली शिक्षा के अत्यावश्यक घटक के रूप में शामिल करेंगे। यह निर्णय हमने इस विश्वास के साथ लिया था कि करके सीखने के इस तरीके में संज्ञानात्मक, शारीरिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास की अत्यधिक सम्भावनाएँ होती हैं। इसलिए हमारी यह धारणा थी कि व्यवस्थित ढंग से और वैज्ञानिक रूप से तराशा गया सीखने का अनुभव निश्चित रूप से समग्र व्यक्तित्व और जिम्मेदार नागरिक के निर्माण में निश्चित मदद करेगा।

कई अन्य लोगों की भाँति हम भी स्कूली शिक्षा की अत्यधिक किताबी और प्रतिस्पर्धात्मक प्रकृति के बारे में चिन्तित थे, जो बच्चों की वैयक्तिक क्षमताओं और सम्भावनाओं के अन्तरों का निरादर करती है। इसी प्रकार हमारा समाज शारीरिक काम करने वाले सभी लोगों के साथ जो भेदभाव तथा निरादर वाला व्यवहार करता है, उससे हम लोग व्यथित थे। ये हमारी कुछ चिन्ताएँ थीं –

- वह क्या चीज है जिसकी वजह से हम उत्पादक व शारीरिक काम तथा बौद्धिक काम के बीच अन्तर करते हैं?
- शारीरिक श्रम करने वालों को इतनी कम मजदूरी क्यों मिलती है?
- इस स्थिति के लिए क्या सिर्फ माँग और आपूर्ति जिम्मेदार है या इसका सम्बन्ध हमारे विकृत मूल्यों से है जिसने कुछ लोगों के हित में जानबूझकर कुछ तरह के कामों और प्रयासों का मूल्य कम कर दिया है?
- क्या यह सत्य है कि उत्पादक कार्य में बौद्धिक पक्ष की कमी होती है?
- सफलता के लिए और मनुष्य की सभी सृजनशील योग्यताओं और क्षमताओं को बाहर लाने के लिए क्या सिर्फ किताबी ज्ञान ही पर्याप्त होता है?
- क्या बुद्धि के विकास में शारीरिक कार्यों की कोई भूमिका होती है?

हमारा मानना है कि शिक्षकों और विद्यार्थियों, दोनों के लिए इन प्रश्नों पर गहराई से विचार करना जरूरी है। ऐसी चर्चाओं में माता–पिता को शामिल करने से और अधिक प्रभावी ढंग से काम करने में मदद मिल सकती है।

शिक्षा का उद्देश्य अस्पष्ट होने से हम एक अव्यवस्थित समाज पैदा कर रहे हैं

शिक्षा का सरोकार सिर्फ संज्ञानात्मक आयामों से ही नहीं है, इसका सरोकार समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक आयामों से भी है। इसका उद्देश्य होता है कि किसी व्यक्ति को उसके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के लिए समर्थ बनाना और एक न्यायसंगत, निष्पक्ष और अहिंसात्मक समाज बनाने के लिए व्यक्तियों की मदद करना। गाँधी जी ने कहा था कि शिक्षा का उद्देश्य 'चरित्र निर्माण' होता है, क्योंकि यह बिलकुल स्पष्ट है कि तभी, सिर्फ तभी, कोई व्यक्ति समाज के कल्याण के लिए काम करने की नैतिक शक्ति और आत्मविश्वास हासिल करता है।

स्वतंत्रता के बाद, एक लोकतांत्रिक राज्य के रूप में हमने ऐसे संविधान को अपनाया जिसने हमें कुछ अधिकार दिए – स्वतंत्रता, समानता, भाईचारे और न्याय के अधिकार जिनका उपभोग कुछ कर्तव्यों के प्रति वचनबद्ध रहे बिना नहीं किया जा सकता। हम अपने बच्चों को यह सब सीखने में किस तरह मदद कर सकते हैं? शिक्षक और वयस्क लोग खुद इस राह पर चलना कैसे सीख सकते हैं? हम बच्चों की शिक्षा के लिए योजना बनाते वक्त इन सवालों से बच नहीं सकते। आज हम ऐसे वैश्विक संसार में जी रहे हैं जो तकनीकी रूप से बहुत विकसित व केन्द्रीकृत है। एक राष्ट्र के रूप में हम भी इन तकनीकी ऊँचाइयों तक पहुँच गए हैं। लेकिन एक राष्ट्र के रूप में, हम आज तक अपने सभी नागरिकों की पोषण

सम्बन्धी सुरक्षा, साफ व स्वच्छ जल आपूर्ति, प्राथमिक शिक्षा तथा बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं से जुड़ी आधारभूत समस्याओं को हल नहीं कर पाए हैं। एक राजनैतिक व सामाजिक तंत्र के रूप में हम संवेदनशील ढंग से तथा अपनी जरूरतों की प्राथमिकता के हिसाब से काम नहीं कर पाए हैं।

विभिन्न प्रभावशाली पदों पर आसीन बौद्धिक समुदाय के समस्त लोग समाज के सभी वर्गों के हित में नीतिगत निर्णय लेने और काम करने में प्रभावहीन प्रतीत होते हैं। ऐसे निर्णय लेने के बजाय इनमें से अधिकांश लोग मौजूदा व्यवस्था से खुद लाभ ले रहे हैं और उत्तरोत्तर ऐसा प्रतीत होता है कि उनका सरोकार सिर्फ अपने स्वार्थी लक्ष्यों को साधना है। इस वजह से ग्रामीण और शहरी क्षेत्र में शारीरिक श्रम करने वाले लोग निरन्तर हाशिए पर पहुँचते जा रहे हैं। इस बात को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि ऐसे पदों पर बैठे लोग यह नहीं समझ पाते हों कि उनके निर्णयों से सुविधाहीन लोगों पर तथा पर्यावरण पर लम्बे समय में क्या प्रभाव पड़ेगा। पर्यावरण की समस्याओं के बढ़ते स्वरूप का अर्थ है कि हमें 'विकास' और 'प्रगति' जैसे उन शब्दों के अर्थ पर ही सवाल खड़ा करना पड़ेगा जिन्हें बाजार की ताकतों द्वारा पूरे विश्व में बढ़ावा दिया जा रहा है।

दुनियाभर में, समृद्ध लोगों को और दरिद्र लोगों को इन अवधारणाओं पर पुनर्विचार करने की जरूरत है। समय आ गया है कि हम इस बात को समझें, कि 'मनुष्यता' हमारे द्वारा उपभोग की गई मात्रा में नहीं बसती है बल्कि मनुष्यता का अर्थ है कि हम न सिर्फ एक–दूसरे से जुड़ें, एक दूसरे को समझें, बल्कि उस पृथ्वी को भी समझें जो जीवित बने रहने में हमारी मदद करती आई है। समय आ गया है कि हम अपने लिए और अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए अपनी मिट्टी, पानी और हवा की सुरक्षा करें और उन्हें स्वच्छ रखें। इससे हमें चारों तरफ फैले अत्यधिक लालच से दूर हटने में मदद मिलेगी। यह अनिवार्य हो गया है कि हम ऐसी नई जीवनशैलियों के बारे में सोचें जिनमें ऊर्जा की खपत कम हो और जो पर्यावरण को सुरक्षित रखें। जो हमें व्यक्तिगत स्तर पर तथा सामाजिक स्तर पर भी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ रखें।

शिक्षा को समेकित और समग्र पद्धति की जरूरत है

हमारे बच्चों को यह हकीकत समझना होगी और इसे बदलने के लिए उन्हें सृजनशीलता से, जिम्मेदारी से और एक साथ मिलकर काम करना होगा। हमारी शिक्षा व्यवस्था, मोटेतौर पर व्यवहारिक रूप से निष्क्रिय और प्रतिबद्धता रहित रही है। इसके परिणामस्वरूप ऐसी शिक्षा व्यवस्था से निकलने वाले विद्यार्थियों का रवैया बेहद गैर–जिम्मेदाराना रहा है और उनके भीतर नागरिक बोध का अभाव रहा है। इसके अलावा, हमारी शिक्षा व्यवस्था हमारे बच्चों को बुनियादी कौशलों से दूर करती रही है। इस व्यवस्था में क्रान्तिकारी बदलाव लाने की सख्त जरूरत है। हमारे सामने चुनौती है कि इस व्यवस्था को समग्र बनाना ताकि इस व्यवस्था से सीखकर निकलने वाले विद्यार्थी कौशलों, मूल्यों और विश्लेषणात्मक क्षमता के साथ जिन्दगी जी सकें।

ऐतिहासिक रूप से, दुनिया के कई समाज विभिन्न कारणों से बचे रहे हैं, फले–फूले हैं या नष्ट हुए हैं। संसाधनों का पर्यावरण के नजरिये से टिकाऊ न रह सकने वाला प्रबन्धन तथा समाजों के भीतर व दूसरे समाजों के साथ असंतुलित मानवीय सम्बन्ध, ऐसे कुछ कारणों में से हैं। हमारा देश जटिल समस्याओं वाला देश है। हमें जरूरत है अतीत से सीखने की और ऐसे बदलाव करने की जिससे वर्तमान पीढ़ी और आने वाली पीढ़ी के लिए एक संवहनीय और टिकाऊ भविष्य का निर्माण हो सके। मेरे लिए, इसका अर्थ होगा ऐसे रास्ते की तरफ बढ़ना जो हर व्यक्ति और समाज को उत्पादक बनाएगा, सृजनात्मक रूप से प्रतिक्रिया करने वाला बनाएगा और ऐसे लोग जहाँ भी होंगे, पर्यावरण तथा संसाधनों की दृष्टि से संवहनीय स्थिति में होंगे। जरूरत है कि विज्ञान और तकनीकी आविष्कारों को इस तरफ मोड़ा जाए।

आइए हम यह सोच त्यागें कि 'बुनियादी मानवीय स्वभाव' लालची और प्रतिस्पर्धी है। हम खुद को सिर्फ उपभोक्ता मानकर न रह जाएँ। निश्चित ही हम खुद को एक ऐसे बुद्धिमान समुदाय के रूप में विकसित करने की कल्पना कर सकते हैं और उसके प्रति आत्मविश्वास रख सकते हैं, जो एक प्रजाति के रूप बेहतर ढंग से संगठित हो और वसुधैव कुटुम्बकम की सोच के अनुरूप हो।

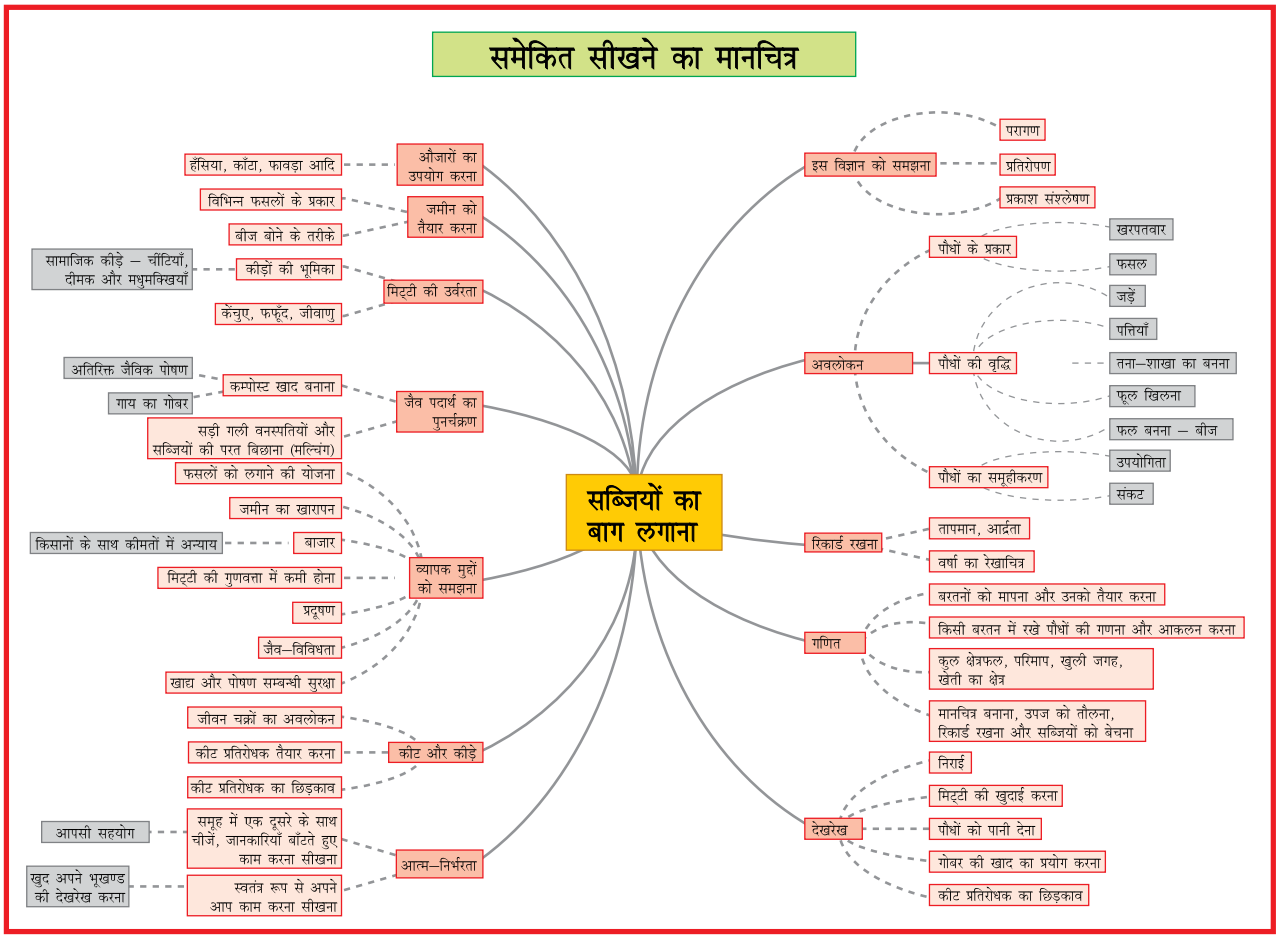

समेकित सीखने का मानचित्र

नर्सरी (पौधा घर) लगाते बच्चे

एक प्रयोग के द्वारा पानी का संरक्षण करते बच्चे

सुषमा शर्मा महाराष्ट्र के सेवाग्राम में स्थित आनन्द निकेतन की प्राचार्य व संस्थापक सदस्य हैं। यह स्कूल गाँधी जी के जीवन दर्शन से प्रेरित है। आनन्द निकेतन 3 से 13 साल तक के बच्चों का स्कूल है जो 2005 में गाँधी आश्रम के परिसर में मोहल्ला स्कूल के रूप में शुरू हुआ था। शिक्षा के बारे में गाँधी जी की सोच से प्रेरणा लेकर सुषमा अपनी टीम के साथ ठोस मनोवैज्ञानिक और संज्ञानात्मक बुनियादों पर समग्र और काम–आधारित शिक्षा के रास्ते खोजने और प्रयोग करने की कोशिश कर रही हैं। सुषमा ने पुणे विश्वविद्यालय से मानव शास्त्र में एम.एससी. की पढ़ाई की है तथा टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसिज, मुम्बई से प्राथमिक शिक्षा में एम.ए. किया है। वे पिछले 25 सालों से शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रही हैं। बुनियादी रूप से वे एक सक्रिय कार्यकर्ता हैं। उन्होंने एक स्वयंसेवी एजेंसी के माध्यम से 15 सालों तक वर्धा जिले के ग्रामीण इलाकों में काम किया है। उन्होंने एकीकृत ग्रामीण विकास के लिए काम किया है और उनका विशेष ध्यान स्कूल–पूर्व तथा प्राथमिक स्कूलों के बच्चों पर रहा है। उन्होंने संवहनीय विकास की ओर एकीकृत पद्धति का प्रयोग करते हुए महिलाओं, युवाओं तथा किसानों के साथ भी काम किया है। उनसे sushama.anwda@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

काम पर केन्द्रित शिक्षा का लक्ष्यः महाराष्ट्र के माध्यमिक स्कूलों में बुनियादी प्रौद्योगिकी परिचय कार्यक्रम

योगेश कुलकर्णी

धनाजी नाना विद्यालय, खिरोदा, जिला जलगाँव, महाराष्ट्र

अगस्त 2014

कक्षा 9 के विद्यार्थियों ने तय किया कि वे अपने स्कूल तथा छात्रावास की इमारतों का ऊर्जा लेखा परीक्षण करेंगे। उन्होंने बिजली की खपत को कम करने के विभिन्न तरीकों के बारे में खूब मंथन किया। उनके शिक्षकों ने उन्हें ऊर्जा लेखा परीक्षण के फार्म भरना पहले ही सिखा दिया था। विद्यार्थियों ने खुद को समूहों में बाँट लिया और फिर प्रत्येक स्थान पर कितनी बिजली खर्च हो रही है, इसे रिकार्ड किया। उन्होंने ध्यान दिया कि छात्रावास के शौचालयों और स्नानघरों में रात के समय लाइटें बन्द करने से बिजली की बचत की जा सकती है। विद्यार्थियों ने बिजली बचाने के कुछ तरीकों की संक्षिप्त सूची बनाई। इनमें से एक तरीका था छात्रावास में स्वचालित सर्किटों को लगाना। इसके लग जाने पर सिर्फ ताली बजाकर लाइट को बन्द या चालू किया जा सकता था। उन्होंने यह सर्किट बनाया और इसे लगा दिया। एक दूसरे समूह ने भी एक सर्किट बनाया और सड़क की लाइटों के लिए लाइट सेंसर लगा दिया जो सूरज की रोशनी की तेजी के मुताबिक जल और बुझ सकती थी। विद्यार्थियों ने 'अपने आप करिए' (डू इट यॉरसेल्फ : डी–आई–वाई) मार्गदर्शिका का इस्तेमाल किया और स्कूल में उपलब्ध उपकरणों के साथ इस सर्किट को बनाया। इसमें उन्हें उनके बिजली का काम सिखाने वाले प्रशिक्षक का मार्गदर्शन मिला। उन्होंने इस कार्य की लागत का भी हिसाब लगाया।

उन्होंने अलग–अलग प्रश्नों जैसे क्यों, क्या, कब, कहाँ और कैसे पर भी विचार किया। अलग–अलग पाठ्यपुस्तकों में इनके उत्तरों को ढूँढ़ा। पर ऐसे कई प्रश्न रह गए जिनके उत्तर उन्हें नहीं मिल पाए। विद्यार्थियों व शिक्षकों ने इन प्रश्नों पर, बड़े उत्साह से, 'HPNPDL' यानी 'हमें पता नहीं पर ढूँढ़ लेंगे' लिखकर चिह्नित कर दिया!

कृषि एम. पी. हाई स्कूल, जामगाँव, जिला अहमदनगर, महाराष्ट्र

अगस्त 2014

9वीं कक्षा के विद्यार्थियों ने अपनी कक्षा में खुद बिजली के तार डाले थे क्योंकि वे एल.सी.डी. प्रॉजेक्टर के लिए एक बिजली का पॉइंट चाहते थे। वे विज्ञान के अपने पाठ्यक्रम में 'विद्युत' का अध्ययन कर रहे थे। उनके शिक्षक ने उनसे विद्युत के तार के प्रसार का रेखाचित्र बनाने को कहा जिसमें विद्युत चिन्ह भी बने हों। इसके अलावा उनके शिक्षक ने उनसे तार डालने की लागत का आकलन करने को भी कहा। इसके लिए तार खरीदने में भी शिक्षक ने विद्यार्थियों की मदद की। इसी के साथ–साथ, इस विषय के शिक्षकों ने विद्युत प्रवाह, वोल्टेज, वाटेज, तार के आकार, अर्थिंग, साधारण फेज/ 3 फेज, इत्यादि सिद्धान्तों से विद्यार्थियों को अवगत कराया। इसके अलावा विद्यार्थियों ने विद्युत के इतिहास और फैराडे तथा एडीसन की कहानी के बारे में भी जाना। उन्होंने अपने अनुभव की एक रिपोर्ट भी लिखी।

गोपाल गाँधी आश्रमशाला, मनगाँव, जिला रायगढ़, महाराष्ट्र

दिसम्बर 2013

कक्षा में ईंधन के विभिन्न तापजनक मानों (कैलोरिफिक वैल्यू) को पढ़ाते हुए, विद्यार्थियों से लकड़ी, मिट्टी का तेल और एल.पी.जी. जैसे विभिन्न ईंधनों का इस्तेमाल करके खिचड़ी बनाने को कहा। उन्होंने समान मात्रा में चावल बनाया। उसमें कितना ईंधन खर्च हुआ तथा कितना समय लगा, इसके आँकड़े दर्ज किए। उन्होंने चावल बनाने में निकले धुएँ की मात्रा और बरतनों के काले होने जैसे अवलोकनों को भी दर्ज किया। उन्हें पता चला कि उनका लकड़ी का चूल्हा ईंधन की खपत के हिसाब से सबसे कार्यक्षमता वाला था। इसके बाद ऐसा होने के पीछे क्या कारण हैं, इसे लेकर चर्चा शुरू हुई।

परिणामस्वरूप विद्यार्थियों ने मिलकर एक धुआँ रहित चूल्हे का निर्माण करने के रचनात्मक कार्य को अंजाम दिया।

ये बुनियादी प्रौद्योगिकी का परिचय (आई.बी.टी.) कार्यक्रम के कुछ उदाहरण थे। ये कार्यक्रम चार राज्यों के 122 से भी ज्यादा स्कूलों में चल रहा है।

बुनियादी प्रौद्योगिकी का परिचय (आई.बी.टी.)

वैज्ञानिक से शिक्षाविद बने डॉ.एस.एस.कालबाग का इस बात में दृढ़ विश्वास है कि 'असली जीवन में कुछ करते हुए सीखना ही सीखने का प्राकृतिक तरीका है।' इसी तरह से हम अपनी मातृभाषा भी सीखते हैं। इसी ढंग से हम तैरना, खाना बनाना, गाड़ी चलाना, कम्प्यूटर चलाना सीखते हैं। दरअसल हम जो कुछ भी कर सकते हैं उसे हमेशा करते हुए ही सीखते है। यह तरीका इतना प्रभावी है कि यह स्कूल की पढ़ाई बीच में छोड़ देने वाले विद्यार्थियों को भी, बिना उनपर बोझ डाले, उन्हें उद्यमी बना देता है।

डॉ.कालबाग चाहते थे कि ऐसे तरीके ढूँढ़े जाएँ जिनके द्वारा इस पद्धति को मुख्यधारा की शिक्षा में शामिल किया जा सके। इस प्रकार, 1987 में आई.बी.टी. कार्यक्रम की कल्पना की गई और उसे लागू किया गया। यह एक व्यवसाय–पूर्व कार्यक्रम है जिसे, 1987–1990 के बीच महाराष्ट्र राज्य शिक्षा बोर्ड (एस.एस.सी.) की अनुमति से तीन स्कूलों में कक्षा 8 –10 तक एक प्रयोग के रूप में लागू किया गया था। 1990 में इसे वैकल्पिक विषय के रूप में स्वीकार कर लिया गया। 1990 से आज तक, आई.बी.टी. को विभिन्न भौगोलिक और आर्थिक क्षेत्रों के विभिन्न स्कूलों में लागू किया गया। हाल के समय में महाराष्ट्र सरकार ने आई.बी.टी. को RMSA व्यावसायिक योजना के अन्तर्गत एक केन्द्रीय विषय के रूप में शामिल कर लिया है।

आई.बी.टी. इस बात का बहुत अच्छा उदाहरण है कि किस तरह स्कूली शिक्षा में कोई भी मौलिक प्रयास स्कूलों में प्रयोग का मार्ग अपनाकर, मार्गदर्शक कार्यक्रम के रूप में बढ़कर अन्त में मुख्यधारा की शिक्षा का हिस्सा बन जाता है।

आई.बी.टी. कार्यक्रम में पूरी प्रकृति ही उसका पाठ्यक्रम है। इसे मोटेतौर पर चार खण्डों में विभाजित किया गया है –

इंजीनियरिंग, ऊर्जा–पर्यावरण, कृषि–पशुपालन, खाद्य प्रसंस्करण। विद्यार्थी इन शिक्षा–क्षेत्रों में प्रति सप्ताह एक दिन (स्कूल के समय का 20%) सामाजिक रूप से उपयोगी विभिन्न उत्पादक कार्य करते हैं। इन कार्यों के लिए जो प्रशिक्षक स्कूल आते हैं, वे साधारण जन ही होते हैं लेकिन उनमें अपनी बात को प्रदर्शन के माध्यम से बच्चों को समझा सकने की कला अवश्य होती है। काम की गतिविधियाँ पाठ्यक्रम के पहलुओं से जुड़ी होती हैं और विषय के शिक्षक, विद्यार्थियों को उनके द्वारा किए गए कार्य के पीछे काम करने वाले सिद्धान्तों को समझाते हैं। आई.बी.टी. कार्यक्रम के बुनियादी सिद्धान्त इस प्रकार हैं :

आई.बी.टी. के सिद्धान्त

1. विद्यार्थी 'करते हुए सीखना' के तरीके द्वारा सीखेंगे।
2. विद्यार्थी प्रकृति के बहुत सारे कौशल सीखेंगे।
3. स्कूल मामूली लागत पर लोगों को विभिन्न सेवाएँ उपलब्ध कराएगा।
4. प्रशिक्षकों के पास विद्यार्थियों को प्रदर्शन के माध्यम से अपनी बात समझाने का कौशल होना जरूरी है।

तालिका 1 : आई.बी.टी. के सिद्धान्त

आई.बी.टी. का प्रभाव

आई.बी.टी. कार्यक्रम का उसके विकास के हर चरण पर अलग–अलग एजेंसियों द्वारा मूल्यांकन किया गया। इनमें से कुछ हैं PSSCIVE, एन.सी.ई.आर.टी., आई.आई.टी.–बी, ईडब्ल्यूबी। इसके अलावा आन्तरिक रूप से VA द्वारा भी आई.बी.टी. कार्यक्रम का मूल्यांकन किया गया। इस कार्यक्रम से निम्नलिखित लाभ दर्ज किए गए हैं :

- स्कूल में विद्यार्थियों की दिलचस्पी बढ़ जाती है।
- विद्यार्थियों को काम की दुनिया की व्यापक समझ और अनुभव हासिल होते हैं।
- विद्यार्थियों की पाठ्यक्रम व पाठ्यचर्या की समझ बढ़ जाती है।

- कई स्कूलों में दाखिलों तथा विद्यार्थियों की उपस्थितियों में बढ़ोतरी दर्ज की गई है।
- इससे विद्यार्थियों को आगे की जिन्दगी के लिए अपनी जीवन वृत्ति या पेशा चुनने में मदद मिलती है।
- स्कूल एक जीता–जागता स्थान बन जाता है।

2009 में आई.बी.टी. अपनाने वाले विद्यार्थियों तथा आई. बी.टी. नहीं अपनाने वाले विद्यार्थियों का एक तुलनात्मक अध्ययन किया गया था। एक ही इलाके के तीन आई.बी. टी. स्कूलों व तीन गैर–आई.बी.टी. स्कूलों का चयन किया गया। उनका मूल्यांकन स्वीकृत पाठ्यक्रम तथा विद्यार्थियों से अपेक्षित योग्यताओं के अनुसार किया गया। ब्लूम के वर्गीकरण का उपयोग करके एक प्रश्नावली तैयार की गई। इस अध्ययन के नतीजे तालिका 2 में दिए गए हैं। यह देखा गया कि समझ, ज्ञान के उपयोग, विश्लेषणात्मक क्षमता, स्थिति के मूल्यांकन और रचनात्मकता जैसे मापदण्डों पर आई.बी.टी. के विद्यार्थियों का प्रदर्शन बेहतर था।

2012 में आई.बी.टी. कार्यक्रम का एक तृतीय पक्ष द्वारा स्वतंत्र मूल्यांकन किया गया। यह मूल्यांकन लैंड–हैंड–इण्डिया द्वारा किया गया था। उन्होंने निम्नलिखित प्रभावों को दर्ज किया।

- 49% आई.बी.टी.विद्यार्थियों (2011–2012) ने एस.एस. सी. के पश्चात तकनीकी पाठ्यक्रमों में दाखिला लिया। यह दर अखिल भारतीय नामांकन दर, 16-81%, से भी ज्यादा है और नियंत्रित समूह की नामांकन दर 20% से भी अधिक है।
- तकनीकी पाठ्यक्रमों में 14% लड़कियों ने दाखिला लिया जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों का सकल नामांकन अनुपात (जी.ई.आर.) 8-3% है। तकनीकी पाठ्यक्रमों में लड़कों के नामांकन की दर 38% है, जबकि उनका राष्ट्रीय जी.ई.आर. 13-7% है।
- उन 31% विद्यार्थियों में से, जो कक्षा 10 के बाद आगे की पढ़ाई नहीं कर रहे हैं, सिर्फ 15% ही बेरोजगार रहे। बाकी विद्यार्थियों को या तो रोजगार मिल गया है या वे स्वरोजगार कर रहे हैं या कृषि में संलग्न हैं।
- अपना उद्योग शुरू करने वाले/ खुद अपना रोजगार करने वाले विद्यार्थियों का प्रतिशत नियंत्रित समूहों के विद्यार्थियों से लगभग तीन गुना ज्यादा है।
- पढ़ाई छोड़ देने वाले लोगों का प्रतिशत 17% गिर गया है।

आई.बी.टी. कार्यक्रम महाराष्ट्र के अलग–अलग भौगोलिक क्षेत्रों में लागू किया जा रहा है। यह छत्तीसगढ़, गोवा, कर्नाटक, के कुछ स्कूलों में भी शुरू हो गया है। कई एन.जी.ओ. भी आई.बी.टी. कार्यक्रम को अपना रहे हैं और उसे लागू कर रहे हैं। इस तरह यह बात साबित हो रही है कि इस कार्यक्रम को अन्य जगहों पर भी दोहराया जा सकता है।

आई.बी.टी. कार्यक्रम की सफलता के कारण

आई.बी.टी. कार्यक्रम की सफलता के लिए निम्नलिखित कारक हैं :

1. पाठ्यक्रम : यह कार्यक्रम प्रकृति को ही अपने पाठ्यक्रम के रूप में निर्धारित करता है। यह पढ़ाए जाने वाले बुनियादी सिद्धान्तों और तकनीकों को मोटेतौर पर परिभाषित करता है। इसलिए यह पाठ्यक्रम लचीला है और इसे स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप ढाला जा सकता है।
2. सामुदायिक सेवाएँ : विद्यार्थी समुदाय के लोगों को विभिन्न प्रकार की ऐसी सेवाएँ प्रदान करते हैं जिनके लिए लोग उन्हें भुगतान करते हैं। विद्यार्थियों को वास्तविक जीवन की परिस्थितियों का प्रशिक्षण मिलता है। इससे कार्यक्रम को, लोगों की जरूरतों के हिसाब से, समय के हिसाब से चलने वाला व बदलने वाला बनाए रखा जा सकता है।
3. विषय के रूप में स्वीकार किया जाना : आई.बी.टी., 1987 में राज्य परीक्षा बोर्ड (एस.एस.सी.) की औपचारिक अनुमति के साथ समय–सारणी में अपने लिए निर्धारित घण्टों के साथ एक औपचारिक विषय के रूप में प्रारम्भ हुआ था, हालाँकि विज्ञान आश्रम इस कार्यक्रम को संचालित कर रहा था। वे इसमें निरन्तर नए पहलू जोड़ते गए और इसके साथ प्रयोग करते रहे। औपचारिक तौर पर इसे राज्य शिक्षा विभाग तथा व्यावसायिक शिक्षा व प्रशिक्षण निदेशालय की निगरानी तथा क्रियान्वयन प्रक्रिया

सूचना	समझ	उपयोग	विश्लेषणात्मक क्षमता	मूल्यांकन	रचनात्मकता
11-7%	22-6%	36-3%	20-9%	55%	63-9%

तालिका 2 : गैर–आई.बी.टी. विद्यार्थी के मुकाबले आई.बी.टी. विद्यार्थियों का प्रदर्शन

के अन्तर्गत संचालित किया गया। इससे सरकारी तंत्र में इस कार्यक्रम के महत्त्व को दर्शाने में मदद मिली और आई.बी.टी. को महाराष्ट्र राज्य के केन्द्रीय पाठ्यक्रम का हिस्सा बनने में भी मदद मिली।

4. प्रशिक्षक : आई.बी.टी. के क्रियान्वयन के लिए कुशल, तकनीकी रूप से योग्य प्रशिक्षकों की जरूरत होगी जो गाँव में हासिल कर पाना मुश्किल है। इसलिए प्रशिक्षकों के लिए औपचारिक योग्यता तय करने के बजाय आई.बी.टी. ऐसे प्रशिक्षकों को आमंत्रित करता है जिनके भीतर अपनी बातों को प्रदर्शन के माध्यम से समझाने की योग्यता हो। स्थानीय युवा उद्यमियों, जैसे बिजली का काम करने वाले, राजगीर, वस्तुओं को बनाने वाले कारीगरों आदि को चुना जाता है और उन्हें प्रशिक्षक बनाने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके अलावा उन्हें प्रोत्साहित किया जाता है कि वे राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के बुनियादी ग्रामीण प्रौद्योगिकी डिप्लोमा पाठ्यक्रम (डी.बी.आर.टी.) में अपना नामांकन कराएँ। इससे टिकाऊ रूप से स्थानीय मानव संसाधन निर्मित करने में मदद मिलती है।

कार्यक्रम के संचालन की लागत

निम्नलिखित नीतियों ने कार्यक्रम की लागत को कम रखने में मदद की :

क. लोगों को शुल्क के साथ सेवाएँ प्रदान करना : इससे प्रयोगों के लिए जरूरी कच्चे माल की लागत को कम करने में मदद मिलती है। सबसे जरूरी बात है कि विद्यार्थियों को वास्तविक जीवन का प्रशिक्षण मिलता है।

ख. कार्यक्रम के लिए शुल्क लेना : इससे कार्यक्रम में बच्चों के माता–पिता की भागीदारी सुनिश्चित होती है और वे कार्यक्रम के बारे में अवगत रहते हैं। कार्यक्रम की वर्तमान संचालन लागत 1000 रु. प्रति विद्यार्थी प्रति वर्ष है।

आई.बी.टी. कार्यक्रम की विषयवस्तु

भारत सरकार के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग ने 1987–1990 तक आई.बी.टी. की प्रारम्भिक परियोजना के लिए धनराशि प्रदान की थी। अभी भी यह विभाग बुनियादी तकनीकों पर आधारित संरचना पुस्तिकाओं के विकास को सहयोग दे रहा है। शिक्षकों की मार्गदर्शन पुस्तिकाओं (हैण्डबुक्स) को एस.एस.सी. बोर्ड द्वारा प्रकाशित किया जाता है। विज्ञान आश्रम ने कई वीडियो, पावरपॉइंट प्रस्तुतियाँ और पुस्तिकाएँ तैयार की हैं ताकि विद्यार्थियों तक संदेश पहुँचाने के लिए प्रशिक्षकों पर निर्भरता को कम किया जा सके। पिछले कुछ सालों में, विज्ञान आश्रम ने आई.बी.टी. के लिए मुक्त शिक्षा संसाधन ('ओपन ऐजुकेशन रिसोर्सेस' – ओ.ई.आर.) विकसित करना शुरू कर दिया है। ये ओ.ई.आर. ऐसी पाठ योजनाएँ हैं जो शिक्षकों को काम तथा विषय क्षेत्रों को समेकित करने में मदद करेंगी। ये ओ.ई.आर. इस वेबसाइट पर उपलब्ध हैं: www.learningwhiledoing.in

आई.बी.टी. कार्यक्रम की सीमाएँ

डॉ. कालबाग शिक्षा पर गाँधी जी के विचारों से प्रेरित थे। वे उत्पादक कार्यों के लिए 'उपयुक्त तकनीक' पर आधारित गतिविधियों का चयन करते हैं। ये उत्पादक कार्य पाठ्यक्रम के अपने विषयों के अनुरूप होते हैं। दुर्भाग्यवश हमारी शिक्षा व्यवस्था आई.बी.टी. की सम्पूर्णतावादी प्रकृति को समझने में विफल रही है। इसे हमेशा ही एक व्यावसायिक प्रशिक्षण के विषय के रूप में देखा गया है और आई.बी.टी. कार्यक्रम के शैक्षणिक महत्त्व पर लगभग कोई ध्यान नहीं दिया जाता।

स्कूली शिक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे विद्यार्थियों को उत्पादक कार्य से सम्बद्ध अकादमिक अंशों को पढ़ाएँ। विज्ञान व गणित में तकनीकी गतिविधियों को सिद्धान्तों से जोड़ना आसान होता है। ऐसी जीवन्त गतिविधियों को सामाजिक विज्ञानों और भाषाओं के पाठ्यक्रम के साथ जोड़ना एक मुश्किल काम है। स्कूली शिक्षक ऐसी जीवन्त गतिविधियों के आधार पर अध्ययन करने की दृष्टि से कक्षाओं को संचालित करने के लिए प्रशिक्षित नहीं होते। इससे पढ़ाने के उनके अपने कुछ तरीकों पर भी सवाल उठते हैं जो शिक्षकों को अप्रिय लगते हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि आई.बी.टी. कार्यक्रम को उत्पादक कार्य के इर्द–गिर्द सामाजिक विज्ञानों और भाषाओं को जोड़ने पर प्रयोग करने की जरूरत है।

नई तालीम, कार्य पर केन्द्रित शिक्षा, संरचनात्मक सोच, परियोजना–आधारित कार्य–पद्धति, गतिविधि–आधारित सीखना आदि जैसी सीखने की कार्यप्रणालियाँ दरअसल स्कूलों में करते हुए सीखने की आवश्यकता पर आधारित हैं। आई.बी.टी. कार्यक्रम औपचारिक स्कूलों में इस कार्य–पद्धति को लागू करने की कोशिश कर रहा है। इस कोशिश में विद्यार्थियों व स्कूलों की बड़ी संख्याओं को देखते हुए

हमारी वित्तीय सीमाओं पर भी विचार किया जा रहा है। पिछले 30 सालों में इस कार्यक्रम का बहुत विकास हुआ है। यह जरूरी है कि हम इसकी उपलब्धियों और सफलताओं को आगे बढ़ाएँ और इसकी खामियों को सुधारने पर काम करके शिक्षा व्यवस्था में बदलाव लाएँ।

डॉ. योगेश कुलकर्णी विज्ञान आश्रम के निदेशक के रूप में काम कर रहे हैं। वे ग्रामीण युवाओं, खासतौर पर बीच में स्कूल छोड़ चुके युवाओं को विभिन्न उपयोगी तकनीकों में प्रशिक्षित कर रहे हैं और उन्हें उनके अपने उपक्रम शुरू करने में मदद कर रहे हैं। उन्हें पूर्व–व्यावसायिक कार्यक्रम, 'इन्ट्रोडक्शन टू बेसिक टैक्नोलॉजी' का 100 से भी ज्यादा स्कूलों में प्रसार करने का श्रेय जाता है। वे 'वास्तविक जीवन की स्थितियों में करते हुए सीखने' की पद्धति को अपनाने वाले व उसके प्रबल समर्थक हैं। उन्होंने एम.आई.टी. (यू.एस.ए.) के सहयोग से पाबल में डिजिटल संरचानाओं के लिए एक फैब लैब (फैब्रिकेशन लेबोरेटरी) शुरू की है। उनसे vapabal@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

खण्ड ग

कुछ, बड़े स्तर के प्रयास

संवहनीय ढंग से जीना सीखना: पर्यावरण मित्र कार्यक्रम पर आधारित विचार

प्रमोद शर्मा और ऐनी ग्रेगरी

जागरूकता और शिक्षा के बीच क्या अन्तर है? हमारे यह सवाल पूछते रहने का कारण यह है कि पर्यावरण से जुड़ी चिन्ताओं का व्यापक स्तर पर लोगों को एहसास तो हुआ है, पर उन चिन्ताओं व समस्याओं का समाधान कैसे किया जाए इस पर बहुत कम विचार हुआ है। पर जब हम यह पूछते हैं कि क्या लोगों में जागरूकता लाने से इस समस्या का समाधान हो सकता है, तो फिर यह बात ध्यान में आती है कि इस सत्र में दुपहिया वाहनों से आने वाले अधिकांश लोगों ने हेलमेट क्यों नहीं पहन रखा था (यह अहमदाबाद की बात है, पर अधिकांश दूसरे स्थानों पर भी ऐसा ही हुआ होता)। तुरन्त ही इस बात का एहसास होता है कि हमें ऐसी शिक्षा की जरूरत है जिसे विद्यार्थी आत्मसात कर सकें, जो समस्याओं का निवारण कर सके और विद्यार्थियों को सिर्फ हेलमेट पहनने के फायदों से अवगत कराकर उस पर निबन्ध लिखने के बजाय उन्हें उसे कार्य रूप में परिणत करने में मदद करे।

यहाँ हम ऐसी शिक्षा की बात कर रहे हैं जो हमारे इकलौते घर, यानी इस ग्रह को बचाने के लिए काम आ सके, ऐसा ग्रह जो न सिर्फ हमें जीवन दिए हुए है, बल्कि ऐसी लाखों प्रजातियों का घर भी है जो चक्रीय व्यवस्थाओं में अजैव घटकों के साथ अन्तर्क्रियाएँ करके जीवन को सम्भव बनाते हैं। जरूरत है ऐसी शिक्षा की जो हर मनुष्य के लिए दीर्घकाल तक बने रह सकने वाले भविष्य का निर्माण करने के लिए जरूरी ज्ञान, कौशल, रवैयों और मूल्यों को हासिल करना सम्भव बनाए। इसका मतलब हुआ इस तरह के विचारों को समझना और अपने हाथ की छाप देना यानी इस ग्रह पर जीवन को लम्बे समय तक बनाए रखने के लिए खुद सक्रिय भूमिका निभाना।

री–सायक्लिड कागज बनाना सीखते विद्यार्थी

संवहनीय (सस्टेनेबिल – दीर्घकाल तक चल सकने वाले) विकास के लिए शिक्षा (ई.एस.डी.) यानी सीखने व सिखाने के सभी स्तरों पर संवहनीय विकास के महत्त्वपूर्ण मुद्दों को शामिल करना तथा इस उद्देश्य के साथ विद्यार्थियों को समर्थ बनाना कि वे अपने व्यवहार में परिवर्तन लाएँ और संवहनीय विकास के लिए काम करें। इस पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए, 2005–2014 को संवहनीय विकास के लिए शिक्षा का दशक (डी.ई.एस.डी.) बनाया गया है। इसके लिए यूनेस्को प्रमुख एजेंसी है।

संवहनीय विकास के लिए प्रदान की जाने वाली शिक्षा की मुख्य विशेषताएँ ये होती हैं :

- वह संवहनीय विकास के अन्तर्निहित सिद्धान्तों और मूल्यों पर आधारित होती है।
- उसका सरोकार संवहनीयता के सभी चार आयामों (पर्यावरण, समाज, संस्कृति और अर्थव्यवस्था) का कल्याण करना होता है।
- इसमें ऐसी विभिन्न शैक्षणिक तकनीकों का उपयोग किया जाता है जो सहभागिता आधारित सीखने तथा उच्च स्तर के सोचने के कौशलों को प्रोत्साहित करती हैं।
- वह जीवनपर्यन्त सीखने की प्रक्रिया को प्रोत्साहन देती है।
- वह स्थानीय रूप से प्रासंगिक और सांस्कृतिक रूप से उपयुक्त होती है।
- वह स्थानीय जरूरतों, दृष्टिकोण और स्थितियों पर आधारित होती है, लेकिन इस तथ्य को भी स्वीकार करती है कि स्थानीय जरूरतों को पूरा करने के उपायों के अकसर अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव व परिणाम होते हैं।

- उसके अन्तर्गत औपचारिक, गैर–औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा दी जाती है।
- उसमें संवहनीयता की अवधारणा की उभरती प्रकृति को स्थान दिया जाता है।
- विद्यार्थियों के सन्दर्भ, वैश्विक समस्याओं और स्थानीय प्राथमिकताओं के मुताबिक विषयवस्तु तैयार की जाती है।
- वह समुदाय–आधारित निर्णयों, सामाजिक सहिष्णुता, पर्यावरण प्रबन्धन की नागरिक क्षमताओं, किसी भी स्थिति में ढल सकने वाली विद्यार्थियों की श्रमशक्ति और एक अच्छे गुणवत्तापूर्ण जीवन को बढ़ावा देती है।
- यह शिक्षा अन्तर्विषयी है। कोई भी एक विषय अपने लिए ई.एस.डी. का दावा नहीं कर सकता, और
- इसके अन्तर्गत सभी विषय ई.एस.डी. में योगदान कर सकते हैं।

ई.एस.डी. की ये मूलभूत विशेषताएँ एक मौका प्रदान करती हैं क्योंकि इन्हें ऐसे विभिन्न तौर–तरीकों के द्वारा लागू किया जा सकता है जो स्थानीय परिस्थिति की वैश्विक जुड़ाव वाली विशिष्ट पर्यावरण–सम्बन्धी, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दशाओं को ध्यान में रखते हैं तथा हमारी शिक्षा व्यवस्था में सीखना और सिखाना कैसे होता है इसकी एक नई मिसाल बन सकते हैं। इसका एकमात्र व्यावहारिक तरीका बच्चों को ऐसी परियोजनाओं में शामिल करना है, जो इसलिए रची गई हों ताकि बच्चे वास्तविक जिन्दगी की समस्याओं को ज्ञान हासिल करने के साधन के रूप में देखने में समर्थ बनें और उनमें वांछित संवहनीय व्यवहार की तरफ ले जाने वाले मूल्यों व उच्च स्तर के संज्ञानात्मक कौशलों का विकास हो सके। अपने विचारों में यह पद्धति नई तालीम के काफी करीब है जिसमें वास्तविक जीवन की परिस्थितियों से मिलती–जुलती दशाओं में, उत्पादक कार्य में भागीदारी को प्रोत्साहित किया जाता है।

पर्यावरण मित्र : शिक्षा में 'हाथ की छाप' पद्धति

पर्यावरण मित्र कार्यक्रम अपने भीतर सी.ई.ई. (सेण्टर फॉर एनवायरनमेंट एजुकेशन – पर्यावरण शिक्षा केन्द्र) के स्कूली व्यवस्थाओं के साथ विभिन्न सन्दर्भों में 30 सालों से भी अधिक समय से काम करने के के अनुभवों को समेटे हुए है। संवहनीयता और जलवायु परिवर्तन की शिक्षा के लिए तैयार किया गया यह कार्यक्रम ई.एस.डी. को शिक्षा का माध्यम बनाता है। यह कार्यक्रम, 2010 में दो लाख स्कूलों के साथ जलवायु परिवर्तन की शिक्षा पर एक सफल 'पिक राइट (सही को चुनो)' अभियान, तथा पर्यावरण दूत के चयन के बाद शुरू हुआ। बच्चों द्वारा डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम को पर्यावरण दूत बनाया गया और इस अभियान ने जो जोश पैदा किया उसने शिक्षण के रूप में परियोजना आधारित सीखने की पद्धति को अपनाने वाले कार्यक्रम पर ध्यान केन्द्रित करने का एक अच्छा अवसर प्रदान किया। इस तरह हाथ की छाप (अपने हाथों से करके सीखने की) पद्धति संवहनीयता की तरफ उठाए जाने वाले कदमों में 6 से 9 तक की कक्षाओं के बच्चों की भागीदारी का प्रतीक बन गई। इस कार्यक्रम की पहुँच दो लाख से भी ज्यादा स्कूलों तक है और यह 15 भाषाओं में काम करता है। यह कार्यक्रम विभिन्न स्तरों पर 160 से भी ज्यादा संगठनों द्वारा इसमें भागीदारी किए जाने से समृद्ध बना है।

इस कार्यक्रम का जोर पारम्परिक तरीकों के बजाय ऐसी 'गतिविधियों' पर है जो पाठ्यक्रम से जुड़ी हों, ताकि बच्चे जिन्दगी के स्थानीय सन्दर्भों में 'हाथ की छाप' पद्धति की प्रासंगिकता को समझ सकें और उसके आधार पर कार्य कर सकें। एक तरह से यह तरीका, किसी भी आशंका के बिना, शिक्षक की भूमिका को चुनौती देते हुए उसे विद्यार्थियों के एक साथी के रूप में देखता है और एक नई संस्कृति की नींव डालने की कोशिश करता है, जिसका मंत्र है – 'मुझे यह नहीं पता, आओ हम मिलकर इसका पता लगाएँ'।

हैण्डपम्प के आसपास के हिस्से को साफ करते विद्यार्थी

इस गतिविधियों में लेखा–परीक्षण (सर्वेक्षण, साक्षात्कार, आदि), प्रदर्शन, खेल, क्षेत्र भ्रमण, प्रस्तुतियाँ, प्रयोग, औषधीय वनस्पतियों का उद्यान तैयार करना या अपशिष्ट पदार्थों के प्रबन्धन जैसी गतिविधियाँ शामिल हो सकती हैं जिनसे विद्यार्थियों को अपने निकट के परिवेश में अनुभवजन्य सीखने के द्वारा संवहनीयता से जुड़े विचारों को समझने

में मदद मिलती है। ऐसी पद्धति बच्चों को चीजों के बीच विभिन्न अन्तर्सम्बन्धों को वाकई में 'देखने' में मदद करती है। इससे उन्हें किसी समस्या से जुड़े लोगों के अलग–अलग नजरियों से उस समस्या को देखने का अवसर मिलता है। यह ज्ञान उन्हें उन लोगों की नजर से किसी समस्या के विभिन्न सम्भावित उपायों की तरफ सोचने में मदद करता है जो सीधे तौर पर उस समस्या को झेल रहे होते हैं। यह तरीका 'समस्या निवारण' के तरीके से अलग है और इसमें जोर सिर्फ पर्यावरण सुधार के बजाय उसकी प्रक्रिया पर होता है। जहाँ, सारा महत्त्व इसी बात का होता है कि विद्यार्थियों को किसी मुद्दे की सारी बारीकियाँ दिखाई दें जैसा कि जे. कृष्णमूर्ति ने कहा है, 'समस्या को समझना ही उसका आधा समाधान होता है'। किसी मुद्दे पर इस तरह के महत्त्वपूर्ण ज्ञान और दृष्टिकोणों को हासिल करने के बाद, उसके बारे में सोच विचार करके कदम उठाना आसान हो जाता है।

काम–आधारित शिक्षण को देखने के कुछ अनुभव और उसके तरीके

पानी के विषय पर आयोजित एक स्कूल परियोजना में विद्यार्थी पानी के विभिन्न पहलुओं जैसे उसका बहाव, उसका उपयोग, बरबादी, वर्षाजल के उपयोग की सम्भावनाएँ, पानी की गुणवत्ता आदि को समझ रहे थे। शिक्षक ने विद्यार्थियों के अलग–अलग समूह बनाकर उन्हें विभिन्न कार्य सौंप दिए। समझे जाने वाले पहलुओं में पानी का बहाव, अर्थात पानी कहाँ से आता है, उसका किस तरह उपयोग होता है और फिर वह कहाँ जाता है, इन बातों को भूगोल की शिक्षा से जोड़ा गया। हमारी संस्कृति और साहित्य में पानी के विषय को भाषा की कक्षा में जोड़ा गया, स्कूल की वर्षाजल संग्रहण की सम्भावित क्षमता को गणित की शिक्षा से जोड़ा गया तथा पानी की बरबादी को सरल अवलोकनों तथा बरबादी को रोकने के उपायों के बारे में सोचने से जोड़ दिया गया। यदि विद्यार्थियों को कोई टपकता हुआ नल दिखा है और उन्होंने यह आकलन कर लिया है कि एक दिन में उससे कितना पानी रिसता है, तो प्राचार्य को इस बात के लिए राजी करने का कदम उठाया जा सकता है कि वे नलों को दुरुस्त करवाएँ या इससे भी बेहतर होगा कि वे खुद नलों को ठीक करना सीखें और सिखाएँ। विद्यार्थियों ने पानी की गुणवत्ता के सूचकों जैसे पीएच स्तर, कठोरता आदि की भी पड़ताल की। इन गुणवत्ता सूचकों को बड़ी आसानी से विद्यार्थियों के रोजमर्रा के जीवन और स्वास्थ्य के लिए पानी के उपयोग से जुड़ी कई गतिविधियों के साथ जोड़ा जा सकता है। इससे विद्यार्थियों को मानकों के साथ इस पानी की तुलना करने में और यह बताने में मदद मिलती है कि उनके स्कूल का पानी पीने लायक है या नहीं! इस प्रक्रिया के द्वारा विद्यार्थी सीखना जारी रखते हैं और यही सीखना आगे उन्हें अपने प्रयासों को सही करने/ सुधारने/ बनाए रखने के लिए सही कदम उठाने में सशक्त बनाता है। इन सभी चीजों में एक बात आम है, इन्हें करने में बहुत मजा आता है, ये मिल–जुलकर किए जाने वाले और सोचने वाले काम हैं तथा इनमें विभिन्न विषयों की अवधारणाओं को समाहित कर लिया जाता है।

जैविक रसोई उद्यान में काम करते विद्यार्थी

कामों को अलग ढंग से देखना

हम जीवन के प्रति लोगों के अलग–अलग तरह के दृष्टिकोण देखते हैं। कुछ ग्रामीण स्कूलों में, काम करना सीखने के वातावरण का हिस्सा होता है, जहाँ पर्यावरण के लिए किए जाने वाले कार्यों से जुड़ी परियोजनाओं को स्कूल में सीखने का अभिन्न साधन माना जाता है। पश्चिम बंगाल के सागर द्वीप के धब्लत लक्ष्मण परिवेश स्कूल में किए जाने वाले ऐसे कई प्रयास स्कूली जीवन का हिस्सा हैं। अपशिष्ट पदार्थों को उनकी प्रकृति के मुताबिक अलग–अलग कर लिया जाता है। गीले जैविक अपशिष्ट को कम्पोस्ट खाद में बदलकर इसे वनस्पति उद्यान में उपयोग किया जाता है, जिसके उत्पाद को स्कूल के रसोईघरों में इस्तेमाल किया जाता है। स्कूल में बिजली के उपयोग की जगह सौर ऊर्जा का उपयोग किया जाता है जिसके उपकरण गाँव में ही लगे हुए हैं और इनका प्रबन्धन विद्यार्थियों के ही हाथ में है। सागर द्वीप के ही एक अन्य स्कूल में, स्थानीय समुदाय के विद्यार्थी स्कूल में ही आम की कलमें लगाना सीखते हैं। इसके माध्यम से उन्हें न सिर्फ जैव–विविधता और खेती के उम्दा तरीकों के बारे में सीखने को मिलता है, बल्कि यह तब उनकी आय का स्रोत भी बन जाता है जब वे इन आमों को खुले बाजार में

बेचते हैं। इसके अलावा इस प्रक्रिया के माध्यम से इन बच्चों को बाजारों, लागतों, आपूर्ति व माँग के बारे में भी सीखने को मिलता है। स्कूल में बड़ी उम्र के विद्यार्थी इस हुनर को सिखाने में छोटे विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करते हैं। इस तरह से अपनी पढ़ाई के दौरान वे लोग काम करते रहते हैं जिससे उन्हें आमदनी भी होती रहती है। ये दो उदाहरण उद्यमिता के पहलू को उजागर करते हैं जिससे विद्यार्थियों को अपने भीतर सशक्तीकरण का एहसास होता है। वे अपने स्कूल की ऊर्जा की खपत का प्रबन्ध करने के प्रति आश्वस्त प्रतीत होते हैं। दूसरी तरफ वे आम की कलम लगाने में अपने कौशल को लेकर भी आश्वस्त हैं जिससे उन्हें अपने परिवार की आय में योगदान करने का मौका मिलता है। साथ ही वे यह काम करते हुए अपनी शिक्षा को भी जारी रख पाते हैं।

धब्लत स्कूल का वनस्पति उद्यान

कई स्कूलों में विद्यार्थी भूमि के बड़े विस्तार पर पेड़ लगाने के अभियान चलाते हैं, जहाँ वे जमीन खोदना, पौधे लगाना, पानी देना आदि सभी काम करते हैं क्योंकि इन स्कूलों में आज भी गैर–शिक्षक कर्मचारियों की संस्कृति नहीं है और स्कूल का सारा काम विद्यार्थियों के बीच ही बँटा रहता है। ई.एस.डी. की चुनौती यह है कि विद्यार्थी बौद्धिक रूप से जुड़े बिना सिर्फ मशीनी कर्ताओं की तरह से हाथ से किया जाने वाला सारा काम करने के बजाय, इस दौरान पेड़ लगाने के महत्त्व को समझें, जिस प्रजाति का पौधा लगा रहे हों उसके बारे में जानें, स्थानीय परिस्थिति में उसके महत्त्व को समझें इत्यादि। पर्यावरण से जुड़े कार्यों की परियोजनाओं में बहुत सारा काम होता है और अन्वेषण से लेकर, खोज, विचार, कार्य, और चिन्तन के स्तर तक पहुँचते हुए यह और जटिल होती जाती है। दरअसल, संज्ञानात्मक और शारीरिक, दोनों स्तरों पर इस तरह से किए जाने वाले काम की जटिलता बढ़ती जाती है। उदाहरण के लिए, एक स्कूल द्वारा स्थानीय समुदाय को तथा कुछ किसानों को उनके तौर–तरीके (जैसे विद्यार्थियों द्वारा प्रदर्शित कम्पोस्ट खाद व प्राकृतिक कीटनाशक इस्तेमाल करने के तरीके) अपनाने के लिए प्रेरित करने में चार साल लग गए। कई स्कूलों के साथ हमारे अनुभवों की तरह यहाँ भी हमने पाया कि ऐसे अभियान को आगे बढ़ाने में प्रमुख भूमिका शिक्षक की ही रहती है जिसके अन्दर इस तरह का समर्पण और जज्बा हो और जो लगातार नए विचारों की तलाश में रहे।

चुनौतियों से पार पाना

हमारी औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के सामने खड़ी चुनौतियों में से एक इस बात को पहचानना है कि विद्यार्थियों को कौन सिखा सकता है। विद्यार्थी पौधों की स्थानीय प्रजातियों, उनके महत्त्व और उनके बचे रहने की दरों के बारे में स्कूल के माली से सलाह मशविरा क्यों नहीं कर सकते? क्या वह इन बातों को समझने के लिए सबसे सही व्यक्ति नहीं होगा/ होगी? क्या स्कूल में झाड़ू लगाने वाले व्यक्ति को इस बात की सबसे बहुमूल्य समझ नहीं होगी कि स्कूल अपने अपशिष्ट पदार्थ का क्या कर सकता है? परियोजना कार्यों तथा लोगों के साथ काम करने से प्राप्त हुए अनुभव के मूल्य के साथ समानुभूति रखने की और इससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात है इस मूल्य का एहसास करने की क्षमता को शिक्षकों व बच्चों के माता–पिता द्वारा बढ़ावा दिया जाना चाहिए। हमारे सामने पारम्परिक रूप से चिकित्सा करने वालों को भी शामिल करने के उदाहरण हैं, लेकिन ये बहुत विरले है और इनके साथ ज्यादा सतर्क रहने की जरूरत है।

दूसरी चुनौती है बहुविषयी या अन्तर्विषयी पद्धतियाँ जिनमें शिक्षकों और कक्षाओं के बीच सहयोग की जरूरत होती है ताकि बच्चे इस बदलाव की प्रक्रिया का प्रभावी ढंग से लाभ ले सकें। पर्यावरण की शिक्षा को रैलियों, अभियानों और कार्यक्रमों व सभाओं की शक्ल देना इसमें सबसे बड़ी रुकावट है। इसके अलावा, हमारे यहाँ विद्यार्थियों द्वारा चलाए जाने वाले ऐसे प्रयासों और परियोजनाओं के ज्यादा उदाहरण नहीं हैं जो कई विषयों में फैले हों तथा कई महीनों तक चलते रहें। यह सीखने की और शिक्षकों को दर्शाने की जरूरत है कि विद्यार्थियों द्वारा चलाई जाने वाली क्रियात्मक परियोजनाएँ कैसी दिखेंगी। सीखने के पूरे चक्र को पूरा होने में ऐसे सहयोगात्मक परिवेशों की जरूरत होगी जहाँ विद्यार्थियों को उनके भीतर छिपी पूरी सम्भावनाओं को तलाशने के लिए मार्गदर्शन मिले, अनुकरणीय व्यक्तियों का साथ मिले और

चीजों को अपनी मर्जी से करने की स्वतंत्रता मिले। सीखने की प्रक्रिया को लचीला, अनुकूलन योग्य होना चाहिए तथा वैश्विक व स्थानीय सोच को जोड़ सकना चाहिए।

ई.एस.डी. एक प्रक्रिया—उन्मुख पद्धति है और विद्यार्थियों तथा उनके परिवेश व सन्दर्भ को महत्त्व देकर यह शिक्षा को सशक्त बना सकती है। छोटे साक्ष्य बड़े साक्ष्यों की ओर ले जाते हैं। प्रत्यक्ष व दीर्घकालीन बदलावों को सामने आने में समय लगता है। पिछले कुछ सालों में, हम ऐसे प्रयासों के लिए स्कूलों और शिक्षकों के बीच ज्यादा खुलापन देख रहे हैं। पर्यावरण मित्र कार्यक्रम के अन्तर्गत हम जो भी प्रशिक्षण देते हैं उसका शिक्षकों के लिए बड़ा सन्देश यही है कि वे सिर्फ 'पर्यावरण' (अर्थात पर्यावरण के लिए होने वाले परिणाम) को ही न देखें बल्कि 'शैक्षणिक' परिणामों को भी देखें। शैक्षणिक परिणाम पेड़ लगाने के कार्यक्रम, कागज बचाने के अभियान, बिजली बचाओ दिवस के जरिए बदलाव ला सकते हैं और उन्हें स्थायित्व प्रदान कर सकते हैं।

Bibliography

1. UNESCO, web, September 21, 2014 <http://www.unesco.org/new/en/education/themes/leading-the-international-agenda/education-for-sustainable-development>
2. Sharma, Pramod, Gregory, Annie and Sinha, Ritesh, Making Environmental Education Works, Web, World Environment Education Congress 2013. <http://www.weec2013.org/adminweec/frontend.php?lang=EN&mod=program&act=detail_abstract&id=202&idA=667>
3. NCERT. "Position paper, National Focus Group on Work and Education, NCERT 2005, Print.
4. CEE Paryavaran Mitra programme, web, September 21, 2014 <http://www.paryavaranmitra.in>

पर्यावरण मित्र, पर्यावरण शिक्षा केन्द्र द्वारा भारत सरकार के पर्यावरण, वन तथा जलवायु परिवर्तन मंत्रालय व आर्सेलर मित्तल, इण्डिया के साथ की गई भागीदारी का संयुक्त प्रयास है। और अधिक जानकारी के लिए www.paryavaranmitra.in देखें।

ऐनी ग्रेगरी 2010 से पर्यावरण मित्र कार्यक्रम सचिवालय में कार्यक्रम अधिकारी हैं। वे 'यंग लीडर फॉर चेंज' नामक प्रयास में शामिल रही है जो स्थानीय समस्याओं को सुलझाने वाली परियोजनाओं में विद्यार्थियों की सहभागिता को सभी भागीदारों के समक्ष रखने का काम करता है। उन्होंने मिशीगन विश्वविद्यालय के प्राकृतिक संसाधन और पर्यावरण स्कूल से व्यवहार, शिक्षा, और संवाद विषय में स्नातक स्तर की पढ़ाई की है। उनसे annie.gregory@ceeindia.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

प्रमोद कुमार शर्मा पर्यावरण मित्र कार्यक्रम का सचिवालय देख रहे हैं। एक स्कूल शिक्षक के रूप में शुरुआत करके, आज उनके पास स्कूली व्यवस्थाओं से जुड़े रहने का 16 सालों का अनुभव है। वे भूटान, नेपाल और मालदीव में उनकी स्कूल व्यवस्थाओं के अन्दर पर्यावरण शिक्षा को मजबूत करने के लिए भेजे गए विशेषज्ञ दलों के सदस्य रहे हैं। उन्होंने UNCCD,CSD और DESD को भेजी गई भारत की राष्ट्रीय रिपोर्ट को तैयार करने में भी अपना योगदान दिया है। उनसे pramod.sharma@ceeindia.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अर्थियन कार्यक्रम : काम और शिक्षा के नजरिए से

शाहीन शाशा और श्रीकान्त श्रीधरन

अर्थियन संवहनीयता (मानव जीवन को दीर्घकाल तक बनाए रखना) की शिक्षा का एक ऐसा कार्यक्रम है जिसे विप्रो द्वारा स्कूलों और कॉलेजों के लिए चलाया जा रहा है। इस लेख के उद्देश्यों के लिए हम आगे की ओर बढ़ते हुए, सिर्फ स्कूल के कार्यक्रम को समझेंगे। अर्थियन, जो अब अपने चौथे संस्करण में है, एक वार्षिक कार्यक्रम है जिसके दो चरण होते हैं – पहले चरण में विद्यार्थियों के दल (शिक्षकों के मार्गदर्शन में) एक गतिविधि–आधारित शिक्षा कार्यक्रम में भाग लेते हैं और जो दस स्कूल तुलनात्मक रूप से बेहतर प्रदर्शन करते हैं उन्हें पुरस्कार के लिए चयनित कर लिया जाता है; दूसरे चरण में, अर्थियन दल संवहनीयता शिक्षा को आगे बढ़ाने के लिए पाठ्यक्रम के स्तर पर, स्कूल स्तर पर तथा कक्षा के स्तर पर चुनिन्दा स्कूलों के साथ मिलकर काम करता है।

संवहनीयता शिक्षा और गतिविधि–आधारित अर्थियन कार्यक्रम

इस सन्दर्भ में 'संवहनीयता' शब्द का आशय हमारे इस ग्रह, पृथ्वी, पर मनुष्य जाति के अस्तित्व को बनाए रखने से जुड़ा है। यद्यपि संवहनीयता के विचार के बारे में लोग अलग–अलग व्याख्याएँ करते हैं, पर इस लेख और इस कार्यक्रम के उद्देश्य की दृष्टि से हम इसकी सबसे प्रचलित समझ (जो ब्रंड्टलैंड आयोग रिपोर्ट, 1987 से ली गई है) को उधार ले सकते हैं और संवहनीयता को 'भविष्य की पीढ़ियों की जरूरतों को पूरा करने की उनकी क्षमता से खिलवाड़ किए बगैर, वर्तमान पीढ़ी की जरूरतों को पूरा करना' के रूप में परिभाषित कर सकते हैं।

हमारी जिन्दगियाँ हमारे बिलकुल निकट के परिवेश के संसाधनों और दशाओं पर ही नहीं बल्कि हमसे बहुत दूर स्थित स्थानों के संसाधनों और दशाओं पर भी अधिकाधिक निर्भर होती जा रही हैं। इसके अलावा, हमारी जिन्दगी को चलाने वाले विविध संसाधन एक–दूसरे के साथ एक उलझे हुए जाल की तरह से जुड़े हुए हैं। स्कूल में, हम इन भिन्न–भिन्न पहलुओं को ऐसे अलग–अलग अध्यायों या अलग–अलग विषयों में सीखते हैं, जो अकसर एक–दूसरे से पृथक होते हैं। परिणामस्वरूप, अकसर हम यह नहीं देख पाते कि ये पहलू कैसे एक–दूसरे पर निर्भर करते हैं और एक–दूसरे के पूरक होते हैं। दूर–दराज की स्थितियों या वैश्विक स्थितियों पर स्थानीय बातों की निर्भरता, और यह अन्तर्सम्बन्धित प्रकृति, ये दो ऐसे प्रमुख कारण हैं जिनकी वजह से संवहनीयता एक जटिल विषय बन जाता है। इसके अलावा, जटिल सामाजिक समस्याएँ क्यों सामने आती हैं और उन्हें कैसे सुलझाया जा सकता है, इसके बारे में विभिन्न साझेदारों के दृष्टिकोण अकसर एक–दूसरे से अलग होते हैं। अब जब हम निरन्तर बढ़ते पारिस्थितिकीय और सामाजिक विघटन तथा अनिश्चितताओं के युग में दाखिल हो रहे हैं, तो शिक्षा बच्चे को इस काबिल बना सकती है कि वह समस्याओं को, चीजों की अन्तर्सम्बन्धित प्रकृति को तथा समस्या के कारण और परिणाम के बारे में लोगों के विभिन्न दृष्टिकोणों को समझ सके व दूसरों के सहयोग के साथ उसके सार्थक समाधान की तरफ बढ़ सके। संवहनीयता शिक्षा का यही अर्थ है।

अर्थियन 2013 का गतिविधि–आधारित कार्यक्रम पानी के विषय पर केन्द्रित था। पानी किसी भी बच्चे की रोजमर्रा के जीवन की ठोस वास्तविकता है और पानी का संरक्षण एक प्रमुख संवहनीयता समस्या है। यह कार्यक्रम इस विषयसूत्र का उपयोग करते हुए, संवहनीयता शिक्षा कार्यक्रम विद्यार्थियों को एक जीवन्त अनुभव, विचार और गहरी समझ देने की कोशिश करता है। इस कार्यक्रम में विद्यार्थी अपने ही स्कूल परिसर के भीतर पानी के विभिन्न स्रोतों की पहचान करते हैं। पानी के उपयोगों का परिमाण निकालते हैं और उपयोग के तौर–तरीकों की पहचान करते हैं तथा पानी की गुणवत्ता का आकलन करते हैं। उन्हें इस बात के लिए प्रेरित किया जाता है कि जो कुछ भी वे इन गतिविधियों में सीखें उसे प्रश्नों के माध्यम से जोड़ने का प्रयास करें जैसे 'पानी की गुणवत्ता उसके स्रोत के साथ किस प्रकार जुड़ी होती है?', 'अलग–अलग स्रोतों से लिए गए पानी का इस्तेमाल कैसे होता है?', 'क्या पानी और ऊर्जा या पानी और जैव विविधता के बीच कोई सम्बन्ध है?'

इन गतिविधियों का मूल उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी 'पीछे से आ रहे रास्ते को खोजना' तथा 'बिन्दुओं को मिलाना' सीख लें। संवहनीयता की सोच के अन्तर्गत ये दो महत्त्वपूर्ण विचार हैं। 'रास्ता खोजना' यानी हम जो भी चीज इस्तेमाल करते हों या जो भी काम करते हों, चाहे वह पानी का उपयोग हो, भोजन बनाना हो, खेती हो, सफाई व्यवस्था हो या फिर उपग्रह संचार हो, उसमें वस्तुओं और ऊर्जा (इसमें अपशिष्ट पदार्थ भी शामिल हैं) के शुरू से आखिर तक पूरे प्रवाह को समझना। बिन्दुओं को मिलाने से आशय है पानी, ऊर्जा, भोजन जैसे क्षेत्रों में आपसी सम्बन्धों को समझना और हमारे जीवन से उनके जुड़ाव की, उनकी सीमाओं (अगर हों तो) की, सीमाओं के कारणों और प्रभावों आदि की एक समेकित समझ विकसित करना। इस प्रकार का सीखना संवहनीयता शिक्षा की बुनियाद है क्योंकि ठोस और व्यापक सर्वांगीण समझ के आधार पर ही संवहनीयता के लक्ष्य को हासिल किया जा सकता है।

अर्थियन 2013 से प्राप्त हुए कुछ अनुभव और विचार

यह सब जानते हैं कि पानी जीवन के लिए अत्यावश्यक एक दुर्लभ और कीमती संसाधन है। पर हम पानी के बारे में कितना 'जानते' हैं और हमारी यह जानकारी व समझ हमारी क्रियाओं को किस प्रकार प्रभावित करती है?

स्कूल परिसर में पानी के मार्ग का मानचित्रण, उसके स्रोतों की पहचान करने, उसकी खपत को मापने, रिसावों को ढूँढ़ने तथा पानी की गुणवत्ता की जाँच करने जैसे कार्यों से विद्यार्थियों को पानी को बहुत नजदीक से समझने का मौका मिला जिससे उन्हें पानी के सम्बन्ध में नए दृष्टिकोण विकसित करने में मदद मिली। कई विद्यार्थियों के लिए तो उनके द्वारा स्कूल परिसर या घरों में उपयोग किए जाने वाले पानी की मात्रा को मापना ही एक रहस्योद्घाटन जैसा था। उनके पूर्व आकलन तथा पानी की वास्तविक मापी गई खपत में अकसर बहुत अधिक अन्तर निकलता था। इन मापों से उनमें मात्राओं की सही समझ विकसित करने में मदद मिली। पीने में या खाना बनाने में कितना पानी उपयोग होता है; जब कोई नल खुला रह जाए या दिन भर बूँद–बूँद करके पानी गिरता रहे तो कुल कितना पानी बरबाद हो जाता है। उन्होंने पानी की गुणवत्ता की जाँच की और चकित हुए कि एक स्रोत से आने वाले पानी की गुणवत्ता किसी दूसरे स्रोत से आने वाले पानी की तुलना में कमतर क्यों है। उन्होंने इसे सुधारने के तरीके खोजना शुरू कर दिए। कुछ विद्यार्थियों ने स्कूल में ही पानी की खपत को कम करने के अभियान शुरू किए, कुछ विद्यार्थियों ने स्कूल प्रशासन से कहकर पानी के रिसावों को दुरुस्त करवाया। पानी के प्रति उनकी सजगता इतनी अधिक हो गई थी कि उनमें से कइयों का यहाँ तक कहना था कि अगर उन्हें कहीं से पानी टपकने की आवाज आ जाती तो वे तब तक चैन से नहीं बैठ पाते थे जब तक वे टपकने वाले उस नल को ढूँढ़कर बन्द नहीं कर देते थे। ऐसा प्रतीत हुआ कि इस गतिविधि में शामिल हुए अधिकांश बच्चों ने इस अनुभव से कुछ सीखा, कुछ किया और उनके आचरण में कुछ बदलाव हुआ।

सारी कहानियाँ सकारात्मक ही नहीं थीं। कुछ विद्यार्थियों का ध्यान इस ओर गया कि उनके पास का तालाब प्रदूषित था और यह भी कि उनके स्कूल से निकलने वाला गन्दा पानी उसी तालाब में मिलाया जा रहा है, लेकिन फिर भी वे लोग इन दोनों बातों में सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाए। कई मामलों में हमने देखा कि गतिविधियों को एक–दूसरे से जोड़ा नहीं गया या जरूरी अन्तर्सम्बन्ध नहीं बनाए गए। अधिकांश मामलों में, इस कार्यक्रम के लक्ष्य के मुताबिक सीखने के परिणामों के पूरे विस्तार को हासिल नहीं किया जा सका। इसके पीछे विभिन्न कारण हो सकते हैं जैसे कार्यक्रम की रूपरेखा में कमियाँ या फिर शिक्षकों को पर्याप्त सहयोग न मिल पाना। पर यह अनुभव इस बात को दर्शाता है कि यदि ऐसी गतिविधि की रूपरेखा सही हो और उसे सही ढंग से चलाया जाए तो उसमें सीखने की कितनी सम्भावनाएँ छिपी रहती हैं।

यह कार्यक्रम पाठ्यक्रम से किस प्रकार जुड़ पाता है?

पानी के स्रोत, वर्षा, भूजल, स्थलाकृति और मानचित्रण (भूगोल), जल प्रदूषण, उसका परीक्षण और निस्पन्दन या छनना (रसायन शास्त्र), पानी के संग्रहण की सम्भावनाओं का आकलन करना और इन आकलनों की तकनीकें सीखना (गणित), ये कुछ ऐसी अवधारणाएँ और कौशल हैं जो ऊपर वर्णित गतिविधियों से जुड़े हुए हैं। कोई दिलचस्पी लेने वाला शिक्षक इन बिन्दुओं में और जोड़ स्थापित कर सकता है और बच्चों का उस क्षेत्र में पानी के सामाजिक व ऐतिहासिक उपयोगों से परिचय करा सकता है, इन उपयोगों को स्थानीय जैव–विविधता से जोड़कर दिखा सकता है और वर्षा के बदलते स्वरूपों या जलवायु परिवर्तन और ऊर्जा से जुड़े वृहत मुद्दों से उन्हें अवगत करा सकता है।

ऊपर उल्लिखित विचारों में से कोई भी विचार अर्थियन द्वारा सबसे पहली बार सामने नहीं रखा गया है, क्योंकि ये

पहले से ही पाठ्यक्रम में मौजूद हैं। दिलचस्प चीज शायद इस कार्यक्रम की यह माँग है कि विद्यार्थी इन विचारों को समेकित रूप से लेते हुए उन्हें अपने परिवेश में पानी जैसी कोई वास्तविक या ठोस चीज पर लागू करें। इन विचारों और अवधारणाओं को एक साझा विषय के अन्तर्गत जोड़ने से इनकी और इनके अन्तर्सम्बन्धों की समझ बेहतर होती है। इन गतिविधियों की रिपोर्ट प्रस्तुत करने की प्रक्रिया में लिखना और पढ़ना भी होता है। इससे बच्चों को मौका मिलता है कि इन गतिविधियों से उन्होंने जो कुछ सीखा, उसे वे अपनी भाषा के माध्यम से प्रगट कर सकें। इसके अलावा, समूहों में दूसरे बच्चों और शिक्षक के साथ काम करने से उनके लिए सीखना और करना और मजेदार व सहज हो जाता है। इससे उनके भीतर योजना बनाने की, संगठन बनाने की, समूह में कार्य करने की, बारीकी से चीजों का निरीक्षण करने की, प्राप्त की गई जानकारियों को दर्ज करने की और उन्हें लिखित रूप में प्रस्तुत करने की क्षमताएँ विकसित होती हैं।

इस प्रकार अर्थियन कार्यक्रम, स्कूल परिसर में पानी की स्थिति की समग्र रूप से समझ प्रदान करने के लिए तैयार की गई एक–दूसरे से जुड़ी हुई गतिविधियों की शृंखलाओं के माध्यम से, पाठ्यक्रम के ही विचारों और उद्देश्यों को आगे बढ़ाता है।

शिक्षण के रूप में उत्पादक कार्य

काम और शिक्षा, आमतौर पर रोजगार तथा व्यावसायिक शिक्षा से जुड़ी बात है। उत्पादक काम को अकसर उत्पादन (वस्तुओं और सेवाओं का) को तथा व्यावसायिक व कामकाजी शिक्षा को आगे बढ़ाने वाली क्रिया के रूप में देखा जाता है, यानी ऐसा ज्ञान और कौशल हासिल करना जो रोजगार प्रदान कर सके। लेकिन, उत्पादक कार्य को मोटेतौर पर सामाजिक उपयोगिता वाली व्यावहारिक व सक्रिय गतिविधि के रूप में भी देखा जा सकता है। इस तरह देखे जाने पर हम पाते हैं कि काम और शिक्षा के विचारों में तथा अर्थियन द्वारा उपयोग किए गए सीखने के गतिविधि–आधारित तरीके में समानताएँ हैं।

अर्थियन की गतिविधियाँ पानी जैसे किसी महत्त्वपूर्ण मुद्दे के स्थानीय सन्दर्भ की व्यावहारिक समझ विकसित करने के लिए तैयार की जाती हैं। ये गतिविधियाँ पानी से जुड़ी जरूरतों और खामियों के बारे में तथा दूसरे क्षेत्रों से उनके अन्तर्सम्बन्धों के बारे में जागरूकता पैदा करती हैं। साथ ही कुछ ऐसे कौशलों को विकसित करने में मदद करती हैं जो इन जरूरतों और खामियों को हल करने में उपयोगी साबित हो सकते हैं। इसके द्वारा विद्यार्थियों को एक ऐसे विषय के बारे में सीखने का और दिलचस्पी लेने का प्रोत्साहन मिलता है जो सामाजिक रूप से बेहद प्रासंगिक है।

अर्थियन कार्यक्रम की गतिविधियों की संरचना के पीछे मूलभूत विचार प्रायोगिक ढंग से सीखना या करके सीखना है। यही 'काम और शिक्षा' का अन्तर्निहित सिद्धान्त है। बच्चे कार्यों को खुद ही करने के अनुभव द्वारा सीखने को आत्मसात कर पाते हैं और इसका प्रभाव इतना गहरा और दीर्घकालिक होता है जैसा सिर्फ प्रयोगात्मक ढंग से सीखने में हो सकता है।

इस तरह हम कह सकते हैं कि अर्थियन कार्यक्रम में उत्पादक कार्य के द्वारा ज्ञान, कौशल और मूल्यों के मिश्रण को हासिल कर पाने की कोशिश की जाती है। यह 'काम और शिक्षा' के सिद्धान्त (विद्यार्थी के दिमाग, उसके दिल और उसके हाथों को साथ में लाकर सीखने को और अधिक एकीकृत करना) के साथ भलीभाँति जुड़ जाता है। पाठ्यपुस्तकों और कक्षाओं में हम अकसर ज्ञान को विभिन्न शाखाओं में वर्गीकृत कर देते हैं। इन्हें एक–दूसरे से पृथक करके पढ़ाते हैं तथा सीखने को कलम और कागज वाली परीक्षाओं के आधार पर आँकते हैं। लेकिन जीवन सम्पूर्ण व अविभाज्य होता है तथा इन विषयों के परे भी उसका अस्तित्व है। जीवन में लागू किए जाने पर ही ज्ञान सच्चा बनता है। हम मानते हैं कि ऐसी जमीन से जुड़ी हुई और परिस्थिति–आधारित सीखने की गतिविधियाँ बच्चों के भीतर विभिन्न विषयों में सीखी गई बातों को एक साथ सम्पूर्णता में देखने व उन्हें जीवन में लागू करने की क्षमता विकसित करेंगी।

हम इस बात पर जोर देना चाहेंगे कि इस प्रकार से सीखने–सिखाने का तरीका पाठ्यपुस्तकों या अन्य स्रोत सामग्री की जरूरत को या फिर विषयों को सीखने की आवश्यकता को अस्वीकार नहीं करता। इस तरह से गतिविधि–आधारित सीखना पाठ्यपुस्तकों और विषयों से हासिल किए गए ज्ञान और समझ के पूरक के रूप में कार्य करता है तथा उसे और ठोस बना देता है।

आगे की राह

यदि पानी पर आधारित सरल गतिविधियों का बच्चों के सीखने पर सकारात्मक असर पड़ सकता है, तो यह मानना वाजिब लगता है कि सीखने की ऐसी प्रक्रिया के कार्यक्षेत्र और पैमाने का विस्तार करना सीखने के कई और क्षेत्रों के लिए भी बेहद लाभकारी होगा। ऐसी परियोजना–

आधारित एकीकृत गतिविधियाँ, ज्ञान और कौशलों के सर्वांगीण विकास को प्रोत्साहित करते हुए, हमारे बच्चों के लिए सीखने को और ज्यादा व्यावहारिक, प्रासंगिक और वास्तविक यानी ज्यादा प्रभावी बनाएँगी। इससे शिक्षकों को भी सतत और व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.) के लिए पर्याप्त मौके मिलते हैं। दरअसल, सी.सी.ई. के लिए नियत समय को सीखने की ऐसी परियोजना–आधारित गतिविधियों के लिए प्रभावी ढंग से इस्तेमाल किया जा सकता है।

कक्षा में सीखने की ऐसी गतिविधि आयोजित करने से शिक्षक पर कोई अतिरिक्त माँग नहीं लादी जाती। शिक्षक को सिर्फ 'किताब के मुताबिक चलने' के अपने रवैये से हटकर ऐसी परियोजनाओं और अनुभवों की पहचान करना होगी जो उसके विद्यार्थी समग्र ढंग से सीख सकें। शिक्षक को परियोजना के नियोजन और उसके क्रियान्वयन में भी बच्चों की मदद करना होगी, कार्यों को करने के प्रभावी तरीके तलाशने में उनकी मदद करना होगी और यह सुनिश्चित करना होगा कि सीखी जाने वाली अवधारणाओं और कौशलों को बच्चे वाकई आत्मसात करें, उन्हें व्यवहार में लाएँ। इस प्रकार, इस तरह के कार्यक्रम को सफल बनाने में शिक्षक एक महत्त्वपूर्ण भागीदार होता है।

अर्थियन कार्यक्रम के तहत, संसाधन सामग्री, जैसे जल गतिविधि पुस्तिका और स्रोत पुस्तक के द्वारा शिक्षक को इस प्रक्रिया में सहयोग दिया जाता है। अर्थियन की योजना है कि आने वाले सालों में पानी और अन्य विषयों पर अधिक गतिविधि–आधारित कार्यक्रम विकसित किए जाएँ। अपने दूसरे चरण में, अर्थियन कार्यक्रम चुने हुए स्कूलों के साथ शिक्षक क्षमता विकसित करने के लिए भी काम करता है, ताकि इस तरह की शिक्षण पद्धति को और गहराई में ले जाया जा सके। हम स्कूलों, शिक्षकों, शिक्षा व्यवस्था तथा शिक्षा से जुड़े वृहत समुदाय के साथ होने वाले इन अनुभवों से निकलने वाले शिक्षण का विस्तार करने तथा उसे और लोगों के साथ बाँटने की आशा करते हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में पहले से ही ऐसे विचारों को समाहित किया गया है। दरअसल, अर्थियन कार्यक्रम अन्य उद्देश्यों के अलावा अपनी प्रेरणा, जीवन परिवेश और सीखने पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के पोजीशन पेपर से लेता है। हमें इस बात का भी भरोसा है कि ऐसे कई अन्य शिक्षक और स्कूल हैं तथा ऐसे कई प्रयास हो रहे हैं जहाँ इस तरह की सोच को व्यवहारिक रूप दिया जा रहा है। लेकिन इन विचारों को शिक्षा व्यवस्था के साथ जोड़ने के लिए सेवा–पूर्व व सेवा के दौरान होने वाले शिक्षक प्रशिक्षण में, पाठ्यपुस्तकों और सीखने–सिखाने की बाकी सामग्री में तथा विश्वसनीय सी.सी.ई. में व्यापक सर्वांगीण सुधार किए जाने की जरूरत है। इनका लक्ष्य स्कूलों में समेकित व गतिविधि–आधारित तरीके से सीखने–सिखाने के लिए अधिक गुंजाइश और मौके प्रदान करना है। इससे शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिए सीखने–सिखाने की प्रक्रिया और ज्यादा समेकित, प्रासंगिक और आनन्ददायी हो जाएगी।

दोनों लेखक इस लेख को लिखने में उनके साथियों, अभिजीत जकारिया और आरती हनुमनथप्पा द्वारा दिए गए योगदान के लिए उनके आभारी हैं।

श्रीकान्त श्रीधरन और **शाशा शाहीन** विप्रो द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में की गई सामाजिक पहल, विप्रो एप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स का हिस्सा हैं। वे स्कूलों और कॉलेजों के लिए तैयार किए गए विप्रो के संवहनीयता शिक्षा कार्यक्रम, अर्थियन की रूपरेखा तय करने वाले और उसे चलाने वाले केन्द्रीय दल के सदस्य हैं। उनसे sreekanth.sreedharan@wipro.com पर तथा shaheen.shasa@yahoo.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

ग्रीन स्कूल कार्यक्रम: कक्षा के बाहर का एक अनुभव

सुमिता दासगुप्ता

पिछले करीब 25 वर्षों के दौरान हमने पर्यावरण को उसके विभिन्न अवतारों के रूप में भारत के शिक्षा क्षेत्र में शामिल होते देखा है। कभी–कभी 'मुख्यधारा के विषयों' की सेविका के रूप में, जब इसे रसायन शास्त्र या इतिहास की पाठ्यपुस्तकों के पन्नों के बीच में भर दिया जाता है या कई बार सभी पाठ्येत्तर गतिविधियों की साझा विषयवस्तु के रूप में ठूँस दिया जाता है, जैसे स्थानीय जीव–जन्तुओं पर स्क्रैपबुक बनाने के लिए स्थानीय उद्यानों में बच्चों को 'प्रकृति भ्रमण' करा देना। पर अब तक कभी भी यह औपचारिक ग्रेड देने वाली व्यवस्था का हिस्सा नहीं था। पर देश की सर्वोच्च पाठ्यक्रम निर्धारण संस्था और दो प्रभावशाली शिक्षा बोर्डों ने स्कूल की महत्त्वपूर्ण अन्तिम परीक्षाओं में पर्यावरण के लिए अंक निर्धारित करने का निर्णय ले लिया, तो उसकी गौण भूमिका समाप्त हो गई। ऐसे परिदृश्य में जहाँ एक–एक अंक को भविष्य में कैरियर बनाने की सीढ़ी के रूप में देखा जाता है, इससे अधिक महत्त्वपूर्ण कदम नहीं हो सकता था, खासतौर पर तब, जब उसके साथ कुछ और रोचक शर्तें भी जोड़ दी गईं। मौजूदा दिशानिर्देशों के अनुसार विद्यार्थियों का आकलन पारम्परिक 'पाठ्यपुस्तकें पढ़ो, परीक्षा दो' वाले तरीके पर आधारित नहीं होगा। विद्यार्थियों के ग्रेड इस बात पर निर्भर करेंगे की वे 'जमीन पर' कितने सक्रिय रहे।

जाहिर है, कि इस आदेश के जारी होने के बाद हड़बड़ी में बहुत सारे कार्य किए गए हैं। पर्यावरण को एक जीते जागते, साँस लेते और 'करने वाले' विषय के रूप में लेना ऐसा कार्य नहीं है जिसके लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित किया गया हो। इसके लिए न तो कोई पहले से तैयार ऐसे स्रोत हैं, न ऐसी पाठ्यपुस्तकें और न ही ऐसी सन्दर्भ पुस्तकें हैं जो इस साँचे में माफिक बैठती हों। पर हमेशा की तरह, नई–नई परिस्थितियों के अनुरूप ढालने की अपनी क्षमता का फिर एक बार प्रदर्शन करते हुए, इसके शिक्षक कुछ असाधारण युक्तियों के साथ सामने आए ताकि पर्यावरण को एक ठोस, सुनिश्चित और साकार (ग्रेड दिए जा सकने लायक) विषय बनाया जा सके।

ग्रीन स्कूल्स (हरित स्कूल) कार्यक्रम[1] (जी.एस.पी.), जो दिल्ली–स्थित सेण्टर फॉर साइंस एण्ड एन्वायरन्मेंट (सी.एस.ई.) का एक प्रमुख अभियान है, शिक्षकों की मदद करने की कोशिश करता है, क्योंकि यह कार्यक्रम इस बात को मानता है कि पर्यावरण की इस कक्षा का महत्त्व सबसे अधिक है। एक विषय के रूप में पर्यावरण को इस ग्रह के आने वाले संरक्षकों के समक्ष एक नए दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। किसी भी परिस्थिति में इसे एक और उबाऊ विषय नहीं बनने दिया जा सकता। इसलिए पर्यावरण को 'करके' सीखने के उपकरण के रूप में जी.एस.पी. की रचना की गई है, क्योंकि करके सीखने का तरीका ही विद्यार्थियों और शिक्षकों को कक्षाओं से बाहर आकर चीजों को करने (जैसे गिनना, वजन लेना, मापना, खोजना और विश्लेषण करना) के लिए प्रेरित करता है। जी.एस.पी. मार्गदर्शक पुस्तिका, खुद से चीजें करने की ऐसी पुस्तिका है जिसमें यह बताया गया है कि स्कूल के अहाते के भीतर ही पानी, हवा, ऊर्जा, अपशिष्ट पदार्थ और भूमि का लेखा परीक्षण कैसा किया जाए। ऐसी मार्गदर्शक पुस्तिका के साथ जी.एस.पी. इन प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्धक के रूप में स्कूल समुदाय के प्रदर्शन का आकलन करने की एक नई कार्यविधि सामने लेकर आया है। इसका अन्तिम उत्पाद एक रिपोर्ट कार्ड होता है जिसे बनाने में

[1]वर्तमान में 22 राज्यों और 1 केन्द्र शासित प्रदेश के करीब 30,000 स्कूल जी.टी.जी.एस.पी. (गोबर टाइम्स ग्लोबल स्कूल्स प्रोग्राम) नेटवर्क का हिस्सा हैं। सी.एस.ई. ने आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, पंजाब, मध्य प्रदेश, केरल, सिक्किम और उत्तराखण्ड की राज्य सरकारों के साथ औपचारिक भागीदारी की है। इस गठजोड़ के मुताबिक राज्य स्तरीय केन्द्रीय (नोडल) एजेंसी 50–60 प्रधान प्रशिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए सी.एस.ई. को आमंत्रित करती है। फिर, जी.एस.पी. द्वारा प्रशिक्षित ये लोग पर्यावरण का लेखा परीक्षण करने के लिए जिले व ब्लॉक स्तर पर शिक्षकों और विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करते हैं। इनमें से अधिकांश राज्यों में जी.एस.पी. मार्गदर्शक पुस्तिका को क्षेत्रीय भाषा में अनुदित कर दिया गया है ताकि सभी स्तरों के शिक्षक इसका सर्वोत्तम उपयोग कर सकें। इस प्रक्रिया ने जी.एस.पी. के सन्देश को इन राज्यों के हर एक कोने में पहुँचाने में मदद की है। दूर–दराज के क्षेत्रों में स्थित स्कूलों की भागीदारी भी हर साल कई गुना बढ़ती गई है। दूसरे राज्यों में, जी.एस.पी. दल ऐसे छोटे/स्थानीय एन.जी.ओ. तथा शैक्षणिक संस्थाओं के साथ भागीदारी करता रहा है, और उन्हें प्रशिक्षित करता रहा है जिनके पास स्कूलों का एक ऐसा तंत्र है जो उनके अन्तर्गत काम करता है। भागीदारों में चार राज्यों – दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम और आंध्र प्रदेश – ने मुख्यमंत्री जी.एस.पी. पुरस्कार देना शुरू किए हैं जो राज्य में सबसे अच्छा प्रदर्शन करने वाले स्कूलों को दिए जाते हैं। इस पुरस्कार का उद्देश्य भागीदारों की मेहनत को स्वीकार करना तथा और अधिक भागीदारों को प्रोत्साहित करना है, साथ ही इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना भी है कि राज्य की एजेंसियाँ इस अभियान में सक्रिय भूमिका निभाती रहें और उनके पास एक दीर्घकालिक योजना रहे। श्रीलंका और यूएई की सरकारों ने भी जी.एस.पी.को उनके राष्ट्रीय पर्यावरण पाठ्यक्रम के एक अंश के रूप में अपना लिया है।

सी.एस.ई. स्कूल समुदाय की मदद करता है। इस रिपोर्ट कार्ड में स्कूल समुदाय खुद की उपलब्धियों का मात्रात्मक आकलन करता है। साथ ही ऐसी कमियों की पहचान भी करता है जिन पर और अधिक जागरूकता और सजगता दिखाने की जरूरत है। इस लेखा परीक्षण के लिए कोई विशेष उपकरण या धनराशियों की जरूरत नहीं पड़ती। सी.एस.ई. स्कूलों को यह सिखाता है कि ऐसी सरल तकनीकों का उपयोग करके, जो वैसे भी स्कूल की रोजमर्रा की दिनचर्या का हिस्सा होती हैं, आँकड़े कैसे इकट्ठा करना होते हैं। दरअसल ये गतिविधियाँ तो मुख्यधारा के पाठ्यक्रम के किसी भी विषय के लिए भी उपयोग की जा सकती हैं।

इस प्रक्रिया के माध्यम से जी.एस.पी. द्वारा इस सन्देश को सभी सम्बन्धित पक्षों तक पहुँचाने का प्रयास किया गया है कि 'पर्यावरण' शब्द के निहितार्थ सिर्फ पेड़ों, पक्षियों और बाघों तक ही सीमित नहीं है। इसमें वे सारे प्रमुख घटक शामिल होते हैं जिनसे किसी मनुष्य का जीवन और उसकी जीविका बनती है। इस रिपोर्ट कार्ड में स्कूल अपनी उपलब्धियों का मात्रात्मक आकलन करता है। साथ ही उन कमियों की पहचान करता है जिनकी तरफ और अधिक जागरूकता और सजगता दिखाने की जरूरत होती है।

इस कार्यक्रम के अन्त में सी.एस.ई. एक वार्षिक कार्यक्रम आयोजित करता है जिसे गोबर टाइम्स ग्रीन स्कूल्स प्रोग्राम पुरस्कार समारोह कहा जाता है। यहाँ देशभर में सबसे अच्छा प्रदर्शन करने वाले स्कूलों और व्यक्तियों को उनके उद्यम और नूतन कौशलों के लिए पुरस्कृत किया जाता है। इस पुरस्कार समारोह का उद्देश्य भागीदारों द्वारा किए गए प्रयासों को पहचान देने के साथ ही साथ ज्यादा से ज्यादा संस्थाओं को आगे आकर इस अभियान में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित करना है। इस दिन को एक उत्सव के रूप में मनाया जाता है और भारतवर्ष के हर हिस्से के स्कूली बच्चों को आमंत्रित किया जाता है। उन्हें इस पुरस्कार समारोह को देखने के लिए ही आमंत्रित नहीं किया जाता बल्कि समारोह के अन्तर्गत होने वाली चित्रकला प्रतिस्पर्धाओं में भाग लेने, नुक्कड़ नाटकों में अभिनय करने, फिल्में देखने और एक–दूसरे के साथ घुलने–मिलने का अवसर भी दिया जाता है। हर साल कम से कम सर्वश्रेष्ठ 20 स्कूलों में से कम से कम 5 से 8 स्कूल ग्रामीण क्षेत्र के होते हैं।

पर क्या जी.एस.पी. काम कर रहा है?

स्कूली समुदाय पर जी.एस.पी. का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है यदि हम हर गुजरते साल के साथ भागीदारी करने वाले स्कूलों के प्रदर्शन की तुलना करें। यहाँ यह बात ध्यान में रखना महत्त्वपूर्ण है कि इन स्कूलों में 50 प्रतिशत से भी ज्यादा स्कूल साल दर साल लेखा परीक्षण की इस प्रक्रिया को दोहराते हैं। स्पष्ट है कि उनका उद्देश्य किसी स्पर्धा को जीतना नहीं रहा है, बल्कि इस बात को भी आँकना है कि क्या वे रिपोर्ट कार्ड को सुधार पाने में सफल रहे हैं और पर्यावरण के बेहतर प्रबन्धक बने हैं।

बदलती हुई प्रवृत्तियाँ और दृष्टिकोण

2006 में, जब लेखा रिपोर्टों का पहला समूह प्रस्तुत किया गया और उनका विश्लेषण किया गया, तो सी.एस.ई. ने निम्नलिखित प्रवृत्तियों की पहचान की :

- पर्यावरण–सम्बन्धी कार्यक्रमों को अभी भी पाठ्येत्तर माना जाता है। अभी भी जीवनशैली या जीवन से जुड़ी आदतों में वास्तविक परिवर्तन लाने के लिए कोई ढाँचागत पद्धति दिखाई नहीं देती।
- स्कूल ऊर्जा और पानी का संरक्षण करने के लिए नवीन तरीकों को अपनाने के लिए तैयार हैं। लेकिन इन नए तरीकों के प्रभाव को मापने और उनके परिमाण को निर्धारित करने वाली अगली प्रक्रिया नदारद है।

उदाहरण के लिए, भागीदारी करने वाले 75 स्कूलों ने वर्षाजल संग्रहण प्रणालियाँ स्थापित करवा ली थीं, लेकिन सिर्फ एक स्कूल उसकी वास्तविक क्षमता का उपयोग कर रहा था। दूसरे स्कूलों के लिए यह बस एक प्रदर्शन के नमूने जैसा था – एक बार स्थापित कर दिया और फिर भूल गए। 95 प्रतिशत स्कूल अपशिष्ट पदार्थों के प्रबन्धन के तरीकों पर काम कर रहे थे, जैसे केंचुआ खाद बनाना और कागज की री–सायक्लिंग। लेकिन सिर्फ 5 स्कूल ऐसे थे जो इस बात का ब्यौरा रख सके कि उनके अहातों में दरअसल कितना प्रति व्यक्ति अपशिष्ट पदार्थ बन रहा था।

2007 में निम्नलिखित क्षेत्रों के अन्तर्गत लोगों के रवैयों और उनके नजरियों में असाधारण बदलाव देखने को मिला :

- स्कूलों ने एक वर्ष के भीतर ही लेखा परीक्षण की कला में निपुणता हासिल कर ली थी।
- उनके द्वारा किए गए आँकड़ा–संग्रह, सारणीकरण, और विश्लेषण का स्तर उत्कृष्ट था।

- वर्षाजल संग्रहण, पानी और अपशिष्ट पदार्थों का री–सायक्लिंग कहीं ज्यादा बारीक, ढाँचागत और सटीक थे।
- जाहिर था कि विद्यार्थी पूरे कार्यक्रम के हर चरण में शामिल थे। उनकी जागरूकता का स्तर भी बहुत बढ़ गया था।

उदाहरण के लिए हर स्कूल ने विद्यार्थी समूहों को अपशिष्ट पदार्थ को तौलने का जिम्मा सौंपा था। लेखा परीक्षण दलों में झाड़ू लगाने वाले, माली, अपशिष्ट पदार्थों को ठिकाने लगाने वाले लोग शामिल थे। विद्यार्थियों ने स्प्रिंग तराजू, हाथ में लेने वाला तराजू और भार तोलने की मशीन का इस्तेमाल किया और वे सी.एस.ई. को यह बता पाए कि उनके स्कूल में किस प्रकार के अपशिष्ट पदार्थ पैदा हो रहे थे। यह भी बता रहे थे कि प्रतिदिन कितना अपशिष्ट पैदा हो रहा था।

भागीदारों की प्रतिबद्धता और लगन ने 2008 में सी.एस.ई.को पुरस्कारों की एक नई श्रेणी शुरू करने के लिए प्रेरित किया, जिसका नाम रखा गया चेंज मेकर्स (बदलाव लाने वाले लोग)। ये पुरस्कार उन स्कूलों को दिए गए जो न सिर्फ स्कूली समुदाय की, बल्कि विद्यार्थियों के माता–पिता तथा उनके आसपास के लोगों की सोच और जीवनशैली में बुनियादी, किन्तु साथ ही दीर्घकालिक बदलाव लाने में सफल रहे थे। उदाहरण के लिए दक्षिण दिल्ली के एक स्कूल में रोज स्कूल पहुँचने के लिए लोगों की आदतों में 8 प्रतिशत का बदलाव देखा गया। विद्यार्थी तथा स्कूल के शिक्षक–कर्मचारी अपनी व्यक्तिगत कारों या दुपहिया वाहनों के बजाय सार्वजनिक यातायात के साधनों (इनमें से कुछ स्कूल द्वारा ही मुहैया कराए गए वाहन थे) का इस्तेमाल करने लगे थे। बच्चों के माता–पिता भी उनके इस निर्णय में शामिल थे और वे भी इस पहल के भागीदार थे।

तब से लेखा परीक्षण की यह प्रक्रिया संसाधनों की स्थिति पर प्रामाणिक आँकड़े जुटाने का तथा सम्बन्धित लोगों की प्रवृत्तियों को पहचानने का बेहद प्रभावी माध्यम बन चुकी है। यह प्रक्रिया इन बातों को स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि बेहतर स्थिति के लिए क्या, कहाँ और कैसे किया जाना चाहिए। इसलिए इस प्रक्रिया को अब प्रशासकों द्वारा इस बात का अनुमान लगाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है कि लागू की गई किसी व्यवस्था या नीति ने अभी तक अच्छे नतीजे दिए हैं या नहीं।

उदाहरण के लिए दिल्ली के स्कूलों ने सी.एन.जी. द्वारा चलित वाहनों की वजह से ऊर्जा के लेखा परीक्षण में जबरदस्त सुधार हासिल किया है। इस नीति ने उन्हें दूसरे राज्यों की तुलना में वायु प्रदूषकों के उत्सर्जन को न्यूनतम स्तर पर लाने में मदद की है। पर कभी–कभी रिपोर्ट कार्ड में इन स्कूलों के अंक बहुत कम हो जाते हैं जिसका कारण है डीजल द्व ारा चलने वाले जेनेरेटरों पर इन स्कूलों की बढ़ती निर्भरता। यह स्थिति दिल्ली शहर में बिजली की स्थिति को दर्शाती है।

जी.एस.पी. क्यों?

यह बात बहुत स्पष्ट है कि यह लेखा परीक्षण हर स्कूल के लिए जरूरी है, खासतौर से ऐसे स्कूलों में जहाँ संसाध नों की कमी है। ऐसे स्कूलों में लेखा परीक्षण की मदद से इस बात को सुनिश्चित किया जा सकता है कि स्कूल की बुनियादी जरूरतें पूरी होती रहें। ऐसे स्कूलों में जहाँ संसाधनों का अतिरेक हो, इस लेखा परीक्षण का उपयोग संसाधनों की बरबादी रोकने के लिए किया जा सकता है।

इसलिए जी.एस.पी. का उपयोग स्कूली प्रशासन द्वारा ऐसे उपकरण के रूप में किया जा सकता है जिससे दो उद्देश्य पूरे होते हैं। पहला, दिल्ली के स्कूलों के लिए व्यावहारिक, हासिल किए जा सकने वाले 'ग्रीन नॉर्म्स (पर्यावरण मानक)' तय करना, और फिर अगला कदम उठाते हुए, पर्यावरण–हितैषी नीतियों और आधारभूत ढाँचे के रूप में इन मानकों को स्कूलों में लागू करना।

पर क्या स्कूल जमीन पर ऐसा कर रहे हैं?

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए मैं यहाँ उस पत्र का जिक्र करूँगी जो हाल ही में हमें अपने एक वरिष्ठ स्कूली साझेदार द्वारा प्राप्त हुआ था। इस पत्र में कहा गया है, 'जैसा कि आप जानते हैं, हमारा स्कूल दक्षिण दिल्ली के सबसे सूखे इलाकों में से एक में स्थित है। हर साल गर्मियों में हमें मजबूर होकर व्यावसायिक दरों पर पानी खरीदने के लिए बहुत सारा पैसा खर्च करना पड़ता है। हमारे यहाँ सी.एस.ई. कार्यक्रम लागू होने के बाद से हम लोग अपनी खपत को कम करने के लिए दृढ़ संकल्प थे। और हमने आखिरकार ऐसा कर पाने का रास्ता ढूँढ़ लिया है। हमने अपने स्कूल के सभी अठारह पुरुष शौचालयों को जलरहित इकाइयों में तब्दील कर दिया है। यह ऐसा कदम है जो प्रति वर्ष 1,70,000 लीटर ताजा पानी बचाएगा। इस व्यवस्था पर हमें प्रति इकाई 2500 रुपए का खर्चा आता है। इस प्रणाली को लगाने की लागत पहले ही महीने में पानी की होने वाली बचत से निकल आती है।'

संसाधनों की बरबादी करने वाले ऐसे उपभोक्ताओं से लेकर, जिनके मन में इस बात का अपराध बोध है, जानकार पर सजग संसाधन प्रबन्धक बनने तक, जी.एस.पी. गुरुओं ने बहुत लम्बा रास्ता तय किया है। यह वाकई एक सुखद व प्रेरणादायी बात है। आज वैश्विक मंच पर पर्यावरण ने केन्द्रीय स्थान हासिल कर लिया है। यह अर्थव्यवस्थाओं का स्वरूप तय करने, नीतियों को प्रभावित करने तथा राष्ट्राध्यक्षों के भाग्य का निर्णय करने में अहम भूमिका निभाता है। आन्तरिक रूप से, यह समस्त क्षेत्रों (उद्योग से लेकर कृषि तक) के एजेंडे में एक प्राथमिक मुद्दा बन चुका है। तो समय आ गया है कि हम आबादी के सबसे महत्त्वपूर्ण भाग, विद्यार्थियों को भी इस चर्चा में शामिल करें। अब यह बेहद जरूरी हो गया है कि इन मुद्दों को लेकर हम विद्यार्थियों के कौशलों का विकास करें तथा इससे सम्बन्धित उनके ज्ञान की बुनियाद को और गहरा करें। जी.एस.पी. जैसे कार्यक्रम विद्यार्थियों को उनकी सोच को व्यक्त करने का मंच तो देते ही हैं, साथ ही जमीन पर प्रयोग करने का मौका भी देते हैं।

शासकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, देवराली, सिक्किम: यहाँ पर जी.एस.पी. की पूरी लेखा परीक्षण प्रक्रिया के बारे में एक नया ही दृष्टिकोण अपनाया गया है। इन लोगों ने इस प्रक्रिया को स्वास्थ्य से जोड़ दिया है। उत्तरी सिक्किम की पहाड़ियों पर स्थित इस छोटे से स्कूल की लड़कियाँ 2005 तक एक बहुत सक्रिय हेल्थ क्लब (स्वास्थ्य मण्डली) चलाती थीं। जी.एस.पी. से परिचय होने तक ये लड़कियाँ विद्यार्थियों तथा शिक्षकों–कर्मचारियों को प्राथमिक उपचार दिया करती थीं और स्कूल की सामान्य साफ–सफाई का निरीक्षण करती थीं। सिक्किम की ये चतुर नागरिक जल्दी ही इस बात को समझ गईं कि अच्छे स्वास्थ्य के लिए जितनी जरूरी दवाइयाँ और पट्टियाँ होती हैं, अगर उससे ज्यादा नहीं तो कम से कम उतना ही जरूरी स्कूल में पैदा होने वाले ठोस अपशिष्ट पदार्थ का प्रबन्धन करना था, साफ–सुथरे तथा पानी की बचत करने वाले शौचालयों की व्यवस्था करना था और यह सुनिश्चित करना था कि जो पानी वे लोग पी रहे थे वह सुरक्षित हो। तो उनका हेल्थ क्लब पर्यावरण सम्बन्धी गतिविधियों का केन्द्र बन गया था। स्कूल वाकई पहले से अधिक स्वस्थ हो गया था।

शासकीय उच्चतर माध्यमिक स्कूल, मकरेरी, हिमाचल प्रदेश: पहाड़ों के क्षेत्र में एक और भागीदार स्कूल। यह स्कूल हिमाचल प्रदेश का है तथा यह और भी दूर–दराज इलाके में स्थित है। पर राज्य के बहुत भीतरी इलाके में, सबसे करीबी जिला मुख्यालय से 75 किलोमीटर दूर स्थित होने की स्थिति भी इस बेहद ऊर्जावान स्कूली समुदाय के भीतर कभी हताशा का भाव नहीं भर पाई है। इस स्कूल ने स्थानीय जैव–विविधता को संरक्षित रखने के अपने कार्य (पारम्परिक अनाजों का बीज बैंक बनाना तथा पौधों की स्थानीय प्रजातियों की कलमें रखना) के लिए कई पर्यावरण पुरस्कार जीते थे। पर्यावरण के प्रति पहले से सजग इन लोगों को जी.एस.पी.से यह संदेश मिला कि पर्यावरण का मतलब सिर्फ पेड़, पौधे, जानवर और बीज नहीं होता, बल्कि पर्यावरण के भीतर पानी, ऊर्जा और अपशिष्ट पदार्थ भी शामिल होते हैं; और यह कि सूक्ष्म जल विद्युत परियोजनाओं पर इतना जोर देने वाले हिमाचल जैसे राज्य के लिए यह अत्यावश्यक था कि वहाँ वर्षा जल संग्रहण प्रणालियों का उपयोग शुरू किया जाए, ताकि नदी तलों के सूखने पर खेतों में पानी के आसन्न संकट से निपटा जा सके। इस बात का स्मरण दिलाए जाने के बाद से ही वे लोग इस ओर अग्रसर हो गए। लेखा परीक्षण दलों ने स्थानीय पंचायत को काफी समझाया–मनाया, संसाधन जुटाए और यह सुनिश्चित किया कि न सिर्फ स्कूल में बल्कि गाँव में भी वर्षाजल संग्रहण से जुड़े ढाँचे स्थापित हों।

जी.एस.पी. की भविष्य की सोच क्या है?

सी.एस.ई. का लक्ष्य प्रत्येक राज्य सरकार के साथ जी.एस.पी. भागीदारी निर्मित करना तथा उन सारे राज्यों में सीएम–जी.एस.पी. पुरस्कारों की शुरुआत करना है। सी.एस.ई. अब जी.एस.पी. में निम्नलिखित जिम्मेदारियों को भी शामिल करने के लिए तत्पर है :

- कार्यशालाओं के माध्यम से शिक्षकों, विद्यार्थियों और स्कूल प्रशासकों में क्षमता निर्माण करना।
- ग्रामीण और शहरी, दोनों क्षेत्रों के स्कूलों को संसाधनों से लैस करना, सशक्त बनाना, व्यावहारिक व हासिल किए जा सकने वाले 'पर्यावरण मानक' तय करना। फिर इन मानकों को जमीन पर पर्यावरण नीतियों के रूप में

क्रियान्वित करने में तथा स्कूल के अहातों में निभाए जाने में स्कूलों की मदद करना।

- वैकल्पिक पाठ्यक्रम विकसित करने में मदद करना। पहले से ही जी.एस.पी. कई स्कूलों में माध्यमिक और उच्च स्तर के विद्यार्थियों का सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.) करने के एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। पर जी.एस.पी. की मुख्य चुनौती रही है कि विद्यार्थियों को ऐसा मौका देना कि वे पर्यावरण के बारे में एक और पाठ्यपुस्तक को रटकर सीखने के बजाय 'करके' सीखें। नया पाठ्यक्रम यह संदेश देने का प्रयास करेगा कि 'पर्यावरण' शब्द का आशय सिर्फ पेड़ों, पक्षियों और बाघों तक ही सीमित नहीं है। इसमें वे सारे घटक शामिल हैं जो किसी मनुष्य का जीवन और उसकी जीविका को निर्मित करते हैं।

सुमिता दासगुप्ता ने अपना कैरियर मुख्यधारा की पत्रकार के रूप में शुरू किया था। दिए गए कार्य की जरूरत के मुताबिक उन्होंने राजनीति से लेकर फैशन तक तमाम विषयों पर लिखा है। सेण्टर फॉर साइंस एण्ड एनवायरन्मेंट में पहुँचने के बाद वे अपने रुचि के क्षेत्र के प्रति ज्यादा सजग हुईं। उन्होंने सेण्टर की पाक्षिक पत्रिका, डाउन टू अर्थ की उप–सम्पादक के रूप में कार्य करना शुरू किया। बाद में उन्होंने जैव–विविधता के बारे में एक विशेषज्ञ लेखिका के रूप में अपना योगदान दिया और संगठन की प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन इकाई की कमान अपने हाथ में ली। पर शोधकर्ता के बजाय लेखक की भूमिका उन्हें हमेशा अपनी ओर खींचती रही। तो जब उन्हें पर्यावरण शिक्षा इकाई के कार्यक्रम निदेशक की भूमिका निभाने का प्रस्ताव दिया गया तो उन्होंने इसे तुरन्त ही स्वीकार कर लिया क्योंकि इससे उन्हें अपनी दो भूमिकाओं : पहली, सी.एस.ई. के सबसे शुरुआती शिक्षा अभियान, जी.एस.पी. की शुरुआत करना और उसे आगे बढ़ाना तथा दूसरी, विद्यार्थियों के लिए निकलने वाली मासिक पत्रिका गोबर टाइम्स की सम्पादक होना – को जोड़ने का मौका मिल रहा था। वर्तमान में वे विषयवस्तु परामर्शदाता के रूप में काम कर रही हैं और विकास के क्षेत्र से जुड़े मुद्दों में उनकी विशेषज्ञता है। उनसे dasgupta.sumita@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अगला अंक

भारत में सार्वजनिक शिक्षा तंत्र

Earlier Issues of the Learning Curve may be downloaded from **http://teachersofindia.org/en/periodicals/learning-curve** or **http://azimpremjifoundation.org/Foundation_Newsletters** or **http://www.azimpremjiuniversity.edu.in/content/publications**

No. 134, Doddakannelli
Next to Wipro Corporate Office
Sarjapur Road, Bangalore - 560 035. India
Tel: +91 80 6614 4900/01/02 Fax: +91 80 6614 4903
E-mail: learningcurve@azimpremjifoundation.org
www.azimpremjifoundation.org

Also visit Azim Premji University website at
www.azimpremjiuniversity.edu.in

Azim Premji University

A publication from
Azim Premji University

For suggestions or comments and to share your views or personal experiences, do write to us at **learningcurve@azimpremjifoundation.org**